अभिनव मीमांसा

अक्टूबर 2011

संपादक
विवेक पाण्डेय

बिहार शिक्षा परियोजना परिषद : प्रारंभिक शिक्षा में चौतरफा विकास

- **उत्थान योजना** - महादलित समुदाय के ६-१० आयु समूह के प्रत्येक बच्चे को बेहतर एवं नियमित शिक्षा उपलब्ध कराने तथा उन्हें मुख्यधारा में जोड़ने के उद्देश्य से उन्हीं के टोला में पठन-पाठन हेतु प्रारम्भ की गई योजना है। अभी तक १६,४८२ "उत्थान केन्द्रों" के माध्यम से ५,१५,०६८ बच्चों का आच्छादन किया गया है।

- **तालीमी मरकज** - राज्य के अल्पसंख्यक समुदाय के ६-१० आयु समूह के सभी बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से तालिमी मरकज केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं। अभी तक ३,७७० "तालीमी मरकज" के माध्यम से लगभग ८३,१७४ मुस्लिम बच्चों का आच्छादन किया गया है।

- अल्पसंख्यक मुस्लिम बालिकाओं के व्यावसायिक उन्मुखीकरण और आर्थिक आत्मनिर्भरता हेतु "हुनर" योजना का कार्यान्वयन और हुनरमंद बालिकाओं को "औजार" योजनान्तर्गत टूल किट के लिए राशि उपलब्ध करायी गयी।

- ३७५ संकुल मध्य विद्यालयों को कम्प्यूटर आधारित शिक्षा हेतु कम्प्यूटर एवं उसके सहायक उपकरण उपलब्ध कराये गये हैं जिसके लिए ३९१ शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया है तथा लगभग १,२६,१८८ बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं। बी०एस०ई०डी०सी० के सहयोग से २४४ मध्य विद्यालयों में कम्प्यूटर आधारित शिक्षा "ई-समर्थ" प्रारम्भ किया गया है, जिससे लगभग ६१,००० बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं।

- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय के बालिकाओं के लिए (भारतीय जीवन बीमा) समूह बीमा का लाभ प्रारम्भ किया गया है। इस योजना से अब तक ७५४२ बालिकाएँ लाभान्वित हो चुकी है।

- **प्रारम्भिक विद्यालय के बच्चों के लिए अखबार** - राज्य के सभी जिलों में कक्षा-१ से कक्षा-५ तक के बच्चों में पढ़ने, गणित, सामान्य ज्ञान की दक्षता तथा सृजनात्मकता का विकास के उद्देश्य से बच्चों का अखबार "चल पढ़ कुछ बन" का प्रकाशन एवं वितरण।





अभिनव मीमांसा

वर्ष-2, अंक-1, (अर्धवार्षिक पत्रिका) लखनऊ
अक्टूबर 2011 मूल्य : 50 रुपये

साहित्य, कला, संगीत एवं संस्कृति का आयोजन

संरक्षक	:	मत्स्येन्द्र शुक्ल
	:	आर. एस. त्रिपाठी
सम्पादक	:	विवेक पाण्डेय
परामर्श	:	ओ.पी. पारीक (सीए)
आयोजन सहयोग	:	शिवाकान्त त्रिपाठी अनुराग त्रिपाठी रवीन्द्र प्रताप सिंह रामशंकर अमित पाण्डेय
आवरण	:	अवधेश मिश्र

सम्पादकीय कार्यालय

विवेक पाण्डेय
1/99 विजय खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ 226010
मो : 09919555048, 07376575303
ई मेल : vivek86.pandey@gmail.com

संपादन एवं संचालन	:	अवैतनिक एवं अव्यावसायिक
एक प्रति का मूल्य	:	50/- रुपये मात्र
आजीवन सदस्यता	:	3,000/- रुपये मात्र

प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी विवेक पाण्डेय द्वारा शिवम् आर्ट्स 5वीं गली, सब्जी मण्डी, निशातगंज, लखनऊ से मुद्रित तथा 1/99, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ से प्रकाशित

सम्पादक : विवेक पाण्डेय

अनुक्रम

आम आदमी की बेचैनी के सबब

विवेक पाण्डेय

समय परिवर्तन का वाहक होता है। जो कल था वह आज नहीं है तथा जो आज है वह कल नहीं होगा। परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस स्वाभाविक प्रक्रिया में जब कोई बाहरी बल आघात करता है तब उसका आवेग बढ़ जाता है। इस समय पूरा विश्व इस आवेग की गिरफ्त में है क्योंकि विश्व ने सामान्य परिवर्तन की मांग को अनदेखा किया और यथास्थितिवादी ताकतें हावी रहीं। जब भी अस्वाभाविक परिवर्तन होते हैं उनका परिणाम जरूरी नहीं कि लोगों के हित में ही हो। मुस्लिम विश्व में हो रहे परिवर्तनों को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए। मुस्लिम विश्व की विडम्बना यह है कि वह या तो तानाशाही की छाव में सांस लेता है या कट्टरवाद की आंच में तपने लगता है। मिस्र, लीबिया, सीरिया तथा जार्डन की छटपटाहट को इसी रूप में देखा जाना चाहिए लेकिन वहाँ के आन्दोलनों को इन सबके बावजूद कम करके नहीं आंका जा सकता। जो कुछ भी वहां हो रहा है पश्चिमी देशों की मदद के बावजूद वहाँ की जनता की तड़प का प्रतिबिम्बन है।

परिवर्तन का एक और आवेग एशिया के देशों से होकर गुजर रहा है। हर देश इस आवेग के स्वरूप को अपने-अपने ढंग से ग्रहण कर रहा है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान चीन, नेपाल और भारत में भी जो व्यवस्था है उसके खिलाफ अपने ढंग से स्वर मुखर हो रहे हैं। भारत में परिवर्तन की लड़ाई जहाँ दिल्ली के रामलीला मैदान में टेलीविजन चैनलों की रोशनी के बीच हो रही है, वहीं दंतेवाड़ा के जंगलों में गोलियों की तड़तड़ाहट के बीच एक नयी शक्ल अख्तियार कर रही है।

रामलीला मैदान में होने वाले उत्सवी आन्दोलनों को हम इसलिए करीब से महसूस कर पा रहे हैं क्योंकि वे हमारे प्रकृति और स्वभाव के माफिक हैं। इनमें सफेद कलफदार कपड़े पहने हुए लोग शामिल हैं और जोखिम भी नहीं है। वर्तमान व्यवस्था की शर्तों के मुताबिक छोटे बदलावों के साथ हो सकता है, फौरी राहत मिल जाए लेकिन किसी बुनियादी बदलाव की उम्मीद करना बेमानी है। साफ शब्दों में कहा जाय तो बहुचर्चित अण्णा का आन्दोलन मध्यवर्ग की अपेक्षाओं और उसकी जरूरतों के परिपेक्ष्य में एक माध्यम जरूर उपलब्ध करा देगा लेकिन अन्याय, शोषण तथा गैर बराबरी की पुरानी बीमारी में कोई कारगर उपचार मुहैया नहीं करा पाएगा। यह पूर्ण रूप से जनता की बेचैनी का सरलीकरण है। अण्णा के आन्दोलन ने एक ऐसा वातावरण तैयार किया जिसने हमारी आंखों को वास्तविकता से परे कर दिया। इस तर्क का अर्थ अण्णा की कोशिश को खारिज करने के अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए। उनकी नीयत में कोई खोट नहीं है। उनका अपना तरीका है और अपनी सीमाएं भी। जेपी ने भी ऐसी ही कोशिश की थी लेकिन उनके पूरे आन्दोलन को उन्हीं ताकतों ने अगुवा कर लिया जो आज की व्यवस्था की पोषक हैं। अण्णा ने जेपी से जरूर सीख ली होगी और उम्मीद की जानी चाहिए वह अपने आन्दोलनों को भटकने से बचा ले जाएंगे। फिर भी पूरे बदलाव की तड़प को सिर्फ अण्णा से जोड़ने की सोच सुविधावादी मानसिकता को ही रेखांकित करेगी। नक्सली आंदोलन, उत्तर पूर्व का उग्रवाद गहराई से चिंतन की मांग करता है। इन समस्याओं को बिना हल किए बेहतर समाज की रचना करने की कोशिश एक विकलांग राष्ट्र ही

पैदा करेगी। आज की राजनीतिक व्यवस्था में कुछ सामन्त कुछ व्यापारी और ढेर सारे अपराधी शामिल हैं। निश्चित रूप से यह ऐसी ताकते हैं जो वास्तविक विकास के मार्ग में बड़ी बाधा हैं। क्या ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के होते हुए विकास की सही कल्पना संभव है? हम सब पुराने हथियारों से सही लड़ाई नहीं लड़ सकते हैं।

अभी हाल में गुजरात तथा बिहार भारत में काफी चर्चा में रहे। न्याय-अन्याय की अन्दरूनी हकीकत हमारे संज्ञान में नहीं है लेकिन गुजरात में एक वरिष्ठ आई0पी0एस0 अधिकारी की गिरफ्तारी तथा पटना में एक वरिष्ठ आई.ए.एस. के आलीशान बंगले में स्कूल खुलने की घटना ने देश भर में बड़ा संदेश दिया। मेरे ख्याल में यह भी परिवर्तन है। उत्तर प्रदेश में (नोएडा एवं लखनऊ में) ही ऐसे सैकड़ों की संख्या में स्कूल खोले जाने लायक हवेलियां होंगी लेकिन हर मुख्यमंत्री नीतीश कुमार कहाँ मिलेगा? हम नीतीश कुमार के तरफदार नहीं हैं लेकिन यदि नीतीश कुमार ने ऐसा किया है तो उसे गलत भी नहीं ठहरा सकते। दूसरा उल्लेख हमने गुजरात में एक वरिष्ठ आई0पी0एस0 अधिकारी की गिरफ्तारी का किया। संभव है कि यह कार्रवाई बदले की भावना से की गयी हो लेकिन आई0पी0एस0 अफसर का गिरफ्तार होना ''ब्यूरोक्रेट'' को सुपर पावर समझे जाने वाले देश में बेहद महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

साहित्य ने लंबे अरसे से इन तथ्यों को रेखांकित किया है। पाब्लो नेरूदा, नाजिम हिकमत, मुक्तिबोध और धूमिल से लेकर आज के युवा कवियों तक ने इन्हीं तथ्यों को विश्लेषण में अपनी रचनाओं के सामने रखा है। आम आदमी की बेचैनी को खुद में शामिल किए बिना रचना नहीं हो सकती और इसीलिए वक्त का तकाजा है कि जो गढ़ा जाय वह साफ नजरिये के साथ सही बदलाव की कोशिश का प्रारूप पेश करे।

'अभिनव मीमांसा'' के इस अंक में साक्षात्कारों की विशिष्ट परम्परा के अन्तर्गत वरिष्ठ कवि श्री नरेश सक्सेना एवं सुप्रतिष्ठित कवि, वागर्थ के सम्पादक एकान्त श्रीवास्तव का साक्षात्कार प्रस्तुत है जो क्रमशः युवा कवि, आलोचक भरत प्रसाद एवं अरविन्द अवस्थी द्वारा लिए गये हैं। साक्षात्कारों पर संपादकीय टिप्पणी अगले पृष्ठों पर दी जा रही है।

विशिष्ट अध्ययन के अपने स्थायी स्तंभ में श्री शिवपूजन त्रिपाठी इस बार Why do People hate America पर आलेख दे रहे हैं जो न्यूयार्क से प्रकाशित पुस्तक पर आधारित है।

अभिनव मीमांसा को वास्तविक अर्थों में लोकप्रिय बनाने का श्रेय यदि किसी को जाता है तो वह श्री शिवपूजन त्रिपाठी को है। विगत अंक में शुजा नवाज की बहुचर्चित कृति पर 'पाकिस्तान का इतिहास-पाकिस्तान की सेना का इतिहास है। उनका लेख खासा चर्चित हुआ। व्यापक संख्या में पत्र मिले जिनमें कुछ प्रकाशित किए जा रहे हैं। स्थानाभाव के कारण सब प्रकाशित करना संभव नहीं है। इस लेख के कारण पत्रिका वैश्विक स्तर पर भी सराही गयी तथा उक्त पुस्तक की बिक्री भी हुई।

कहानी के अन्तर्गत चर्चित कथाकार पंकज सुबीर, वरिष्ठ कथाकार दीपक शर्मा की नयी कहानियां दी जा रही हैं। स्मृति खण्ड के अन्तर्गत मक़बूल फिदा हुसैन, प्रो0 कमला प्रसाद पर आलेख प्रस्तुत है। स्थायी स्तंभ में व्यंग्य पर शीर्ष व्यंग्यकार हरीश नवल, सिनेमा पर डॉ0 कीर्ति श्रीवास्तव का आलेख सम्मिलित है।

-विवेक पाण्डेय

मान्य व प्रिय विवेक पाण्डेय जी,

'अभिनव मीमांसा' का नया अंक (अप्रैल 2011) यथा समय मिल गया था। धन्यवाद। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का साक्षात्कार महत्वपूर्ण है। वे अच्छे कवि, लेखक, आलोचक और सम्पादक हैं। बड़ी बात यह भी कि बहुत अच्छे आदमी हैं। अच्छा रचनाकार एक अच्छा मनुष्य भी हो, अब इधर, यह ज़रूरी नहीं रह गया है। नूर मुहम्मद नूर की ग़ज़लें प्रिय लगती रहीं हैं- हमेशा ही। विजेन्द्र और अजित कुमार जैसे वरिष्ठ लेखक-कवि किसी भी पत्रिका में उपस्थित होकर उसकी गरिमा बढ़ाते हैं। नए रचनाकारों में भी कुछ आश्वस्त करते हैं। आज प्रत्येक पत्रिका को कुछ सामग्री भर्ती की देनी ही पड़ती है- चाहे वह नई लघुपत्रिका हो या प्रतिष्ठित पुरानी पत्रिका हो- ध्यान रखने की बात यही है कि हमारी पत्रिका का बहुलांश उत्कृष्ट सामग्रियों से भरा हो- 15 या 20 प्रतिशत की छूट ली जा सकती है। सम्पादक या पत्रिका को भी आज अनेक दबावों के बीच काम करना पड़ता है। फिर भी आपकी पत्रिका का एक प्रभाव पड़ता है। आपका श्रम झलकता है। बधाई और मंगल कामनाएँ। आशा है, भविष्य में पत्रिका के अंकों में उत्तरोत्तर निखार आएगा।

सम्पादकीय में आपने ठीक लिखा कि 'पत्रिकाएं मुफ़्त बिकें तो स्टॉलों पर लूट मच जाएगी।' सब मुफ्त पढ़ना चाहते हैं। मध्य वर्ग की यह बीमारी लाइलाज है। अन्यत्र हम कितना खर्च करते हैं, पर पुस्तकों और पत्रिकाओं हेतु कृपण हो जाते हैं।

मुख पृष्ठ पर कोई लैण्ड स्कैप (भूदृश्य) दें तो बेहतर। प्रकृति में एक खिंचाव होता है।

शब्द-अक्षरों का प्वाइंट कुछ और छोटा कर सकते हैं। ये सुझाव मित्रवत हैं- उचित लगें तो।

बहरहाल, अर्थ तो अच्छा ही है।

शुभकामनाओं के साथ!

एकान्त श्रीवास्तव
सम्पादक-वागर्थ

आदरणीय सम्पादक जी,

अभिनव मीमांसा का अप्रैल 2011 अंक प्राप्त हुआ । हिन्दी साहित्य में सुरूचिपूर्ण लेखन व उन्हें प्रकाशित करने वाली पत्रिकाओं का अभाव बहुत खटक रहा था । आपका यह प्रयास हिन्दी साहित्य को नई दिशा प्रदान करेगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। यद्यपि इस अंक में समाहित सभी सामग्री उच्चकोटि की है किन्तु विशिष्ट अध्ययन के अन्तर्गत श्री शिवपूजन त्रिपाठी का आलेख जो शुजा नवाज की पुस्तक क्रास्ड सार्डस-पाकिस्तान इट्स आर्मी ऐण्ड द वार्स विदिन पर आधारित है, बहुत ज्ञानवर्द्धक लगा । इस लेखन में पाकिस्तान के गठन से लेकर उसकी वर्तमान स्थिति तक का बहुत सजीव चित्रण किया गया है । शुजा नवाज ने तो अपने 30 वर्षों के अध्ययन व निजी अनुभवों के आधार पर उक्त पुस्तक का सृजन किया, किन्तु तथ्यों से भरपूर इस शोध ग्रन्थ का संक्षिप्तीकरण (केवल कुछ पृष्ठों में) एक दुरूह कार्य, 'गागर मे सागर' भरने जैसा है । उन्हें उक्त लेख पढ़कर ऐसा आभास अवश्य होगा कि उन्होंने कुछ खोया नहीं है । कोई महत्वपूर्ण तथ्य छूटा नहीं है और घटनाओं के विश्लेषण के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गयी है। श्री त्रिपाठी ने अपने इस लेख में, पूरी ईमानदारी के साथ जन अपेक्षाओं का पूरा ध्यान रखा है, इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

लेख के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पाकिस्तान, जिस 'धर्मिक', सिद्धान्त पर गठित हुआ था, वह स्वतः ही गलत था । जनरल जिया द्वारा धर्मान्धता को बढ़ावा देने के कारण ही, आज यह देश अपने वजूद की लड़ाई लड़ रहा है। 'धार्मिक उन्माद' व 'आतंकवाद', के बीच वहाँ की जनता, असहाय होकर पिस रही है । प्रारम्भ से ही वहाँ अनुभवी निष्ठावान व कद्दावर राजनेताओं का अभाव रहा है। उनके भ्रष्ट व निष्प्रभावी होने के कारण ही सेना ने शासनतंत्र पर कब्जा कर लिया जो आज तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कायम है। किसी ने ठीक ही कहा है कि पाकिस्तान में 'सेना ही एक समस्या है'। वहाँ पर सेना को जो सुख-सुविधायें व अधिकार प्राप्त हैं उन्हें वह आसानी से कैसे छोड़ सकती है? भारत या किसी अन्य देश से वार्ता या समझौते में वहाँ की सेना की सहमति आवश्यक है । सेना व आई0एस0आई0 के अपने निहित स्वार्थ के कारण, भारत व पाकिस्तान के सम्बन्ध मधुर नहीं हो पाते। मधुर सम्बन्ध हो जाने पर सेना व आई0एस0आई0 की उपयोगिता व उस पर निर्भरता अवश्य ही कम हो जायेगी । पाकिस्तान के बजट व वाह्य सहायता का अधिकांश हिस्सा, सेना व आई0एस0आई0 पर खर्च होता है।

लेखक ने ठीक ही लिखा है कि इस दुश्चक्र से उबरने के लिए, पाकिस्तान को एक प्रभावी, कर्तव्यनिष्ठ व ईमानदार राजनैतिक नेतृत्व का विकास करना होगा, जो सेना को बैरकों में वापस भेज सके और देश को 'फेल्ड स्टेट' होने से बचा सके । इस कार्य में पाकिस्तान के अवाम व अमेरिका को अहम भूमिका निभानी होगी । लेखक का यह कहना है कि पाकिस्तान का इतिहास, उसकी सेना का इतिहास है, लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है । त्रिपाठी जी के इस लेखन को प्रकाशित करने के लिए आपको धन्यवाद व शुभ कामनाएं।

माधुरी हलवासिया
8/1 गार्डेन न्यू अपार्टमेन्टस
राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

नई दिल्ली, 3 अक्टूबर, 2011

प्रिय विवेक,

आपके सम्पादन में शुजा नवाज की पुस्तक क्रास्ड सार्डस - पाकिस्तान का सार संक्षेप व्यापक रूप से प्रकाशित किया गया है, जिसके प्रति आप एवं लेखक श्री शिव पूजन त्रिपाठी को विशेष बधाई।

जिस राष्ट्र का निर्माण हिंसा और विभाजन की नींव पर रखा गया था उसके विखंडन की प्रक्रिया निर्माण के साथ ही शुरू हो गई थी। लेखक के अनुसार पाकिस्तान का परिदृश्य हमेशा कश्मीर और सेना के इर्द-गिर्द घूमता रहा है। ये वास्तविकता भी है। सेना ने तो पचास के दशक की शुरूआत से ही सत्ता हथिया ली थी और राजनैतिक नेतृत्व हमेशा ही कठपुतली और कमजोर रहा है। सेना की भूमिका देशिक मामलों में हमेशा ही निर्णायक रही है। यह भी कठोर सत्य है कि पाकिस्तान का इतिहास मात्र सेना का इतिहास है। वहां के सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य को सेना से जुदा नहीं किया जा सकता है और इसके कारण पाकिस्तान सतत अपनी पहचान खोता गया है। और अस्तित्व की उहापोह में फंसा हुआ है। एक और घटक हमेशा पाकिस्तान के भाग्य में हावी रहा है और वह है अमेरिका। अमेरिका पाकिस्तान की प्राणवायु रहा है और उसका हस्तक्षेप पाकिस्तान की नियति बन गया है। जो अब दोनो देशों की गले की फांस का कारण है। लेखक के दो वाक्य इसे चरितार्थ करते हैं।

शुरूआत में पाकिस्तान में सत्ता के तीन स्त्रोत होते थे। सेना न्यायपालिका और अमेरिका लेकिन अब नियामकों में थोड़ा परिवर्तन हुआ है। आर्मी, अमेरिका और अल्ला अब नियामक हो गये हैं। पुस्तक में एक निष्कर्ष स्पष्ट है कि पाकिस्तान में सत्ता की पकड़ सिर्फ सेना के हाथ में ही रही। यदि येन केन प्रकारेण यदि सत्ता लियाकत अली, जुल्फिकार अली भुट्टो और बेनजीर भुट्टो और नवाज शरीफ जैसे राजनीतिज्ञों के पास गई भी तो सेना ने उन्हें चलने नहीं दिया तथा सत्ता वापस हथिया ली । लेखक ने आर्मी जनरलों के साथ ही सत्तासीन राजनैतिक शासकों के कुचक्रों का और मजबूरियों का लेखा-जोखा पेश किया है। इस तथ्य का भी खुलासा किया गया है कि जनरल हमेशा इस मत को मानते थे राजनैतिक तंत्र कमजोर और अविकसित है तथा इस देश को संम्हालने में अक्षम और असमर्थ है कदाचित इसीलिए देश को एक जुट रखने में सेना का हस्तक्षेप जरूरी है और पाकिस्तान की तकदीर इसी जद्दो-जहद में डूबती उतराती रही।

सत्ता पर अपनी पकड़ बनाये रखने के लिए सेना के जनरलों अयूब खान, याह्या खान टिक्को खान, जियाउल हक और मुर्शरफ ने कभी जनता की भावनाओं को भड़काया, कभी चतुर और चालाक राजनीतिज्ञों का सहारा लिया, कभी धर्म का मुलम्मा चटाया और आतंकी तैयार किये और हर हाल में देश को अमेरिका के घुटनों पर टिकाया, जिसकी मदद के बिना पाकिस्तान का अस्तित्व ही नहीं है। इस सबसे ऊपर राजनैतिक और सैनिक शासकों ने देश की आर्थिक और राजनैतिक स्थिति, जो लगातार बिगड़ती ही रही है, उसकी तरफ से ध्यान हटाने के लिए कश्मीर के मुद्दे को छेड़ने और भारत का हौव्वा खड़ा करने के खतरे की संभावना को लेकर धार्मिक उन्माद और जेहाद और युद्ध को छेड़ने का प्रयास किया। खास कर जियाउल हक, ने जो पाकिस्तान के विखंडन और बर्बादी के लिए जिम्मेदार हैं।

सैनिक शासकों ने पाकिस्तान को दयनीय स्थिति में ला दिया और उन्माद भड़काने में जुल्फिकार अली भुट्टो यहां तक पहुंच गये थे कि वे 1000 साल तक भारत के साथ युद्ध करने का आह्वान करते थे।

लेखक ने भारत के साथ तीन युद्धों में पराजय के कारणों की पृष्ठभूमि तलाशने की कोशिश की है। यह रहस्योद्घाटन भी पाकिस्तान के शासकों की जनता पर पकड़ का हवाला देता है कि ताशकंद में जनरल अयूब ने प्रधानमंत्री से (लालबहादुर शास्त्री) निवेदन किया था कि कश्मीर के मामले में ऐसा कुछ कीजिए कि मैं, अपने मुल्क में मुंह दिखाने के लिए काबिल रहूं।

प्रस्तुत लेख में लेखक ने जिस बेबाकी से तथ्यों का खुलासा किया है वह काबिले तारीफ है। तथ्य रोचक और दमदार है और साहस के साथ पाकिस्तान की राजनैतिक और सैन्य विसंगतियों का आकलन है। और अच्छा होता यदि लेखक आईएसआई और नशीले पदार्थों के सिलसिले में पाकिस्तान की सेना की भूमिका उजाकर करते। एक नजर एक आतंकवादी देश में बदलते पाकिस्तान पर डालते जो आतंकवादी शिविरों और तालिबानों के चलते दुनिया का सबसे खतरनाक मुल्क बन गया है।

–डॉ0 राजश्री त्रिवेदी

एम. 106 II फ्लोर ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली–110048

(राजश्री त्रिवेदी दूरदर्शन के लोकप्रिय कार्यक्रम पाकिस्तान रिपोर्टर की वर्ष 1995 से 2000 तक एंकरिग कर चुकी हैं।)

सम्पादक

सम्मान्य विवेक जी,

अभिनव मीमांसा का अंक प्राप्त हुआ । पत्रिका के बारे में जब सुना था तो ऐसा नहीं लगा था कि पत्रिका सामग्री एवं मुद्रण की दृष्टि से कितनी आकर्षक होगी। शुजा नवाज की पुस्तक पर शिवपूजन त्रिपाठी की टिप्पणी किसी ऐतिहासिक दस्तावेज से कम नहीं है। चर्चित पुस्तकों का सामग्री विवेचन पत्रिका के लिए एक अभिनव प्रयोग है।

इसे आगे भी जारे रखेंगे, ऐसी आशा और प्रतीक्षा है। डा0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का साक्षात्कार रूचिकर लगा। शशि भूषण जी के सवाल थोड़े छोटे होते तो बेहतर होता। गजलों और कहानियों के अलावा संगीत और कला की चर्चा ने पत्रिका को नूतनता प्रदान की। कुल मिला कर क्या पढ़े क्या न पढ़े वाली अवस्था थी। इन्टरनेट और सूचना क्रांति के इस संसाधन संपन्न युग में खिलाफ हवा से गुजरते हुए एक साहित्यक पत्रिका के कुशल संपादन के लिए साधुवाद स्वीकार करें।

ममता शर्मा

57 मानसरोवर, पोस्ट–हटिया, रांची

नई दिल्ली, 12.05.11

प्रिय विवेक जी,

आपकी राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय पत्रिका ''अभिनव मीमांसा'' में श्री शिव पूजन त्रिपाठी का एक विस्तृत आलेख शुजा नवाज की पुस्तक पर पढ़ा। ऐसा लगा कि श्री त्रिपाठी स्वयं इतिहासकार लेखक हैं जिसके फलस्वरूप इतनी विस्तृत जानकारी उन्होंने दी। श्री त्रिपाठी, धन्यवाद एवं बधाई के पात्र है जिन्होंने इतना विस्तार से इस विषय का अध्ययन किया। मालूम पड़ता है कि शिव पूजन जी अंग्रेजी व हिन्दी दोनों भाषाओं पर अच्छी पकड़ रखते हैं। इतनी बड़ी पुस्तक, इतना विस्तृत वस्तु विषय को कुछ पन्नों में उतारकर एक प्रशंसनीय कार्य किया है। ये तो जग जाहिर है कि पाकिस्तान के राजनेता सेना व ISI के इशारों पर खेलते हैं तथा उनका संचालन अमरीका ही करता है। पिछले दिनों एक अखबार ने तो यहां तक लिख दिया कि पाकिस्तानी सेना में नीचे से ऊपर की सब अफसरों की गोपनीय रिपोर्ट व गतिविधि निर्धारण USA में होता है। पाकिस्तान में असली सत्ता केन्द्र वहां शासक सेना व ISI है तथा राजनैतिक नेता मात्र कठपुतलियां है।

आपसे आग्रह है कि श्री शिव पूजन त्रिपाठी जी के विशिष्ट अध्ययन श्रृंखला को निरंतर बनाये रखेंगे। अमूमन यह हिन्दी साहित्यिक पत्रिकाओं में नहीं पढ़ने को मिलता है। कुछ पुरस्कार वितरित कर पत्रिकाओं को प्रचार में लाने का शर्मनाक काम किया जा रहा है। पुरस्कारों की विश्वसनीयता एकदम समाप्त हो गई है।

अभिनव मीमांसा ने अपनी अलग, स्वतंत्र, निष्पक्ष पहचान बनायी है। पुनः त्रिपाठी जी के लेख के प्रति आपको कुशल सम्पादन के लिए मेरी बधाई ।

कुन्दन लाल कलूचा

प्रिय विवेक जी,

अभिनव मीमांसा का अप्रैल 2011 अंक प्राप्त हुआ । आपने रचनाशीलता की विविध विधाओं को स्थान दिया है जो स्वागत योग्य है ।

शिवपूजन त्रिपाठी का लेख 'पाकिस्तान का इतिहास, पाकिस्तानी सेना का इतिहास है' और डा. कमल किशोर गोयनका का लेख 'प्रेमचन्द्र के झूठे दावेदार' ज्ञानवर्धक हैं। इसके अतिरिक्त नूर मुहम्मद 'नूर' की ग़ज़ले, विजेन्द्र, अजित कुमार और रवीन्द्र स्वप्निल प्रजापति की कविताएं, भाषा सिंह का मीडिया विषयक लेख, उमा सक्सेना और रेनू शर्मा के संगीत विषयक लेख, अंजुली बिसारिया का लघु चित्रण शैली पर लेख और कीर्ति श्रीवास्तव का फिल्मी गीत संगीत संबंधी लेख अंक को महत्वपूर्ण बनाते हैं ।

कुशल सम्पादन के लिए बधाई!

दामोदरदत्त दीक्षित

आदरणीय विवेक पाण्डेय जी,

हिन्दी जगत में अनेक पत्रिकाओं के बीच एक और नया नाम 'अभिनव मीमांसा'' जुड़ने पर प्रसन्नता हुई। ''अभिनव मीमांसा'' मिलते ही पढ़कर महसूस हुआ कि व्यावसायिकता और बाजारवाद के माहौल में किसी नयी पत्रिका का अपने मानक मूल्यों के साथ निकलना, अपनी जगह बनाना बड़ा कठिन कार्य है किन्तु आपने यह कार्य संपन्न किया।

संवाद श्रृंखला के अन्तर्गत वरिष्ठ कवि, आलोचक डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का साक्षात्कार काफी प्रभावशाली व संग्रहणीय है। डॉ0 तिवारी ने प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से कवि कर्म की ईमानदारी, कविता की रचना प्रक्रिया, कविता की व्याकरणीय परम्परा एवं आलोचक के दायित्व पर प्रकाश डाला है। छन्दमुक्त कविता के संदर्भ में कविता में भीतरी आवेगों के प्रवाह और लय के विधान पर जोर दिया है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि रचनाकार को दलीय राजनीति से ऊपर उठ कर रचना कर्म करना चाहिए।

विशिष्ट अध्ययन की श्रृंखला के अन्तर्गत पाकिस्तानी मूल के लेखक शुजा नवाज की पुस्तक ''क्रास्ड-सार्डस-पाकिस्तान 'इट्स आर्मी एण्ड द वार्स विदिन' पर श्री शिवपूजन त्रिपाठी का आलेख पत्रिका को गौरवान्वित करता है।

इस ऐतिहासिक राजनीतिक दस्तावेज के प्रकाशन के प्रति श्री त्रिपाठी की जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है।

उन्होंने लेख के माध्यम से पाकिस्तान एवं उसकी सेना की कहानी, भारत-पाकिस्तान तथा अमरीका-पाकिस्तान के संबंधों का पूरे प्रमाणित तथ्यों के साथ खुलासा किया है।

वास्तव में पाकिस्तान के सैन्य शासन ने केवल पाकिस्तान का विकास अवरुद्ध किया वरन भारत सहित विश्व की राजनीति व राजनयिक संबंधों को प्रभावित किया। आलेख को आद्योपान्त पढ़ने के बाद एक तथ्य उभर कर सामने आता है कि भारत और पाकिस्तान का अस्तित्व जितना स्वयं के लिए महत्वपूर्ण है उतना ही विश्व के लिए भी। इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर सशक्त प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में उभरने के लिए आवश्यक है कि दोनों राष्ट्र पूर्वग्रह छोड़कर नए सिरे से चिंतन करें।

प्रो0 सुरेन्द्र स्निग्ध का आलेख भी महत्वपूर्ण है। सुरेन्द्र जी की इस बात से सहमत होना लाजमी है कि रेणु के उपन्यास और कहानियों को समझने के लिए केवल भाषा को (शाब्दिक स्तर) समझना पर्याप्त नहीं है वरन कोसी जनपद की जीवन शैली और संस्कृति को समझना भी आवश्यक है।

वरिष्ठ कवि विजेन्द्र, अजित कुमार तथा श्री कुंदन लाल कलूचा की कविताएं प्रभावशाली हैं। श्री दामोदर दत्त दीक्षित का व्यंग्य लेख ''पर्दा है पर्दा'' समाज का सच भी सामने रखता है। हमारे समाज सुधारकों ने एड़ी चोटी का जोर लगाकर महिलाओं को पर्दा प्रथा से बाहर निकाल कर उन्हें स्वाभिमान व साहस के साथ जीने का रास्ता दिखाया। वहीं आज की महानगरीय भौतिकतावादी सभ्यता ने नवयुवतियों को एक नयी तरह की पर्दा प्रथा ईजाद कर उनके पतन का रास्ता खोल दिया।

दीक्षित जी का यह संकेत सत्य मालूम पड़ता है कि पर्दे का प्रयोग लड़कियां धूप से बचने के लिए नहीं वरन युवा प्रेमियों के साथ फ्लर्ट करने के लिए करती है ताकि उन्हें कोई पहचान न सके।

डॉ0 कीर्ति श्रीवास्तव की लिखित लेख ''भारतीय फिल्मों का सदाबहार गीत संगीत'' तीस के दशक से लेकर अब तक की पूरी परम्परा का परिचयात्मक विवरण है।

कुल मिलाकर अभिनव मीमांसा अपने सही अर्थों में अपने दायित्व का निर्वाह करने का पूरा-पूरा प्रयास कर रही है। अभिनव मीमांसा के अगले अंकों में और भी अधिक कसावट, परिमार्जन की आशा है।

पत्रिका के अनवरत चलते रहने एवं उत्कृष्ट स्तर हेतु शुभ कामनाएं !

डॉ0 पुष्पा दूबे

सीहोर, मध्य प्रदेश

दिनांक : 20.10.2011

डी II/83 पश्चिम किदवई नगर, नई दिल्ली-110023

प्रिय विवेक,

'अभिनव 'मीमांसा ' भारतीय दर्शन में 'मीमांसा' की समृद्ध परम्परा की अनुगूंज लिए हुए है। आप जैसे युवा सम्पादक नई पीढ़ी को मीमांसा की तार्किकता से इसी तरह जोड़े रहें तो बात बने।

आपके सम्पादकीय में वह चमक है जो चीजों को गहराई से जांचने परखने की ललक से पैदा होती है। रचनाओं का चयन दृष्टि सम्पन्न है। एक थीम का चयन करके उस पर विभिन्न दृष्टिकोण समाहित करना भी उपयोगी हो सकता है।

लघु पत्रिकाएं हमारे सांस्कृतिक जीवन की 'लाईफ लाइन' हैं। यह कोशिश करे कि गांव, कस्बो के वाचनालयों तक 'अभिनव मीमांसा' की पहुँच हो और हिन्दी क्षेत्र में हर जगह यह अवकाश प्राप्त सज्जनों, बेरोजगार युवकों और स्त्रियों का एक पाठक क्लब तैयार कर सके।

अनामिका

हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, रविवार 16 अक्टूबर, 2011

लघु पत्रिका का व्यापक दायरा

अपने ही दम पर चलने वाली लघु पत्रिकाएं जहां एक ओर रोजगार के क्षेत्र में कुछ अंशदान कर रही हैं। वही दूसरी ओर साहित्य, कला-संस्कृति के क्षेत्र में लघु पत्रिकाओं के मार्फत व्यापक तौर पर सामाजिक राजनीतिक चेतना को फैलाने का काम किया है। त्रैमासिक पत्रिका अभिनव मीमांसा का यह अंक अपने में विविध विषयों पर सामग्री समेटे हुए है। अंक की विशेषता पाकिस्तान पर शुजा नवाज की पुस्तक 'क्रास्ड सार्ड्स...... 'पर एक लंबा आलोचनात्माक आलेख है जिसके जरिए उन्होंने आज के पाकिस्तान की भीतरी हलचलों को परखा है। इसके अलावा गजल, कहानियां, संगीत, मीडिया, कला व पुस्तकों पर भी पठनीय सामग्री है।

जनसत्ता, रविवार 17 जुलाई, 2011

साहित्य कला, संगीत और संस्कृति का आयोजन यह अर्द्धवार्षिक पत्रिका है और अभी अपने चौथे अंक में ही है। कवि, आलोचक और दस्तावेज पत्रिका के संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी से शशि भूषण द्विवेदी ने बहुत अच्छी और काम की बातचीत हिंदी कविता पर कर ली है। आज की हिन्दी कविता दरअसल हो ही ऐसी गयी है कि आज उसे लिखने की बजाए उस पर कुछ जरूरी बातें करना जरूरी हो गया है। इस बातचीत की विशिष्टता इस अर्थ में भी है कि प्रश्नकर्ता के प्रश्न बड़े हैं पर उत्तर छोटे हैं। विशिष्ट अध्ययन के तहत पाकिस्तानी लेखक शुजा नवाज की किताब 'क्रास्ड सार्डस पाकिस्तान इट्स आर्मी एंड द वार्स विदिन' का एक तरह से अनुवाद है। यह पाकिस्तान के सेना द्वारा अपहरण किए जाने की ही दास्तान है कि किस तरह एक देश अपने ही लोगों द्वारा निरंतर तोड़ा और लूटा जाता रहा। सेना की शक्ति मनमानी और चुनी हुई सरकारों की बेबसी की भी यह कहानी है।

नूर मुहम्मद नूर

प्रिय भाई,

अभिनव मीमांसा का अप्रैल 11 का अंक मिला, इतने कम समय में पत्रिका ने अपनी पहचान बना ली है, लेकिन अभी लम्बा रास्ता तय करना है, पत्रिका निकालना कठिन ही नहीं चुनौतीपूर्ण काम है, आज के समय बहुत सी पत्रिकायें निकल रही हैं लेकिन बंद भी हो जा रही हैं, क्योंकि वे समय की चुनौती को स्वीकार नहीं कर पा रही हैं। इस अंक में डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का साक्षात्कार उल्लेखनीय है। प्रेमचंद के झूठे दावेदार में डॉ0 कमल किशोर गोयनका हमारे सामने नये तथ्य रखते हैं, शिवपूजन त्रिपाठी का पाकिस्तान पर आलेख वहां के अन्दरूनी हालात से परिचित कराता है। विजेन्द्र, अजित कुमार, रवीन्द्र स्वप्निल प्रजापति की कवितायें अच्छी हैं। कविताओं के चयन में सतर्कता की जरूरत है।

स्वप्निल श्रीवास्तव

510 अवधपुरी कालोनी, अमानीगंज-फैजाबाद पिन-224001

संवाद-1

वरिष्ठ कवि श्री नरेश सक्सेना से भरत प्रसाद का साक्षात्कार

भविष्य के नागार्जुन और शमशेर युवा कवियों के बीच से आने वाले हैं।

इस अंक में दो साक्षात्कार सम्मिलित किए गए हैं। हिन्दी के वरिष्ठ कवि श्री नरेश सक्सेना का साक्षात्कार भरत प्रसाद एवं वागर्थ के संपादक तथा लोकप्रिय कवि श्री एकांत श्रीवास्तव का साक्षात्कार अरविन्द अवस्थी द्वारा संपादित किए गए हैं।

श्री नरेश सक्सेना की काव्यदृष्टि पूर्णत: वैज्ञानिक और समसामयिक सामाजिक सरोकारों से सम्पन्न है। उनकी कविताआं मे वैचारिकता और तकनीकी का संवेगात्मक प्रवाह झलकता है। उनका मानना है कि कविता की अनिवार्य शर्त 'सूक्ष्मता'और 'सघनता' को दरकिनार कर लिखी जाने वाली कविताएं निराश करती हैं। युवा कवियों में उन्हें संभावनाएं दिखाई पड़ रही है और उनके बीच से भविष्य के नागार्जुन और शमशेर की उन्हें प्रतीक्षा है।

विवेक पाण्डेय, सम्पादक

कविता, कहानी एवं आलोचना तीनों विधाओं में दखल रखने वाले भरत प्रसाद उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में सन्त कबीर नगर जिले में 1.07.1971 को पैदा हुए। भरत ने एम.ए., एम.फिल., जे. एन.यू., नई दिल्ली से किया। भरत ने साहित्य में हाल के वर्षों में अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज करायी है। भरत प्रसाद की दो कविता की पुस्तकें तथा एक लेख संग्रह (शिल्पायन, दिल्ली) प्रकाशित हुई हैं।

विवेक पाण्डेय, सम्पादक

भरत प्रसाद–आप हिन्दी कविता के लम्बे दौर के सजग साक्षी और अनुभव–सम्पन्न साहित्यकार हैं। अकविता आंदोलन से लेकर हिन्दी कविता के वर्तमान दौर के तमाम उतार–चढ़ाव को आपने नजदीक से देखा है। आज जबकि सामने नई सदी की कविता अपने अप्रत्याशित भविष्य के साथ सामने खड़ी है, उसके समक्ष कविता के पिछले इतिहास की सार्थकता किस प्रकार देखते हैं? क्या विगत सदी में प्रयुक्त कविता के तौर–तरीके गैर–प्रासंगिक और पुराने पड़ गये हैं?

नरेश सक्सेना : निराला के आने तक कविता बिम्ब, छन्द, लय के साथ लिखी जा रही थी, जिसमें, संगीत भी शामिल था। इसी समय में वैचारिकता, तकनीकी का विस्फोट हो रहा था और कविता इसे संभाल नहीं पा रही थी।

अपने समय के कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से कबीर, जायसी और तुलसीदास आज भी प्रासंगिक हैं। यदि कविता ने छन्द और लय छोड़ दी तो उसे उसकी भरपाई भी करनी पड़ेगी। यही कविता के लिए चुनौती है। बहुत सी कविताएं जो आज लिखी जा रही हैं वो 500 साल पुरानी कविताएं है।। हाँ, 500 वर्ष आगे की भी कविताएं आज लिखी जा सकती हैं। और मुझे लगता है लिखी भी जा रही हैं। समय ऐसा है कि कवि को कई मोर्चे एक साथ संभालने हैं। राजनीति कहती है – भाषा से बाहर आकर लड़ने का समय है जबकि यहां कवि भाषा के दायरे में रहकर ही एक झूठी लड़ाई – या लड़ाई का भ्रम फैला रहा है। नया कथ्य लायेंगे तो नया शिल्प भी लाना होगा।

नयी सदी की कविता अपने समय की जानकारियों को नयी भंगिमाओं में पकड़ रही है। जबकि आलोचना मात्र सूची बता रही है, अमूर्त धुंध फैला रही है। अब रचना का स्पष्ट रेखांकन करना पड़ेगा।

बिम्ब, लय, छन्द, संगीत बाद की चीजें है। कविता की पहली और अनिवार्य शर्त है 'सूक्ष्मता' और सघनता यानी कम शब्दों में ज्यादा कहने की कला यदि अधिक शब्दों में कम बात कहेंगे तो वह गद्य है कविता नहीं आप देखिये कि विज्ञान में फालतू शब्दों का प्रयोग नहीं होता। फिर भी वैज्ञानिक कथन कविता से एक कदम पीछे ही रहता है। वैज्ञानिक कथन में मनुष्य का जीवन और जीवन मूल्यों के सरोकार और प्रतिबद्धताएं नहीं होती। कविता को विज्ञान से आगे चलना है तो सूक्ष्मता के साथ ही सौन्दर्य और संवेदनीयता को भी साधना होगा। बिम्बलय आदि का सम्बन्ध सौन्दर्य से है। यह कठिन है सधते–सधते सधता है। कोई कवि यदि जल्दी में है तो उसकी राह और भी कठिन हो जायेगी। विगत सदी का कोई तौर तरीका अप्रासंगिक नहीं हुआ है। कथ्य और शिल्प यानी तकनीकी और औजार तो बदलेंगे ही। यदि पुराने तौर तरीके अप्रासंगिक होते तो कालिदास, तुलसी, कबीर की पंक्तियों पर हमारे मुंह से 'वाह' नहीं निकलती। 'रचना समय' के कविता विशेषांक में अशोक पाण्डेय 20 करोड़ डिग्री सेल्सियस तापक्रम की बात करते हैं। यह हिरोशिमा पर गिरे परमाणु बम से पैदा तापक्रम था। इस तापक्रम को तुलसी या कालिदास तो कविता में ला नहीं सकते थे। लेकिन आज के कवि का काम इतने भर से पूरा नहीं हो जाता बल्कि बढ़ जाता है। सूर्य का तापक्रम और पृथ्वी से उसकी दूरी फसलें पकाने, फोटोसिन्थेसिस द्वारा ऑक्सीजन पैदा करने में उसकी भूमिका इधर परमाणु के विखंडन से पृथ्वी पर इस तापक्रम की सृष्टि यानी मनुष्य

द्वारा मनुष्यों को मारने और पृथ्वी को नष्ट करने के उपक्रम द्वितीय विश्वयुद्ध हिटलर, तोजो, और मुसोलिनी की भूमिका। स्वयं आइन्सटाइन द्वारा अमेरिकी राष्ट्रपति को परमाणु बम बनाने का सुझाव और बाद में पश्चाताप। यह सिर्फ परमाणु के विस्फोट का ही नहीं विचारों और ज्ञान के विस्फोट का भी समय है। इन बातों से यह भ्रम भी नहीं होना चाहिये कि कविता हम ज्ञान के लिये पढ़ते हैं। हर कला का सम्बन्ध आनन्द से संवेदना और सौन्दर्य और सरलता से पहले होता है। ज्ञान और जटिलताओं से बाद में। कलाएं हमें नयी दृष्टि देती हैं और बेहतर मनुष्य बनाती हैं। ज्ञान चीजों को जटिल नहीं बनाता, सरल बनाता है।

भरत प्रसाद : कई शताब्दियों की अमर उम्र वाली यह आदि विधा आपकी नजर में इस समय कितनी समृद्ध है और इसमें कितनी सम्भावनाएं अभी शेष हैं? क्या धूमिल, कुमार विकल, गोरख पांडे, भगवत रावत जैसे कवियों से सम्पन्न रहने के बावजूद समकालीन कविता में कोई तकलीफदेह खालीपन है? एक प्रखर काव्य-चिंतक के तौर पर समकालीन कविता की यात्रा को आप किस रूप में देखते हैं।?

नरेश सक्सेना–काव्य तत्वों का उपयोग सिनेमा और विज्ञापन कर रहा है लोक हमारा नष्ट हो चुका है। गांव का लोक गायब हो गया, मण्डलियां खत्म हो चुकी हैं। आज सिर्फ शहरी लोक है। अब मशीनों के गाने का समय है। कविता की कोई जगह मीडिया में नहीं। समय के परिवर्तन को ध्यान में रखिए।

आजादी की लड़ाई हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में लड़ी गयी। देशी भाषाओं के पास 1947 तक आत्म गौरव था, भविष्य था। आज देशी भाषाओं की कोई हैसियत नहीं है। हिन्दी बाजार की भाषा है और वह खूब फैल रही है, इससे ग्रसित न हों। बड़े बड़े लेखकों को मैंने इसी भ्रम में देखा है। हिन्दी में और दूसरी भारतीय भाषाओं में विज्ञान और तकनीकी और इंजीनियरिंग की उच्च शिक्षा नहीं दी जा रही। अबवह कभी दी भी नहीं जायेगी। तो हिन्दी अब ज्ञान की नहीं अज्ञान की भाषा है। उसका विस्तार हो रहा है, विकास नहीं हो रहा। भाषा के साथ ही हिन्दी साहित्यकार भी अपनी हैसियत खो चुका है। समाज में और राजनीति में बतौर साहित्यकार उसकी कोई पूछ नहीं है। इसीलिए उसकी पुस्तकें कोई नहीं खरीदता। अंग्रेजी साहित्यकारों की पुस्तकें लाखों में बिकती है। हिन्दी की सैकड़ों में भी नहीं। वह दो नम्बर की भाषा है। बेपढ़े लिखों की। आपको पढ़कर शायद आघात लगे। दु:खद यह है कि यह बात सच है।

चीन, जापान, कोरिया, के टैक्नोलॉजी में आगे होने का क्या कारण है? वे अंग्रेजी में काम नहीं करते। अपनी मातृभाषाओं में करते है। बांग्ला देश, श्रीलंका, पाकिस्तान, भारत के पिछड़ने के क्या कारण हैं- ये देश अपनी मातृभाषाओं में काम नहीं करते। अंग्रेजी में करते हैं। दुनिया के सारे प्रगतिशील देश अपनी मातृभाषाओं में काम करते हैं। भारत की आबादी सवा सौ करोड़ है। इसका एक प्रतिशत भी सवा करोड़ होता है। सोचिये यदि हम करोड़ों यानी 99 प्रतिशत बच्चों को, लोगों को मातृभाषाओं में अवसर देंगे तो भारत कहां से कहां पहुंचेगा।

यही कारण है कि हिन्दी साहित्यकार के अवचेतन में एक गहरी उदासीनता बैठ गयी है। यह उदासीनता 'रचना' में आलोचना में भी देखी जा सकती है। आप कुछ भी लिखिये, कहीं कोई व्यापक प्रतिक्रिया नहीं होगी। सारा साहित्य 300-400 लोगों के समूहों में सिमट कर रह गया है। हिन्दी की बड़ी से बड़ी पत्रिका 10000 दस हजार से ज्यादा नहीं छपती। साठ करोड़ हिन्दी भाषियों के बीच इस संख्या का क्या अर्थ है? साठ करोड़ का एक प्रतिशत साठ लाख होता है। अब स्थिति का अन्दाजा आप खुद लगा लीजिये। रचना समय के कविता विशेषांक में मैंने विश्वविद्यालयों और स्कूलों के हिन्दी साहित्य के छात्रों का एक हवाला दिया है उसे पढ़ लीजिये तो आप स्वयं समझ जायेंगे कि स्थिति कितनी बदतर और निराशाजनक है।

फिर भी मैं कहूंगा कि कुछ कवि अपनी रचना शीलता को लेकर अब भी गम्भीर है। विनोद कुमार शुक्ल, राजेश जोशी, विष्णु खरे, चन्द्रकान्त देवताले, देवी प्रसाद मिश्र, मंगलेश डबराल कात्यायनी, कुमार अम्बुज, एकान्त श्रीवास्तव, हरीश चन्द्र पांडेय, विष्णु नागर और तमाम नाम लिये जा सकते हैं। जो एक लम्बी और संघर्षशील यात्रा के बाद यहां पहुंचे हैं।

अशोक बाजपेयी, ऋतुराज, भगवत रावत या विश्वनाथ त्रिपाठी भी अपनी रचनाशीलता के प्रति सजग रहते आये हैं। व्योमेश शुक्ल का नाम या बहुत नये हरीश वर्मा जैसे युवाओं के नाम जेहन में कौंधते हैं। इनके पास बहुत नया कथ्य है।। किन्तु फार्म अभी सधना है। बात को सिर्फ कह देने से कथन पूरा नहीं होता उसे सुना और समझा जाना भी जरूरी होता है। इधर हरीश वर्मा की और प्रेमचन्द गांधी की कई कविताएं उनके बारे में उम्मीद जगाती हैं।

भरत प्रसाद: आधुनिक हिन्दी कविता में निराला और मुक्तिबोध ऐसे दो छोर हैं, जिनसे गुजरे बगैर हिन्दी कविता को किसी मुकाम तक नहीं ले जाया जा सकता । नागार्जुन ने एक तरीका दिया कि साहित्य में आम पाठक कैसे पैदा किये जाते हैं। लाखों पाठकों का संसार निर्मित कर उन्हें सृजन की इज्जत करने के लिए मजबूर कर देना, विरले लेखकों को पता होता है। क्या आपको लगता है कि पाठकों की नई दुनिया को जन्म देने का दुष्कर कार्य आज के कवि कर रहे हैं?

नरेश सक्सेना–नये कवि पाठकों को जन्म नहीं दे पा रहे हैं। कविता ने मंच छोड़ दिया। कवि काव्य-सम्मेलनों में जाते थे और श्रोता रात-रात भर कविता सुनते थे।

ध्यान रखिए कि नागार्जुन अपनी कविता पढ़ते थे और नाचते-गाते भी थे। वे आजादी के पहले और आजादी के बाद भी जेल गये। क्या युवा पीढ़ी में यह जज्बा है? नागार्जुन की 'मंत्र' कविता। इसमें वे मदारी की शैली का इस्तेमाल करते हैं। 'मंत्र' कविता शिल्प के प्रयोग का अन्यतम नमूना है। कवि अब इंटरनेट से तत्व खोज रहा है। भारतीय स्रोतों से काव्य तत्व नहीं खोज रहा है। इसलिए कविता नकली होती जा रही है। जब तक आप अपनी जमीन से चीजें नहीं लायेंगे......। बाढ़ में बिहार के लोग पाखाना करने के लिए दोपहर तक जगह की तलाश करते रह जाते हैं। एक हजार साल पहले हमारा जीवन जैसा था, आज उससे भी नीचे गिर चुका है। मुक्तिबोध का जीवन जीने और निराला जैसी साधना के लिये कौन कवि तैयार है?

भरत प्रसाद: छायावाद एक, ऐतिहासिक मोड़ है, आधुनिक हिन्दी कविता का, जिसने न सिर्फ कथ्य, संवेदना और शिल्प को, बल्कि भाषा की सामर्थ्य को भी नये तरीके से प्रकट किया। आज जबकि पिछले पन्द्रह बीस वर्षों से हिन्दी कविता की भाषा, शिल्प और संरचना में अद्‌भुत, कल्पनातीत प्रयोगों का तूफान उठ खड़ा हुआ है। तब के और आज के इस शिल्पगत परिवर्तन की सार्थकता को आप किस तरह से देखते हैं?

नरेश सक्सेना : छायावाद पारम्परिक छन्द में लिखी जाने वाली कविता थी-

छायावाद के कथ्य के बारे में एक बात याद रखनी चाहिये कि निराला, पन्त या प्रसाद भारत की आजादी के संघर्ष के दौर में कवि थे। किन्तु उन्होंने कोई कविता इस संघर्ष के लिये नहीं लिखी। यह कहना कि उनकी कुछ कविताओं की व्यंजना में इस संघर्ष की संगति देखी जानी चाहिये मुझे ठीक नहीं लगता। हालंकि मैं कोई निषकर्ष नहीं दे सकता। छायावाद का अध्ययन मैंने नहीं किया इसलिये मैं इसका अधिकारी नहीं। किन्तु माखनलाल चतुर्वेदी, भवानी प्रसाद मिश्र या दिनकर का रोल क्या इस दृष्टि से बेहतर नहीं था? इस पर विचार किया जाना चाहिये।

आपका कहना है कि 15-20 वर्षों में भाषा, शिल्प, और संरचना में अद्‌भुत और कल्पनातीत प्रयोगों का तूफान उठ खड़ा हुआ है। आप कहते हैं तो जरूर उठ खड़ा होगा। उनकी कविताओं के नमूनों को सामने रखकर बात करें तो बेहतर होगा। अमूर्त बातचीत का मैं कायल नहीं। वजह शायद यह है कि मैं हिन्दी साहित्य में दीक्षित ही नहीं हूं। वैसी बातचीत के लायक मैं नहीं हूं। कविता का उदाहरण सामने रखें तो बात मैं जरूर करना चाहूंगा। आप शायद ठीक कह रहे हैं लेकिन रचनाएं लाइये तभी इस पर सार्थक बात होगी।

भरत प्रसाद: कविता के लगभग प्रत्येक दौर में दो धाराएं साफ तौर पर चलती हैं। एक प्रचलित, स्थापित और बहुचर्चित सृजन धारा और दूसरी अप्रचलित अस्थापित और अल्पचर्चित काव्य धारा। प्रायः यह सर्वव्यापक भ्रम रहा है कि प्रचारित, लोकप्रिय और बहुचर्चित ही श्रेष्ठ है, स्तरीय है और सृजन का पैमाना है, जबकि वास्तविकता इससे अलग है। कई बार बेहद मूल्यवान और अनमोल सृजन अपने समय में उपेक्षित और गुमनाम रह जाता है, जबकि कम योग्य कवियों, लेखकों ने सूद-ब्याज सहित वाहवाहियां लूटी हैं। क्या आपको लगता है कि अपने वक्त में किसी ऐसे कवि की उपेक्षा हुई है, जो श्रेष्ठ सम्मान और व्यापक मान्यता पाने का हकदार था?

नरेश सक्सेना : मुक्तिबोध की कविताएं 'ब्रह्मराक्षस' और 'अंधेरे में' में उनकी मृत्यु के आस-पास प्रकाशित हुई। मुक्तिबोध का संग्रह उनके जीवन काल में न होने के बावजूद वे चर्चित और मान्य थे। दूसरे उदाहरण विनोद कुमार शुक्ल। अशोक बाजपेयी 20 साल पहले उन्हें महत्वपूर्ण कवि मानते थे। चूंकि वे अलग ढंग से कविता लिखते थे इसीलिए उन्हें कलावादी घोषित कर दिया गया। उन पर उपेक्षा का असर नहीं पड़ा। बहुत से युवा कवि हैं जो इस बीच सामने आये हैं।

अच्युतानन्द मिश्र, मनोज कुमार झा, उमाशंकर चौधरी, प्रेमचन्द गांधी कुमार अनुपम, हरीश वर्मा, अशोक पाण्डेय, व्योमेश शुक्ल, निशान्त, बहादुर पटेल, विनीत तिवारी आशीष त्रिपाठी, केशव तिवारी, आलोक वर्मा, जो अलग-अलग तरह से अपनी रचनात्मकता से जूझ रहे हैं।

भरत प्रसादः युग का सत्य कभी भी सपाट, एक रेखीय या सतही नही होता। यह दर हकीकत समय रहते मुक्तिबोध ने भांप लिया था, तभी वे फैंटेसी जैसे जटिल और दुष्साध्य शिल्प को अपनाने के लिए विवश हुए। आज का दौर जबकि जीवन समाज, सत्ता, संस्कृति और अन्तःमानस के स्तर पर जटिल से जटिलतर होता जा रहा है, क्या आपको नहीं लगता कि आज के कवि को भी मुक्तिबोध जैसी तैयारी करनी चाहिए, जो अपने दस्तावेजी सृजन की ताकत से युग-यथार्थ का मुकम्मल सत्य प्रस्तुत कर सके।

नरेश सक्सेना : वर्डसवर्थ और कॉलरिज ने 200 वर्ष पहले फैण्टेसी पर विचार किया था। मुक्तिबोध ने 'सृजन के तीन क्षण' लिखा। कालरिज ने भी सृजन के क्षणों पर चिंतन किया है। मुक्तिबोध ने इस अवधारणा को अपने तरीके से मौलिक बनाया। मुक्तिबोध ने 'ब्रह्मराक्षस' को पुराणों से लिया है। मुक्तिबोध अपनी परम्परा में गहरे डूबे थे और उन्होंने उसे पुनर्रचित किया। मुक्तिबोध जैसा जीवन जीने के लिए कौन तैयार है? मुक्तिबोध कहां रहते थे- यह किसने देखा है? राजनांद गांव में तालाब के किनारे उनका घर था, ठीक-ठीक तालाब के ऊपर। मुक्तिबोध । और उनके बेटे दिवाकर को दमे की बीमारी। पानी बरस रहा है। खपरैल टपक रही है। टायलेट घर के बाहर। लेक्चरर थे वे 250 रू. तनख्वाह। छः बच्चे थे- पत्नी साथ में वह भी बीमार। मैंने जाकर देखा है वह घर। मुक्तिबोध पथ पर चलना चुनौती है। यह अच्छे-अच्छे के वश की बात नहीं। उन्होंने जीवन के कष्टों की, पुरस्कारों की चिंता नहीं की, काम करते रहे क्या मुक्तिबोध और नागार्जुन का जीवन जीने के लिए तैयार हैं आज के युवा कवि।

भरत प्रसादः आपकी कविताओं का पाठकों को इंतजार रहता है। एक लम्बे समय की सतत काव्य यात्रा के बाद आपने पाठक वर्ग का विश्वास अर्जित किया है, लेकिन यह वह पाठक वर्ग नहीं, जो नागार्जुन का है। दरअसल नागार्जुन का पाठक अल्पशिक्षित साहित्येतर पाठक भी है।

आपकी कविताओं का पाठक वर्ग प्रायः सुशिक्षित है, शहरी है या फिर कस्बाई। यह अवश्य है कि आपकी कविताओं को खोजकर पढ़ने वाला पाठक समाज भी है। क्या आपकी चाहत नही होती कि आपकी कविताएं बृहत्तर आम पाठक वर्ग तक पहुंचें?

नरेश सक्सेना : आज पत्रिकाओं की पाठक संख्या सीमित है। 10,000 से ज्यादा प्रतियां किसी भी पत्रिका की छपती नहीं। सीमित संख्या के लिए हम लिखेंगे- तो काहे के कबीर और नागार्जुन। आधुनिक आलोचकों ने मंच की अवधारणा को स्तरहीन और घटिया करार दिया, जो मंच के कारण लोकप्रिय बने, उन्हें संदिग्ध मान लिया। कविता को कविता उसका शिल्प बनाता है। विम्बात्मकता, सूक्ष्मता, लयात्मकता त्याज्य हो गए हैं। 'जन-संदेश टाइम्स' में मेरा लेख अन्ना हजारे पर छपा।

... मेरे पास चाय वाले, ट्रक ड्राइवरों, हलवाइयों के फोन आये। ये लोग हंस, ज्ञानोदय, परिकथा नहीं पढ़ते। टेलीविजन में कविता की कोई जगह नहीं- किसी भी चैनल पर। दूरदर्शन चैनल कभी कभार कविता पर चर्चा कर लेता है। यदि दूरदर्शन चाहे तो सृजन को जन-जन तक पहुंचा सकता है। अखबारों में साहित्यकार जल्दी लिखते नहीं। नागार्जुन मंचों पर जाकर हजारों के सामने अपनी कविता नाच-गाकर सुनाते थे। इस वर्ष मुझे 26 जनवरी के लाल किले वाले कवि सम्मेलन में दिल्ली बुलाया गया - 50,000 लोग मौजूद थे। सुबह 4 बजे मैंने कविता पढ़ी। कविता सुनने के लिए दिल्ली जैसे शहर में हजारों लोग मौजूद हैं। आज भी बिना धार्मिक हुए आप जन-जन तक पहुंच नहीं सकते। आपके पास खंजड़ी और एकतारा का विकल्प भी होना चाहिए। राम कबीर और तुलसी दोनों के पास हैं। नागार्जुन क़े पास कोई राम नहीं है। नैतिक तत्वों के बिना जन तक नहीं पहुंचा जा सकता। लय और विम्बात्मकता के बिना प्रभावशाली कविता संभव नहीं। हंसिया, चाकू हथौड़ा कुछ भी नहीं बन पायेगा। यदि लोहार का कौशल नहीं हैं। शिल्प कविता को मार्मिक बनाता है। केवल कथ्य से कविता सम्भव नहीं होती। कथ्य तो कविता के लिए कच्चा माल यानी Raw material है।

मेरी कोशिश हमेशा यही होती है कि मेरी कविता गांव-गांव न सही शहर-शहर तो पहुंचे। ब्लाग और फ़ेसबुक ने पत्रिकाओं और अख़बारों का कुछ अतिरिक्त विस्तार किया है। तद्‌भव में प्रकाशित मेरी कविता 'गिरना' पर पहली बार केदार नाथ सिंह, विनोद कुमार शुक्ल सहित अनेक ऐसे लोगों के फोन आये जो अपरिचित थे। वागर्थ में छपी कविताओं पर लगभग 50-60 लोगों के फोन और एस0एम0एस आये। इनमें कुंवर नारायण, राजेश जोशी, विजय कुमार से लेकर अनेक कथाकारों के फोन भी थे जिनसे मेरी दुआ-सलाम भी नहीं रही। मुम्बई में सूर्यबाला ने महिला रचनाकारों की एक गोष्ठी में वागर्थ की कई कविताओं का पाठ किया (ऐसा सुधा अरोड़ा ने बताया) अभी जबलपुर में ज्ञानरंजन के घर जाकर देखा कि मेरी एक कविता उनके ड्राइंगरूम में फ्रेम की हुई रखी है। उन्होंने बताया कि इसे, बरनवाल जी ने भेंट किया है। शिलांग जाने पर देखा कि पर्यावरण पर काम करने वाली एक संस्था ने 'एक वृक्ष भी बचा रहे संसार में' कविता के पोस्टर बना कर बांटे हैं।

यह बातें इस बात की आश्वस्ति तो देती हैं कि कविताएं लोग पसन्द करते हैं लेकिन यह भी सच है कि इतने से मैं सन्तुष्ट नहीं हूं।

और इस बारे में कि सिर्फ मेरी ही नहीं हिन्दी की तमाम श्रेष्ट कविताएं करोड़ों लोगों तक पहुंचे, लगातार सोचता हूं और ज़िन्दा रहा तो कुछ जल्दी ही करूंगा।

भरत प्रसाद-: आज चारों ओर युवा कवियों का शोर है। विगत दस वर्षों के भीतर पूरे परिदृश्य में जिस तरह युवा कवियों का गगनभेदी प्रचार मिला है, वह सन्ना देने वाला और आश्चर्यजनक है। संग्रह छपना तो दूर की बात, मात्र दस-बारह कविताएं छपते ही वह रातोंरात प्रचार पाकर 'स्टार' का रुतबा हासिल कर ले रहा है। क्या वरिष्ठ और क्या युवा आलोचक कोई भी उनकी दो टूक, निष्पक्ष और सटीक आलोचना करने का साहस नहीं कर पा रहा। समीक्षाओं, साक्षात्कारों और समारोहों में 'टेप' की तरह बार-बार उन्ही नामों को रिपीट

किया जा रहा है। जबकि इन्हीं के समानान्तर सशक्त युवा कवियों की एक और पांत भी है, जो संवेदना और कलात्मक दृष्टि की कसौटी पर इनसे कमतर नहीं है। ऐसे युवा कवियों के मूल्य की पहचान कौन करेगा?

नरेश सक्सेना: 'स्टार स्टेटस' उन युवा कवियों को किसने दिया? सच्चाई यह है कि कवि ही कवियों की कविताएं पढ़ रहे हैं। इनकी संख्या 300-400 से ज्यादा नहीं। स्टार स्टेटस - लोक देता है जनता देती है - सरकारी अलंकरण प्राप्त करके आप महान नहीं बन सकते। अपनी खुद की कविताओं की पंक्तियां कवियों को याद नहीं, आलोचक तो छोड़िये। प्रामाणिकता उद्धरणों से बनती है। सही उद्धरण देने के लिए गहन अध्ययन करना पड़ता है। सिद्धान्त बताना आसान है, उस सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिए पंक्तियां जुटाना कठिन है। कवि -आलोचकों में विश्वनाथ त्रिपाठी, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, अरुण कमल, एकांत श्रीवास्तव, विष्णु खरे हैं। जो अच्छे को अच्छा और बुरा को बुरा कह सकते - ऐसा सर्जक-आलोचक ही कुछ कर सकता है। अरुण कमल ने 'रचना समय' के साक्षात्कार में कहा कि - मुझे इस बात का पश्चाताप है कि मैंने खराब कविताओं की तारीफ की। इससे उनके ऊपर के दबाव को समझा जा सकता है। इस आत्मस्वीकृति का साहस मूल्यवान है। क्या लेखक अपने लेखन के बारे में ऐसी साफगोई से बात कर सकता है? भविष्य के नागार्जुन और शमशेर इन्हीं युवा कवियों के बीच से आने वाले हैं। बशर्ते वे अपनी रचनाशीलता की निरन्तरता बनाए रखें और काव्य विवेक जागृत रखें। ध्यान रहे - 20 वर्षों तक विनोद कुमार शुक्ल का भी नोटिस नहीं लिया था। 62 वर्ष की उम्र तक मेरा नाम तक नहीं लिया गया। मैं 18 वर्ष की उम्र से लगातार सक्रिय था। क्या 45 वर्ष तक यह धैर्य बनाये रखना सम्भव था। पहचान कविता के आधार पर ही बनेगी आलोचकों द्वारा नाम गिनाने से नहीं। दुहराई जाने वाली नामों की सूची से भ्रमित न हों। युवा कवि राजेश जोशी, विष्णु खरे, केदारनाथ सिंह, विनोद कुमार शुक्ल को चुनौती के रूप में स्वीकार करें और संकल्प लें कि इनसे अच्छी और बड़ी कविताएं लिख कर दिखायेंगे।

भरत प्रसाद: अपने समकालीन वरिष्ठ कवियों की ताकत एवं उनकी अनेक सीमाओं का मूल्यांकन एवं शुद्ध विश्लेषण साहित्यक जगत मौखिक एवं लिखित रूप सदैव करता रहा है और आज भी कर रहा है, क्योंकि जिस पाठक के पास तुलसी, कबीर, मीरा और प्रसाद-निराला जैसे विलक्षण प्रतिभा के कवि/कवयित्री हों, वह अपने किसी भी समकालीन कवि का ठीक ठाक मूल्यांकन करने से नहीं चूक सकता। एक सर्जनाशक्ति-पाठक के तौर पर आप अपने समवयस्क वरिष्ठ कवियों का मूल्यांकन किस तरह करना चाहेंगे?

उत्तर : नरेश सक्सेना - एक ही धरातल पर बहती अलग-अलग धाराएं हैं हमारे समवयस्क कवि। जैसे विनोद कुमार शुक्ल। वे अपनी परम्परा खुद हैं, वे मुक्तिबोध की परम्परा के भी नहीं हैं। विनोद कुमार शुक्ल की कल्पनाएँ अजीब हैं। व्याकरण की दृष्टि से भी ठीक-ठाक नहीं हैं। भाषा की दृष्टि से- उनको पढ़ें तो आपकी भाषा बिगड़ जाएगी। पर अपनी प्रतिक्रियाओं में वे मौलिक हैं। उनकी कविता की एक पंक्ति है- 'एक आदमी अपनी रीढ़ की हड्डी मेज पर

खींच-खींच कर फैला रहा है। कालिदास से लेकर निराला और मुक्तिबोध से लेकर धूमिल तक आ जाइए- कहीं भी इस तरह की पंक्ति नहीं मिलेगी। 4-5 घंटा मैं ड्राइंग टेबिल पर झुके झुके काम करता था। पीठ को राहत देने के लिए रीढ़ को तानता था इसलिये यह पंक्ति समझ में आयी। लेख, ब्योरा, विवरण के आकार में यदि कविता देखना चाहते हों तो उदाहरण विष्णु खरे हैं। शिल्प और संरचना की श्रेष्ठता के लिए राजेश जोशी का नाम महत्वपूर्ण है। सरलता, सहजता के साथ निम्न वर्ग के चेहरों को पहचान दिलाने के कारण भगवत रावत खास हैं। भगवत रावत में- लोक दृश्य गहरे अर्थों में दुर्लभ हैं। वे लोक दृश्यों को बहुत सहजता से प्रस्तुत करते हैं। कुंवर नारायण की अनेक कविताएं नमूने के तौर पर ली जा सकती है।

भरत प्रसाद- समकालीन भारतीय साहित्य के समानान्तर खुद को रखकर परखने की व्यापक-दृष्टि का अभाव दिखाई देता है हिन्दी साहित्य में। हमें अपने कद और हद का तब तक ज्ञान नहीं होता, जब तक शेष भाषाओं के साहित्यिक प्रतिमानों के समक्ष खुद को न जांचें-परखें। क्या समकालीन हिन्दी कविता इस स्तर की है, जिसे वैश्विक या भारतीय भाषाओं के काव्य-सृजन के समकक्ष बेहतर या संतोषजनक कहा जा सके?

नरेश सक्सेना- समकालीन भारतीय भाषाओं को मैंने व्यापक तौर पर नहीं पढ़ा है।

पिछले वर्ष उड़िया में अपने काव्य संग्रह के अनुवाद 'समुद्रेर हेडछे वर्षा' के लोकार्पण पर भुवनेश्वर गया था। लोकार्पण सीता कान्त महापात्र ने किया। वहां जैसा सम्मान मेरा हुआ वैसा तो हिन्दी संसार में मैंने कभी किसी का भी नहीं देखा। वहां उड़िया के युवा कवियों की कविताओं के सम्पर्क में भी आया। मैंने स्वयं उस समारोह में उड़िया कवि ज़ाकिर और मालविका राय की कविताएं हिन्दी में सुनाई और श्रोताओं ने जिस उत्साह और प्रसन्नता का प्रदर्शन किया वह अभिभूत कर देने वाला था। सारी दुनियां में कविता लगभग एक ही तरह से लिखी जा रही है। हमें अपने खोल से बाहर आने की जरूरत है।

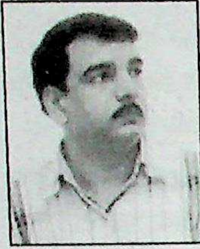
भरत प्रसाद-क्या आपके द्वारा हाल ही में सम्पादित 'रचना समय' के कविता विशेषांक को इस समय का आइना कहा जा सकता है?

नरेश सक्सेना- निश्चित रूप से सिर्फ कविता के चेहरे का आइना नहीं, उसके दिमाग का आइना भी। इसमें लगभग 200 शीर्षक हैं। 94 कवि हैं। ध्यान रहे यह सब पिछले वर्षों में छपी हुई श्रेष्ठ या मेरी प्रिय कविताओं का चयन नहीं है। अप्रकाशित रचनाएं हैं। हर समय हर रचनाकार के पास उसकी श्रेष्ठ रचना उपलब्ध नहीं होती। यह वर्ष 2010-11 में एक खास समय में उपलब्ध अप्रकाशित रचनाओं का एक 'रैण्डम सैम्पल है' रैण्डम सैम्पल जितना बड़ा हो उतना ही विश्वसनीय होता है। इसमें अच्छी रचनाएं भी हैं- और साधारण भी। अशोक बाजपेयी, अरविन्दाक्षन, सुधीर रंजन सिंह, भगवत रावत और निदा फ़ाज़ली के लेख हैं। नारीवादी दृष्टि से लिखा गया शालिनी माथुर का लेख है। कवियों से प्रश्नोत्तर हैं। उनकी स्वतंत्र टिप्पणियां हैं। हिन्दी के कथाकारों काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, शिवमूर्ति, विभूति नारायण राय, शैलेन्द्र सागर, रवीन्द्र वर्मा, शशांक, संजय कुन्दन, ममता कालिया, हरी चरन प्रकाश, नवीन कुमार नैथानी की कविताओं पर टिप्पणियां, बातचीत, विचार हैं। यह सम्भवत: पहली बार है कि हिन्दी-कथाकारों और हिन्दी कवि इतनी बड़ी संख्या में एक साथ एक मंच पर उपस्थित हैं। अब जो दृश्य है आपके सामने है।

संवाद-2

कला में उच्चतम मनुष्यता निवास करती है

(एकान्त श्रीवास्तव से अरविन्द अवस्थी की बातचीत)



समकालीन कविता के सुप्रतिष्ठित कवि एवं देश की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं में से एक वागर्थ के सम्पादक श्री एकान्त श्रीवास्तव का जन्म छत्तीसगढ़ के रायपुर जनपद के एक कस्बे छुरा में 8 फरवरी 1964 ई0 को हुआ।

अभिनव मीमांसा में गतिमान साक्षात्कारों की विशिष्ट परम्परा के क्रम में सबसे युवा रचनाकार के रूप में एकान्त जी के साथ संवाद प्रस्तुत है। एकान्त जी की अब तक 7 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें, अन्न हैं मेरे शब्द (कविता-संग्रह) 1994, मिट्‌टी से कहूंगा धन्यवाद (कविता-संग्रह) 2000, बीज से फूल तक (कविता-संग्रह) 2003, कविता का आत्मपक्ष (निबंध-संग्रह) 2006, शेल्टर फ्राम दि रेन (अंग्रेजी से अनूदित कविताएं) 2007, नागकेसर का देश यह (लम्बी कविता) 2009 मुख्य हैं।

एकान्त जी द्वारा लोर्का, नाजिम हिकमत और कुछ दक्षिण अफ्रीकी कवियों की कविताओं का अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद किया गया है। आम पाठक के मन में घोर निराशा उत्पन्न करने वाली बड़ी साहित्यिक पत्रिकाओं के सामान्तवादी सम्पादन के इस दौर में वागर्थ को प्रतिष्ठित करने में एकान्त जी का महत्वपूर्ण योगदान है। खासकर सम्पादन की अपनी द्वितीय पारी (जनवरी 2011 से अद्यतन) में एकान्त जी के वातायन स्तंभ की खासी चर्चा रही है तथा वह एक सुप्रतिष्ठित कवि के साथ-साथ मूर्धन्य आलोचक के रूप में भी प्रतिष्ठित हुए हैं। एकान्त जी द्वारा वागर्थ के संपादन को गुटबंदी, कथित स्त्री विमर्श एवं युवा पीढ़ी के कथित तूफानी आगाज जैसे आडम्बरों से मुक्त रखा गया है, जिसका पूरे देश में सर्वत्र स्वागत हुआ है।

विवेक पाण्डेय, सम्पादक



मौजूदा दौर के सुप्रतिष्ठित कवि एवं देश की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं में से एक वागर्थ के सम्पादक श्री एकान्त श्रीवास्तव का यह साक्षात्कार हमारे अत्यन्त प्रिय ,कर्मठ सहयोगी श्री अरविन्द द्वारा लिया गया है। मीरजापुर में साहित्य साधना में सक्रिय श्री अवस्थी की रचनाएं वागर्थ, समकालीन भरतीय साहित्य, हिन्दुस्तान आदि में छप चुकी हैं। यह भी विदित हो हिन्दी के वरिष्ठ कवि श्री विजेन्द्र का साक्षात्कार भी अरविन्द द्वारा लिया गया है जिसे अभिनव मीमांसा के आगामी अंक में दिया जायेगा। गांव में जन्में और गांव से जुड़े, गुटबंदी से पूर्णतया परे श्री अवस्थी जैसे रचनाकारों के लिए ''अभिनव मीमांसा'' हर संभव सहयोग के लिए सदैव तैयार है।

विवेक पाण्डेय, सम्पादक

एकांन्त जी की कविताएं। और उनका गद्य पढ़कर मन में तमाम प्रश्न उठे, जिज्ञासाओं का जन्म हुआ। इच्छा हुई कि इन प्रश्नों के उत्तर और जिज्ञासाओं के समाधन स्वयं रचनाकार से ही क्यों न प्राप्त कर लिए जायें। इसी संदर्भ में उनसे बातचीत का सिलसिला बढ़ा और उन्होंने उत्तर देना स्वीकार कर लिया। उनकी इस उदारता और सदाशयता के प्रति आभारी हूँ। उन्होंने अपनी व्यस्तता के बावजूद हमें समय दिया। यह उनके अनुभव सम्पन्न रचनाकार होने की विशिष्टता है।

उनकी कविताओं में लोक और प्रकृति है तो वैश्विक संदर्भ भी हैं। अनुभव का ताप है, जीवन की मार्मिकता है तो समाज की खरी-खरी सच्चाई कहने की क्षमता भी है।

अरविन्द अवस्थी

अरविन्द अवस्थी- साहित्यिक अभिरुचि आपको विरासत में मिली या किसी अन्य से प्रेरित होकर आपने लिखना शुरू किया?

एकांत श्रीवास्तव-अम्मा (दादी) ऐसा कहती थीं कि तुम्हारे दादा भी कवि थे और कभी-कभी बाँसुरी भी बजाते थे। मध्यप्रदेश के शहडोल जिले के चंदिया रोड में किसी राजघराने या जमींदार परिवार में दादी का विवाह हुआ था। दुर्भाग्य से वर्ष भर बाद ही वे विधवा हो गई थीं। पिताजी को गोद में लिये वे अपने मायके गाँव-कोमा (KOMA) लौट आई थीं जो वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर जिले के राजिम तहसील के अंतर्गत पड़ता है। वो दुलारी बहू के नाम से जानी जाती थीं। लेकिन अपने (दादी के) पिता बंशीलालजी के निधन के बाद वे भाइयों की आश्रित हो गई थीं। भाभियों से अधिक न पटने के कारण एक दिन बरसते पानी में उन्हें घर छोड़कर नौकर मनबोध राउत के घर आश्रय लेना पड़ा। स्वाभिमानी दादी ने मनबोध की सहायता से मिट्टी का एक छोटा-सा घर बनाया जिसमें मात्र दो कमरे थे। खुले बरामदे में मिट्टी का चूल्हा और रसोई थी। वे चटाई डालकर जमीन पर सोती थीं। आँगन में पटवा (पटसन) के खेत-लगभग जंगलनुमा। हर तरफ साँप-बिच्छू। खपरैल वाला घर। कुआँ। तुलसी चौरा। फिर खाट की व्यवस्था हुई। रात में लालटेन और चिमनी का उजाला। मैंने अपने दादा स्व0 कुंजबिहारी श्रीवास्तव को कभी देखा नहीं। पिताजी एकमात्र संतान थे। पढ़ाई पूरी होने के बाद उनकी नौकरी लगी। विवाह हुआ। हम

आए-पाँच भाई-बहन। लेकिन दादी गाँव में रही आईं। थोड़ी-सी खेती-बाड़ी सम्भालती हुईं। उन्होंने छोटी-सी किराना दुकान भी खोल ली थी। मैं बड़ा होने के कारण उनके पास साथ के लिए छोड़ दिया गया था। कस्बा राजिम गाँव से चार किलोमीटर दूर था। विद्यार्थी जीवन से ही साइकिल पर दुकान हेतु सामान लाने की जिम्मेदारी मेरी थी। पढ़ने के लिए राजिम जाना ही पड़ता। गाँव में प्राइमरी स्कूल ही था। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं गाँव में अम्मा (दादी)। के पास छोड़ दिया गया। गाँव में अम्मा के साथ मैंने आंरभिक सत्रह वर्ष बिताए। अम्मा के व्यक्तित्व और संस्कारों का मुझ पर गहरा असर पड़ा। गाँव के कृषक-समाज, प्रकृति, खेत-खलिहान की हरियाली ने मन-मस्तिष्क में जो रंग भरे, वो कभी सूखे नहीं। अम्मा जीवट और संघर्षशील जुझारू स्त्री थीं। लेकिन दु:ख ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा और अकेलेपन से भी वो कभी उबर नहीं पाईं। बेटा-बहू बच्चों के साथ नगर में जो रहते थे। महाविद्यालय की पढ़ाई के लिए मुझे भी गाँव छोड़ना पड़ा। तब वो अकेली रह गईं। मैं सत्रह-अठारह का था। उन्हीं दिनों एक छोटी-सी कविता 'यात्रा' इसी मन:स्थिति में लिखी गई- **'मैं माँ के सहारे**

बड़ा हुआ
माँ मेरे सहारे
बूढ़ी हुई
और एक दिन-गाँव में माँ को
मैं चिड़िया के सहारे
छोड़ आया।'

महाविद्यालय राजिम में भी था लेकिन पिता के विरोध की शक्ति नहीं थी। इस अपराध बोध से मैं कभी मुक्त न हो सका। अपने पिता को भी कभी माफ न कर सका। अम्मा की स्थिति और पीड़ा के लिए। आज भी मुझे ऐसे सपने आते हैं जिनमें अम्मा किसी भीड़ भरे स्टेशन, महानगर या मेले में छूट गई हैं। वे भटक रही हैं। मुझे खोज रही हैं।

गाँव और अम्मा के इस जीवन ने मुझे लेखन की ओर अग्रसर किया। यों हमारे परिवार में रवि श्रीवास्तव (मेरे ममेरे चाचा) कवि और व्यंग्यकार हैं। उनसे कभी-कभार ही मुलाकात होती थी। पवन दीवान, पुरूषोत्तम अनासक्त, कृष्णा रंजन उनके साथी कवि थे। मैं उनको सुना और पढ़ा करता था। यह सब मैंने अपनी पुस्तक 'मेरे दिन मेरे वर्ष' में विस्तार से लिखा है।

अरविन्द अवस्थी- क्या विद्यार्थी जीवन में ही आपने लिखना शुरू कर दिया था?

एकांत श्रीवास्तव- जी हाँ, बचपन से ही-तब मैं कक्षा सात में था।

अरविन्द अवस्थी- पढ़ते समय तो माता-पिता या अभिभावक यही चाहते हैं कि उनके बच्चे केवल पढ़ने में मन लगाएं- वह भी केवल पाठ्यक्रम की पुस्तकें। फिर आपको साहित्य में कैसे उतरने दिया गया?

एकान्त श्रीवास्तव- जी हाँ, साहित्य में उतरना जैसे ख़तरनाक गहरे तालाब में उतरना हो जहाँ जाकर डूब ही जाना है। माता-पिता प्राय: ऐसा सोचते हैं। क्योंकि साहित्य आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं करता। फिर कला और साहित्य का एक नशा होता है- लाइलाज रोग या

प्रेमरोग की तरह। फिर आदमी काम का नहीं रह जाता- ऐसा सोचा जाता है। एक हद तक ठीक होते हुए भी यह बात पूर्णतः सत्य नहीं है। अब और आज के जमाने में तो और भी नहीं। आज का रचनाकार अपने कैरियर के प्रति पर्याप्त सजग है। शायद इसलिए रचना भी उसके हाथ से फिसल रही है।

मेरे माता-पिता यानी अभिभावक तो नगर में रहते थे। मैं अम्मा के साथ रहता था- पूरी स्वतंत्रता के साथ। कोई रोक-टोक नहीं थी। इसलिए पहले पिताजी का ध्यान नहीं गया। जब गया तो देर हो चुकी थी। यों पिताजी ने समर्थन नहीं किया तो विरोध भी नहीं किया। बाद में जब सफलता मिलने लगी तो उन्होंने भी प्रोत्साहित ही किया।

अरविन्द अवस्थी- विद्यार्थी जीवन में आप कौन-सी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते थे? उनमें भी किसे विशेष अभिरुचि के साथ पढ़ते थे?

एकांत श्रीवास्तव- चम्पक, चंदा मामा, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, कादम्बिनी, नवनीत आदि पत्रिकाएँ पढ़ता था- सरिता, मुक्ता भी। इनमें धर्मयुग और सारिका को विशेष पसंद करता था।

अरविन्द अवस्थी- प्रारंभिक स्थिति में रचनाएँ तो बहुत कम प्रकाशित होती रहीं होंगी। प्रकाशित होने और न होने, दोनों ही स्थितियों का अनुभव कैसा होता था?

एकान्त श्रीवास्तव- कक्षा सात के बच्चे की रचनाएँ प्रकाशित होने लायक हो भी कैसे सकती थीं। तब के गाँव का एक बच्चा जिसे रचना भेजने के साधारण नियम भी मालूम नहीं थे कि फुलस्केप कोरे काग़ज पर हाशिया छोड़कर एक तरफ़ ही कविता या रचना लिखी जानी चाहिए। सम्पादक के नाम पत्र कैसे लिखा जाना चाहिए, मौलिक और स्वरचित रचना होने का प्रमाण पत्र किस प्रकार तैयार करना चाहिए आदि-आदि। दैनिक समाचार पत्रों के ठीक-ठीक पते भी मुझे मालूम नहीं थे जिनके रविवारीय अंकों में मैं रचनाएँ- प्रायः कविताएँ ही-भेजा करता था। शुरू के दो-तीन वर्ष मैंने कही कुछ अधिक भेजा ही नहीं। बस लिखता था। हाईस्कूल में कक्षा दस से मैंने नियमित कविताएँ भेजना शुरू किया। रविवार की हफ्ते भर प्रतीक्षा रहती। सुबह-सुबह गांव से सायकिल चलाकर चार किलोमीटर की दूरी तय करके हम कस्बा राजिम पहुँचते। घर में और गांव में अख़बार नहीं आता था। धड़कते दिल के साथ रविवारीय अंकों के पन्ने पलटे जाते। दोस्त भी साथ होते लेकिन हमारी रचनाएं कहीं प्रकाशित नहीं दिखतीं। थके-थके कदमों से पैडिल मारते सायकिल से गांव वापस आते। एक दिल के टुकड़े हज़ार होते। कुछ यहाँ गिरते, कुछ वहाँ। उन दिनों (छत्तीसगढ़) रायपुर से देशबन्धु, नवभारत, युगधर्म, अमृत संदेश महाकौशल समाचार पत्र प्रकाशित हुआ करते थे। देशबन्धु के सम्पादक मायाराम सुरजन जी थे। अब उनके सुपुत्र व कवि ललित सुरजन जी हैं। नवभारत भी अभी निकल ही रहा है। बाकी पत्र बंद हो गए। मेरी पहली कविता 'मज़बूरी' युगधर्म के बाल जगत स्तंभ में प्रकाशित हुई थी- यद्यपि वह बच्चों की कविता नहीं थी- 'फूल भी मज़बूर हैं मुरझाने के लिए' अब याद नहीं।' उस खुशी का वर्णन नहीं किया जा सकता। कविता के नीचे छपा नाम और पता- प्रदीप श्रीवास्तव, गाँव कोमा (राजिम) रायपुर (म0प्र0)। प्रदीप जो मेरा वास्तविक नाम था। तब छत्तीसगढ़ अलग राज्य नहीं बना था। यह तो अभी हाल की घटना है। फिर कुछ अंतराल के बाद उसी अखबार के उसी स्तंभ में मेरा एक लेख भी छपा। पूरी तरह वयस्क या प्रौढ़ कविता

एक गीत थी- 'सावन की फुहार लेकर चली'। यह 'महाकौशल' के रविवारीय अंक में छपा-पहली बार एकान्त श्रीवास्तव के नाम से। इस तरह एकान्त के नाम से यह मेरी पहली प्रकाशित रचना हो गई। दरअसल उस समय कई प्रदीप थे। एकान्त मेरा राशि का नाम था। पिताजी को यह कुछ वीतरागी-सा नाम शायद कम पसंद आया होगा। उन्होंने प्रदीप कर दिया। बड़ा हुआ तो दादी से सुना। मुझे यह नाम बहुत पसंद आया। अम्मा (दादी) और पिताजी की अनुमति से मैं एकान्त हो गया तो अब तक एकान्त ही हूँ।

अरविन्द अवस्थी- कभी जयपुर से प्रकाशित 'दिशा बोध' में एक छोटा-सा समाचार आपके गाँव के बारे में छपा था जिसकी हेडिंग थी- 'कवियों का गाँव'। क्या आपके गाँव में अनेक कवि थे और हैं?

एकांत श्रीवास्तव- हाँ। ऐसा छपा था 'दिशा बोध' में जिसके सम्पादक श्री राजाराम साहू थे। असल में लिखना तो मैंने अकेले ही आरंभ किया था। फिर दीदी अर्चना श्रीवास्तव भी कविताएँ लिखने लगीं, हम मित्रवत थे। मैं उन्हें ही सुनाया करता था। पहले अम्मा (दादी) को फिर दीदी को। फिर मित्रों को। ये गांव के मित्र थे- रामसाय साहू (अब निर्मल आनन्द), मस्तराम तारक (माँझी अनंत) संतराम तारक (अब पथिक तारक)- मैंने इन्हें भी लिखने के लिए उत्साहित किया। सुनते-पढ़ते ये लिखने लगे। इनके साहित्यिक नाम- जो ऊपर कोष्ठक में लिखे हुए हैं- मेरे ही दिये हुए हैं। इस तरह एक मण्डली बनी। हम सब लिखने छपने लगे और वह समाचार छपा। आज इतने बरसों बाद दीदी और पथिक तारक की लेखनी मौन है। माँझी कभी-कभी ही लिखता-छपता है। निर्मल लिख-छप रहा है। उन्हीं दिनों संकेत यदु और नंदकुमार कंसारी भी आ जुड़े। अब तक मित्र हैं। कुछ बाद में संजय शाम भी। ये लोग भी लिखते थे। अब संजय को छोड़कर संकेत और नंदू ने बरसों से कुछ नहीं लिखा है। तो यह सब होता है- समय के प्रवाह में। साहित्यिक अभिरुचियाँ सबकी बाकी हैं। सब मिलते रहते हैं। समकालीन कविता और साहित्य पर बातें होती रहती हैं। अभी अगस्त 2011 में रक्षाबंधन के आसपास माँझी और पथिक (दोनों भाई हैं) की माँ के गुजर जाने से सारे दोस्त एकत्रित हुए- जमाने बाद-

'इतना तो हुआ ऐ दिल, एक शख्स के जाने से
बिछुड़े हुए मिलते हैं, कुछ दोस्त पुराने से।।'

राजिम में हमारी पूर्व पीढ़ी के रचनाकार स्व0 पुरुषोत्तम अनासक्त, पवन दीवान, कृष्णा रंजन, रवि श्रीवास्तव तब भी थे और श्री अनासक्त को छोड़कर बाकी अब भी हैं। गाँव में हम बच्चे लोग ही थे।

अरविन्द अवस्थी- आपने कविता के अतिरिक्त गद्य रचनाएँ भी की हैं। सबसे पहले किस पर हाथ आजमाया था? आप कहानीकार क्यों न हुए? कहानियाँ तो आप भी लिखते थे। फिर छोड़ क्यों दिया?

एकांत श्रीवास्तव- आरंभ मैंने कहानियों से ही किया था। गाँव के बहुत बड़े और लगभग निर्जन, शान्त और हरे भरे घर में मैं चुपचाप सोचता रहता था, कुछ कल्पनाएँ करता रहता था। दादी कभी जाँता (चक्की) में दाल पीसती, कभी अचार या बड़ियाँ बनातीं, कभी दही बिलोकर मक्खन निकालतीं और कभी अन्य कोई काम करती रहतीं। ऐसे में कहानियाँ मेरे मन में आने लगीं। पत्रिकाओं में मैं कहानियाँ ही पढ़ता था। मैं कक्षा सात में पत्रिका कप्तान था। अध्यापक की

अनुमति से पत्रिकाएँ घर भी ले आता था। मैं अम्मा को अपनी बनाई कहानियाँ सुनाता- झूठ बोलकर कि यह कहानी मैंने अमुक पत्रिका में पढ़ी है- प्राय: रात को सोते समय-तारों भरे खुले आकाश के नीचे। बहुत दिन बीत जाने के बाद और कई कहानियाँ बनाकर सुना लेने के बाद एक दिन मैंने अम्मा को यह रहस्योघाट्न करके चौंका दिया कि ये कहानियां मेरी हैं- ये कभी किसी पत्रिका में छपी नहीं थी। अम्मा अवाक्। कुछ पल शान्त रहकर वो बोलीं- 'बेटा इन्हें लिख डालो। ये कहानियाँ तुम्हारी हैं।' अब मैं स्तंभित, चमत्कृत क्या सचमुच? और मैं सृजेता के सुख से भर उठा। अगले दिन से लिखने का काम आरंभ। अनेक कहानियां लिखीं। दो उपन्यास और तीसरा अधूरा। लेकिन वह एक आरंभिक दौर का कच्चा लेखन था- गुलशन नंदा, रानू के उपन्यासों की तरह रूमानी- प्यार मोहब्बत से भरपूर।

हमारे परिवार में रवि श्रीवास्तव कवि हैं। ये अम्मा (दादी) के भतीजे थे। हमारे ममेरे चाचा। वे छपते रहते थे- पत्र-पत्रिकाओं में। मंच पर भी जाते थे कविता पढ़ने यानी कवि सम्मेलनों में। आकाशवाणी से उनकी कविताएं आतीं तो पूरा परिवार सुनता। उन्हें देखकर अम्मा कहती कि तुम कविताएं भी लिखा करो लेकिन मैं कविताएं लिखने में स्वयं को असमर्थ पाता था। पर उनके आग्रह पर यह हुआ कि मैं कविताएं पढ़ने लगा- ध्यान से कोर्स की कविताएं, समाचार पत्रों के रविवारीय अंकों की और उन पत्रिकाओं की कविताएं जो उपलब्ध थीं- जिनकी चर्चा मैंने ऊपर की है। प्रयास के तौर पर मैं फिल्मी गीत की आरंभिक दो पंक्तियाँ यानी मुखौटा ले लेता और फिर उसको डेवलप करता। मेरी होते हुए भी वह रचना (कविता या गीत) मेरी न होती क्योंकि आधार वाक्य किसी और के होते। फिर 'उमड़ते भादों के साँवले' एक दिन एक कविता बन ही गई। मैं पुल पर अकेला था। नीचे गाँव का बरसाती नाला उफन रहा था- 'हिलोरें ले रहा है सागर मेरी बातें जानकर।'

ऐसा ही कुछ था। विधिवत् कविता कक्षा आठ में लिखी 'काग़ज की नाव'- तो यह सब आंरभिक प्रयास थे। जब मैं कक्षा दस में था तब मैंने एक कविता लिखी- 'कहाँ है कविता'। इसके पूर्व तुकान्त (छंदबद्ध कहना अनुचित होगा) कविताएं लिखा करता था। गीत, ग़ज़लें आदि भी। हाईस्कूल के लिए राजिम में पढ़ना हुआ। मिडिल कक्षा से ही राजिम के उसी शासकीय विद्यालय जाया करता था। हाईस्कूल में हिन्दी के व्याख्यता (बाद में प्राचार्य) थे स्व0 गरड़सर। वे पुरुषोत्तम अनासक्त के नाम से लिखा करते थे। छत्तीसगढ़ अंचल में हिन्दी के साहित्यकार थे। कवि के रूप में लोकप्रिय थे। उनके करीब आया। उनका भरपूर स्नेह व मार्गदर्शन मिला। वही मेरे प्रथम काव्य गुरु कहें जा सकते हैं- अम्मा के बाद। अम्मा तो थीं ही प्रथम की प्रथम। उन्होंने मुक्त छंद की आधुनिक हिन्दी कविता की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा- ज़माना इसी का है। मुक्तिबोधा पाठ्यक्रम में थे। मैं मुक्तछंद की कविताएं ध्यान से पढ़कर आत्मसात करने लगा। आरंभ में गीत-ग़ज़ल के दौर में वे मुझे पसंद नहीं आती थीं। फिर पसंद आई तो ऐसी कि धीरे-धीरे मुक्त छंद की आधुनिक या समकालीन हिन्दी कविता ही मेरा सर्वस्व हो गई। गीत-ग़ज़लें पीछे छूट गईं। तुकान्त या छंदबद्ध रचनाएं भी छूट गईं। गरड़सर (पुरुषोत्तम अनासक्त) का एक वाक्य मेरे मर्म में तीर की तरह धंस कर रह गया है- आज तक कि तरह मुक्तछंद की कविता में और तो कोई आकर्षण होता नहीं। अत: उसमें 'बात' महत्वपूर्ण होनी चाहिए- प्रभावकारी-ताकि वह पढ़ने वाले को भी प्रभावित कर सके। आज कह सकता हूँ कि वे कथ्य की सच्चाई और मार्मिकता की तरफ़ संकेत कर रहे थे। आज भी मैं स्वत: स्फूर्त लेखन का कायल हूँ- गद्य हो या पद्य- सायास लिखना प्राय: पसंद नहीं।

इस तरह कक्षा दस में लिखी 'कहाँ है कविता?' विधिवत् मेरी प्रथम कविता है- 'कहाँ है कविता'-

'वह भूखी माँ
बच्चों को खिलाकर गाती है
एक दर्दीली लोरी
उसकी लोरी में एक दर्द है
और उस दर्द में एक कविता है।'

इसी तरह के दो पैरा इस कविता के और थे। इसे साथियों, लेखकों, पाठकों ने बहुत पसंद किया। आंचलिक स्तर पर कवि के रूप में पहचान की शुरूआत इसी कविता से हुई।

लेखक बनने के अनेक वर्षों बाद विशाखापटनम में एक ऑपरेशन के बाद पंद्रह दिन के 'बेड रेस्ट' में मैंने संस्मरणों की (कुछ कुछ आत्मकथात्मक) पुस्तक 'मेरे दिन मेरे वर्ष' लिख डाली। यह बात सन् 2001 की है संभवत:। फिर लगा, काम वक़्त से पहले हो गया है। सो उसे रोके रखा।

फिर ये लामनचिली (आंध्र का एक कस्बा) से विशाखापटनम अप-डाउन करते हुए एक वर्ष में मैंने अपनी दूसरी गद्य पुस्तक 'कविता का आत्मपक्ष' के साठ छोटे-छोटे निबंधों को तैयार कर लिया। यह, कविता पर वैचारिक गद्य है। यह पुस्तक सन् 2006 में प्रकाशन संस्थान से आई। पसंद की गई। अब इसका दूसरा पेपर बैक संस्करण भी प्रकाशित है। प्रकाशित होने के क्रम में गद्य की यह मेरी पहली पुस्तक है जिसे लेकर मैं पाठकों के सामने आया। जबकि जो वास्तव में पहली पुस्तक थी- 'मेरे दिन मेरे वर्ष' उसका प्रकाशन लिखने के आठ वर्ष बाद मैंने करवाया 2009 में। यह, आधार प्रकाशन पंचकूला, हरियाणा से आई है।

अरविन्द अवस्थी- कविता और कहानी में किसका कैनवास बड़ा लगता है?

एकांत श्रीवास्तव- दोनों विधाओं का अपना सामर्थ्य है और अपनी सीमाएं भी। फिर इस तरह की तुलना उचित भी नहीं। कथातत्व का रचनात्मक इस्तेमाल तो कविता में भी होता है- 'राम की शक्ति पूजा' (निराला), 'नगई महरा' (त्रिलोचन), 'असाध्य वीणा' (अज्ञेय) आदि से लेकर परवर्ती कवियों के यहाँ भी ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं। दिलचस्प तथ्य तो यह भी है कि काव्यात्मकता का भी बहुत सर्जनात्मक उपयोग कथा साहित्य में होता रहा है। इससे कथा का मूल्य और उसकी गुणवत्ता बढ़ी है। रेणु, निर्मल वर्मा, विनोद कुमार शुक्ल का कथासाहित्य गद्य काव्य की सुंदर बानगी है। इनके कथा साहित्य से काव्यात्मकता को हटा दें तो कुछ रह नहीं जाएगा। वही प्राण है। लेकिन यह सबके बूते की बात भी नहीं। जो कथाकार ऐसा नहीं करते (या कर पाते), उन्हें प्राय: उपर्युक्त लेखकों को खारिज करते देखा गया है क्योंकि ऐसे गद्य काव्य की अपार लोकप्रियता से उन्हें बड़ी तकलीफ होती है। वे चाहते हुए भी इन्हें छू तक नहीं पाते। यद्यपि काव्यात्मकता के बिना भी हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य (कथा) की रचना की गई है। प्रेमचंद तो हैं ही। उनके बाद भी अनेक नाम हैं।

कविता बिना काव्य-संस्कार और रुचिबोध के प्राय: पढ़ी नहीं जाती। इसकी तुलना में कहानी अधिक पढ़ी जाती है। इसे कोई भी पढ़ता है या पढ़ सकता है। यही कारण भी है कि बाज़ारवाद का शिकार हमारा कथासाहित्य अधिक हुआ है। उसकी सर्जनात्मकता और गुणवत्ता में गिरावट आई है। अनुभव का ताप, जीवन की मार्मिकता और समाज की खरी-खरी सच्चाई के अभाव को ढँकने

के लिए कथाकार विचित्र और अजीबोगरीब शिल्प का सहारा लेते देखे जा रहे हैं- विशेष रूप से नए कथाकार। आज की कहानियों में अनिवार्य रूप से आने वाला यौन प्रसंग भी पठनीयता और बाज़ार की मज़बूरी के चलते है। बहुत सारे कथा साहित्य से यदि भाषा के मुलम्मा और शिल्प-चातुर्य को हटा दें तो वे सत्यकथाओं और मनोहर कहानियों की तरह नंगी और बाज़ारू हो जाएंगी। बहुत कम-नए-पुराने-कथाकार बच रहे हैं जो इस प्रवृत्ति के शिकार नहीं हैं। उम्मीदें इन्हीं से हैं कि ये कथा-जलपोत को डूबने से बचाएंगे।

अरविन्द अवस्थी- प्रसिद्ध कथाकार विद्यासागर नौटियाल का कहना है कि हिन्दी कहानी में रीतिकाल अब शुरु हुआ है। इससे आप कहाँ तक सहमत हैं? कहानी की स्थिति में इसका क्या प्रभाव पड़ा है?

एकांत श्रीवास्तव-इस प्रश्न का उत्तर ऊपर मैं दे चुका हूँ। नौटियाल जी से मैं सहमत हूँ। ऊपर कथासाहित्य की जिन प्रवृत्तियों की मैंने चर्चा की, वही कथासाहित्य के आधुनिक या समकालीन रीतिकाल की द्योतक हैं। जब बाज़ार और सम्पादक के दबाव और प्रभाव में कहानियाँ लिखी जाएंगी तो उसका यही हश्र होगा। कविता हो या कहानी जब तक लेखन जनता, लोक या समाज के पक्ष में नहीं होगा तब तक उसका रीतिकाल समाप्त नहीं होगा।

सबसे दुखद यह है कि भारत गाँवों का देश है और आज के भारतीय गाँवों की त्रासदियाँ न कहानियों में दिखाई देती हैं न कविता में। कविता में फैन्सी लेखन बढ़ा है। अनेक छद्म कवि दृश्य में दिखाई देते हैं- प्रतिभा विहीन। मगर हमें उनका आभारी होना चाहिए कि उन्हीं के कारण अच्छी कविता की महत्ता बनी और बची हुई है। जो ज़रा-सा भी अच्छा लिखता है, चर्चा होने लगती है। स्थिति यह है कि पचास बगुलों में कहीं एक हंस छुपा हुआ है। राजेन्द्र यादव कभी-कभी ठीक भी कहते हैं कि 'जिसे देखो, वही कविता लिख रहा है। बड़ी ऊब होती है।'

इसका दु:खद पहलू भी बाकी है। पाठकों में कविता की अलोकप्रियता के लिए ऐसे खराब कवि ही जिम्मेवार हैं। नए पाठक भ्रमित होते हैं, सो अलग।

अरविन्द अवस्थी- यह जो कुछ कविता, कहानी, उपन्यास या अन्य विधाओं में लिखा जा रहा है, क्या उस लिखे का समाज और राजनीति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है?

एकांत श्रीवास्तव-नहीं। सीधे-सीधे तो नहीं ही। पहली बात तो साहित्य आज पढ़ता कौन है। व्यस्ततम मनुष्य आज अपना बचा हुआ समय टी0वी चैनलों की भेंट चढ़ा देता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था ने अच्छे साहित्य के संस्कार ही नहीं डाले। बीज तो गीली मिट्टी में बचपन से ही बोया जाता है। पाठ्यक्रमों में भी साहित्य के नाम पर पचास प्रतिशत कूड़ा भरा है। अच्छे साहित्यकार चयन समितियों में नहीं होंगे तो यही होगा।

कला और साहित्य समाज की परिधि में हैं, केन्द्र में नहीं। यह दु:खद तथ्य तो है। ऐसे में इस साहित्य का नैतिक और मानवीय संदेश कम लोगों तक पहुँचता है। लेकिन जब-जब समाज और सभ्यता पर संकट आता है, उसे कला और साहित्य की आवश्यकता पड़ती है। जैसे समाज में मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारे हैं। लोग वहाँ कम जाते हैं लेकिन जब जाते हैं तो जूते उतारकर जाते हैं क्योंकि यह सामान्य मान्यता है कि धर्म गृहों में उच्चतम मनुष्यता का वास है। कला और साहित्य की स्थिति बहुत हद तक ऐसी ही है। लोग यहाँ भी कम आते हैं लेकिन संकट के समय अवश्य

आते हैं और जूते उतार कर क्योंकि कला में भी उच्चतम मनुष्यता निवास करती है। बेईमानी से भरे समाज में भी ईमानदारी एक मूल्य की तरह बची रहती है। बेईमान भी ज़रूरत पड़ने पर ईमानदार पर भरोसा करता है- अपने साथी बेईमानों पर नहीं। चाहे ईमानदारी जब-तब उपहास का विषय भी बनती हो। इससे यही पता चलता है कि धर्म ग्रंथों की तरह कला और साहित्य भी हमारी सभ्यता के नैतिक और मानवीय ग्रंथ हैं। वे आकाशदीप हैं जो सभ्यता के भटके हुए जलपोत को रास्ता दिखाते हैं और डूबने से बचाकर तट तक पहुँचाने में सहायता करते हैं।

इसलिए यह कहना अनुचित होगा कि कला और साहित्य का समाज, सभ्यता और राजनीति पर प्रभाव नहीं पड़ता। किंतु यह प्रभाव प्रत्यक्ष या तीव्र नहीं है। इसकी सुरभि भीनी-भीनी है। शायद यह चांद का प्रकाश है, या दियों और जुगनुओं का। शहद धीरे-धीरे पकता है। कला की धूप में सभ्यता भी धीरे-धीरे पकती है और परिपक्व होती है। इसमें बरसों लग जाते हैं। कभी-कभी शताब्दियाँ भी।

अरविन्द अवस्थी- कई विद्वानों का मानना है कि कवि को गद्य भी लिखना चाहिए। क्या आप भी इसी से प्रभावित होकर गद्य लिखने लगे? या कविता के माध्यम से विचारों की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही थी, इसलिए?

एकांत श्रीवास्तव-गद्य को कवियों का निकष या प्रतिमान मानने वाले मानें, मैं नहीं मानता। अगर आप कवि हैं तो कविता ही आपकी पहचान है। पुरानी धारणा क्यों ऐसी बनी- यह बनाने वाले और मानने वाले जानें। मगर यह कितना हास्यास्पद है जैसे किसी गायक से कहा जाए कि चित्रकला ही उसके गायक होने की पहचान है या चित्रकार से अपेक्षा की जाए कि उसे नाचना भी आना चाहिए।

आपने ठीक कहा अरविन्द अवस्थी जी, कि विचारों की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए मैं गद्य लिखने लगा। ऐसा कुछ और वरिष्ठ कवियों ने किया है। पर यह अनुसरण नहीं था। अभिव्यक्ति का दबाव था। दूसरे, कविता कोई ऐसी कड़ाही नहीं है जिसमें आप जब-तब कुछ भी छौंक-बघार दें। वह बहुत संश्लिष्ट विधा है, गझिन, महीन, नाजुक, और लघुकाय। कविता एक ऐसा शीशा है जिस पर ज़रा-सा भी दाग़-धब्बा या धूल शोभा नहीं देते। वह कम में बहुत अधिक कहने की विधा है। वह रिपोर्ताज नहीं है। दुर्भाग्य से इस तथ्य की पिछले कुछ वर्षों में निरंतर अनदेखी हुई है क्योंकि अकवि ही कवि बने हुए हैं। अनावश्यक और अधिक इस्तेमाल से कविता घिस जाती है, उसका रंग उड़ जाता है, गंध भी। वह नष्ट हो जाती है- उन खण्डहरों की तरह-जो कभी घर हुआ करते थे। कविता कम लिखी जानी चाहिए- यद्यपि निरंतर लेखन आवश्यक है। इसलिए दूसरी विधाओं में जाना चाहिए। कविता को बचाने के लिए, कविता के हित में। प्राचीन काल में घुमक्कड़ जन जातियाँ थोड़े समय तक एक जगह ठहरकर खेती करती थीं और कुछ बरस बाद जब भूमि की उर्वरता नष्ट हो जाती थी तो उस जगह को जलाकर वहाँ से चली जाती थीं बारिश होती थी और एक-दो बरस खाली रहते पर भूमि की उर्वरता लौट आती थी। तब वही घुमक्कड़ जनजातियाँ पुनः वहाँ आकर बसती थीं और पुनः उस भूमि में खेती करती थीं। कविता की भूमि को भी ऐसे अंतराल की आवश्यकता है ताकि उसकी उर्वरता बनी और बची रहे।

अरविन्द अवस्थी- स्पेनी कवि लोर्का ने कविता को मुक्ति कहा है। आखिर यह मुक्ति क्यों और किससे? इस मुक्ति का अभिप्राय क्या है? कवि की दृष्टि से आपके विचार जानना चाहूँगा।

एकांत श्रीवास्तव-लिखकर हम उस संवेदनात्मक और वैचारिक झंझावात से मुक्त होते हैं जो हमारे भीतर, हमारे अंत:करण में चल रहा होता है। लिख चुकने के बाद यह झंझावात कोरे काग़ज़ पर लिखे हमारे शब्दों और वाक्यों के जंगल में आकर ठहर जाता है। हम इससे मुक्त हो जाते हैं। कालान्तर में जब पाठक किसी पत्रिका या पुस्तक के पृष्ठ खोलता है तो वह उस झंझावात का सामना करता है। सच्ची रचना अपने पाठक को वैचारिक झंझावात में घेर लेती है और विकल्प की ओर संकेत भी करती है।

अरविन्द अवस्थी- कविता में छंदिक अनुशासन की बात बराबर चल रही है। लय को कविता की आत्मा कहा गया है। इस संबंध में आप क्या कहेंगे। क्या युक्त छंद का भी कोई अनुशासन है?

एकांत श्रीवास्तव-छांदिक अनुशासन में कविता आज भी लिखी जा रही है, जिसे हम गीत कहते हैं। हिन्दी ग़ज़ल में शमशेर, दुष्यंत से लेकर अदम गोंडवी, जहीर कुरैशी, चाँद शेरी, अनिरूद्ध सिन्हा, नूर मुहम्मद नूर, निदा फ़ाजली, राजेश रेड्डी तक निरंतर एक लेखन परम्परा चली ही आ रही है। नईम, नचिकेता, अनूप अशेष तथा अन्य कई कवियों ने महत्वपूर्ण गीत लिखे हैं। छंदबद्ध कविता के पाठक बहुत होते हैं। वह सीधे ग्राह्य होती है। रचना और पाठक के बीच की दूरी कम करने में इस कविता की भूमिका महत्वपूर्ण है।

लेकिन, ऐसा लगता है कि आज का समय मुक्त छंद की कविता का है। मुक्त छंद की कविता एक लम्बी गहरी साँस की तरह है जिसमें कोई अवरोध नहीं है, एक खुला मैदान-हवाएँ जहाँ निर्बाध बहती हैं।

दिलचस्प यह कि लय दोनों जगहों पर- छंदबद्ध कविता और मुक्त छंद की कविता में, कविता की आत्मा है। अयोग्य और नालायक कवियों ने मुक्तछंद का दुरुपयोग किया है और उसे सपाट गद्य में बदल दिया है। योग्य कवियों ने मुक्तछंद में भी लय, गेयता और उसके अनुशासन को बचाए और बनाए रखा है। बिम्ब, प्रतीक और दूसरे काव्य घटक अब भी वही हैं जो पहले थे।

अरविन्द अवस्थी- लोक और प्रकृति से कविता का संबंध कितना जरूरी समझते हैं?

एकांत श्रीवास्तव-लोक अर्थात जनता। लोक का अर्थ केवल गाँव और ग्रामीण जनता नहीं है- लोक के अंतर्गत पूरा देश और समाज आता है, वैश्विक चिंताएं आती हैं जो औसत मनुष्य से जुड़ी हैं। जनता गाँव की हो या नगर की वह लोक है।

और प्रकृति तो समूचे ब्रह्माण्ड और धरती की नियामक है, उससे बचकर मनुष्य साँस भी नहीं ले सकता। हवा हमारी साँस बनती है। हम खुली हवा में साँस लेना चाहते हैं। आकाश की विशाल नीली छतरी के नीचे धरती हमें धारण किये हुए है। अग्नि हमें ऊर्जा और ऊष्मा देती है और जल, शीतलता। रातें हमारी नींद को अंधेरा देती हैं और सुबहें हमारे जीवन-कर्म का अथ बनती हैं। लोक और प्रकृति के बाहर न हम साँस ले सकते हैं न हमारी कला। दुर्भाग्य से जब भी ऐसा होता है, कला और रचना की साँस उखड़ने लगती है और पाठक उससे दूर जाने लगते हैं। समकालीन हिन्दी कविता का एक बड़ा हिस्सा इसी व्याधि की गिरफ्त में है।

अरविन्द अवस्थी- बढ़ती हुई जनसंख्या, प्रदूषण, महँगाई आदि के परिप्रेक्ष्य में कविता की सार्थक और प्रभावी भूमिकाएँ क्या है? क्या कविता उन्हें निभा पा रही है?

एकांत श्रीवास्तव-मैंने पहले ही कहा है कि कविता या कला का कोई सीधा या प्रत्यक्ष प्रभाव समाज पर नहीं पड़ता है। कला थकी हुई सभ्यता के लिए एक लोरी की तरह है जो उसे सुलाती तो है साथ में सपने भी देती है ताकि अगली सुबह मनुष्य उन सपनों से स्वयं और समाज के जीवन को सजा सके। कला एक नैतिक शिक्षा है जो बुरे काम करने से रोकती है। वह अच्छे मनुष्य का व्यक्तित्व निर्माण करना चाहती है ताकि समाज का असंतुलन और उसकी विकृतियाँ कम हों। कला केवल दवा की तरह कड़वी नहीं है। वहाँ आस्वाद और रंजन भी है। वहाँ हमारे समय और समाज के ही सुख-दुःख का वर्णन है। उन्हीं से मनुष्य सीखता है।

अरविन्द अवस्थी- प्राय: लोग साहित्य-संस्कृति पर बाज़ारवाद के हावी होने की बात करते हैं क्या है यह बाज़ारवाद? और किस तरह हावी है साहित्य-संस्कृति पर? उससे मुक्ति की दिशा में रचनाकारों की क्या भूमिकाएँ हो सकती हैं?

एकांत श्रीवास्तव-बाज़ारवाद पर काफी बातें हो चुकी हैं। कला का प्रोडक्ट में बदल जाना ही साहित्यिक और सांस्कृतिक बाज़ारवाद है। अर्थात जब रचना बाज़ार और बिक्री को ध्यान में रख कर की जाने लगे- चर्चा और प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर की जाने लगे तो यह बाज़ारवाद है। कविता में यह संकट नहीं है या बहुत कम है। कथा साहित्य इसका शिकार अधिक है। कथाकार नए और पुराने-दोनों जानबूझकर मसाला कहानियाँ लिखते हैं, ऐसे सब्जेक्ट चुनते हैं, या ऐसे अंश डाल देते हैं जिसके कारण कहानी या उपन्यास चटखारे लेकर पढ़े जाते हैं मगर मजाल है कि आप उनसे यह पूछ लें। वे इसे जीवन और रचना की सच्चाई और समय की मांग बताएंगे। ऐसी सस्ती चीजें एक दिन नष्ट हो जाती हैं। उनका कोई भविष्य नहीं है। मगर हिन्दी में राजी सेठ जैसे कथाकार भी हैं, यह आश्वस्ति की बात है।

अरविन्द अवस्थी-गुटबन्दी से साहित्य को किस प्रकार का ख़तरा है?

उत्तर-सच्चा साहित्य गुटबन्दी के बिना हो या गुटबन्दी के साथ वह अपनी जगह अवश्य बनाता है। खराब साहित्य गुटबन्दी के बावजूद सफल नहीं हो सकता। थोड़े समय एक धुँधलका पैदा चाहे कर लिया जाए। समय बाद में दो टूक फैसला कर देता है। अत: गुटबन्दी से कोई ख़तरा नहीं है।

अरविन्द अवस्थी- लघुपत्रिकाओं का प्रकाशन तेजी से हो रहा है। इनकी बढ़ती संख्या साहित्य को किस प्रकार प्रभावित कर सकती है।

एकांत श्रीवास्तव-लघुपत्रिकाओं का अधिक संस्था में छपना अच्छी बात है। छोटी-बड़ी सभी प्रतिभाओं को मंच मिल रहा है। दूसरी बात कुछ स्थापित पत्रिकाओं का अधिनायक वाद भी इससे समाप्त होता है। कुछ सम्पादक, लेखक या पत्रिकाएं मिल कर जिसे चाहे उछाल दें, या हतोत्साहित कर दें- यह अब संभव नहीं रहा। छोटे शहरों या कस्बों से निकलने वाली पत्रिकाएँ प्राय: निष्पक्ष होती हैं और जनतांत्रिक मूल्यों को वहन करती हैं। केन्द्रीय पत्रिकाओं द्वारा कभी-कभी एक साजिश के तहत जो साहित्यिक प्रदूषण फैलाया जाता है, उसका ये पत्रिकाएँ विरोध करती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि बड़ी पत्रिकाएँ प्राय: विवाद या मसाला साहित्य के दम पर बड़ी

बनी हुई हैं। रचनात्मक श्रेष्ठता का वहाँ अभाव है। सम्पादकों के इर्द-गिर्द घूमने वाले चाटुकार लेखक वहाँ छाए हुए हैं। दुर्भाग्य से, साहित्य में ऐसे लेखक अल्पायु होते हैं। यहाँ कहना चाहिए- सौभाग्य से।

अरविन्द अवस्थी- साहित्य जिस मात्रा में लिखा जा रहा है, उस मात्रा में पढ़ा नहीं जा रहा है। साहित्य के भविष्य के लिए यह कैसा संकेत है?

एकांत श्रीवास्तव-अच्छा साहित्य हमेशा पढ़ा जाता है यद्यपि परिमाण में वह कम होता है। लघु पत्रिकाएं या साहित्यिक पुस्तकें साहित्येतर लोगों या पाठकों तक पहुँच भी नहीं पातीं- प्राय: यह भी एक कारण है। अधिक मात्रा में जो लिखा जा रहा है वह साहित्य का भ्रम चाहे पैदा करे, पर साहित्य नहीं है। उसका भविष्य अंधकारमय होना ही चाहिए और भविष्य क्या, ऐसे साहित्य का प्राय: वर्तमान भी नहीं होता। रचनाकार यदि बड़ा शासकीय अधिकारी या धन्ना सेठ है तो वह कुछ 'वर्तमान' बना ले जाता है। भविष्य का निर्माण फिर भी असंभव है।

अरविन्द अवस्थी- समकालीन साहित्य के सामने वर्तमान वैश्विक परिदृश्य को देखते हुए कौन-कौन सी चुनौतियाँ हैं?

एकांत श्रीवास्तव-भूमंडलीकरण या सांस्कृतिक साम्राज्यवाद या पूरे विश्व का अमेरिकीकरण-एक जैसा पन, स्थानीय और राष्ट्रीय संस्कृति और कलाओं के लुप्त होने का ख़तरा, गाँवों का तेजी से नगरीकरण, मनुष्य और मनुष्य के बीच बढ़ता परायापन, संवेदना की कमी, नैतिक मूल्यों का पतन, सभ्यता के केन्द्र में धन की उपस्थिति और महेत्ता, कला और साहित्य का हाशिए पर आना, राजनीतिक-सामाजिक जीवन में फैला हुआ भ्रष्टाचार, भूख, गरीबी, बेरोजगारी और महंगाई, स्त्री जीवन की त्रासदियाँ- आदि सारी चुनौतियां। जो जीवन, समाज और सभ्यता की चुनौतियां हैं, वही रचना की चुनौतियां भी हैं।

अरविन्द अवस्थी- आप साहित्यकार के साथ सम्पादक की भूमिका से भी जुड़े हैं। ऐसे में समकालीन साहित्यिक परिदृश्य की क्या संभावनाएँ देखते हैं?

एकांत श्रीवास्तव-मेरा सम्पादक अस्थायी है मगर रचनाकार स्थायी है। 'वागर्थ' एक संस्था की पत्रिका है। लगभग अट्ठारह साल से निकल रही है। यहाँ लोग आते-जाते रहते हैं। प्रथम सम्पादक प्रभाकर जी श्रोत्रिय को छोड़कर प्राय: सम्पादक दो-ढाई साल की अवधि तक रहते हैं। फिर लेखन, पारिवारिक कारण या व्यस्तताओं के चलते छोड़ देते हैं। मैंने पहली बार 'वागर्थ' का सम्पादन 2006 से 2008 तक लगभग ढाई वर्षों तक किया। अब जनवरी 2011 से अब तक दूसरी पारी है। लेखन कुछ हद तक प्रभावित होता तो है लेकिन थोड़े समय के लिए इस तरह के रचनात्मक कार्य भी किये जाने चाहिए- एक लेखक के द्वारा, यदि ऐसे अवसर आएं तो। रोज़-रोज़ लिखते रहने से रचना भी फिर चाहे किसी विधा की हो- घिस जाती है। अपना मुलम्मा छोड़ देती है। अंतराल ज़रूरी है। ऐसे समय में सम्पादन या अन्य रचनात्मक कार्य किये जाने चाहिए।

जहाँ तक समकालीन साहित्यिक परिदृश्य की संभावनाओं का सवाल है- एक रचनाकार और सम्पादक की दृष्टि से तो यही कहूँगा कि संभावनाएं कभी खत्म नहीं होतीं-कला और रचना के संसार में हों या जीवन और समाज में, वे बनी रहती हैं।

लेकिन दृश्य में बहुत से 'अलेखक' आ गए हैं। कहानी में भी, कविता में भी, आलोचना में भी- बाकी विधाएं कुछ हद तक बची हुईं हैं क्योंकि वे केन्द्रीय विधा नहीं मानी जाती हैं- यथा ललित

निबंध आदि। राजेन्द्र यादव ठीक कहते हैं- 'जिसे देखो, वही कविता लिख रहा है........' लेकिन संतोषप्रद कविता कितनों के पास हैं? इन छद्म रचनाकारों से पाठक भी भ्रमित होता है। समकालीन साहित्य में पाठकों के कम होते जाने का एक कारण ये लोग भी हैं। किन्तु सच्चा रचनाकार इनसे नहीं घबराता बल्कि कृतज्ञ होता है। कृष्ण पक्ष न हो तो शुक्ल पक्ष की पूछ-परख कैसे होगी?

अरविन्द अवस्थी- नए रचनाकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

एकांत श्रीवास्तव- मैं ऐसी कोई योग्यता अपने भीतर नहीं पाता कि नए रचनाकारों को संदेश देता फिरूं। न ही अभी इतना वरिष्ठ और वयोवृद्ध ही हुआ हूँ। मैं स्वयं प्रत्येक समय नए-पुराने लोगों से सीखना चाहता हूँ- चाहे वे रचनाकार हों या न हों। हम जिस समाज में रहते हैं, आप उसे देखिये, वह प्रत्येक दिन अपनी छोटी-बड़ी घटनाओं से हमें संदेश देता रहता है। वही हम सबका प्रथम रचना-गुरु है। आप एक किराना दुकान में दस मिनट ही सही, खड़े होकर खरीदारों को देखिये। पैसे वालों को देखिये और गरीबों को, वे किस तरह और कितनी तकलीफ़ से मुड़ा-तुड़ा नोट निकालते हैं, खरीदने से पहले प्रत्येक चीज़ की कीमत पूछते हैं, फिर कम-कम खरीदते हैं, फेहरिश्त में की दस चीज़ों में से चार खरीदकर लौट जाते हैं, उनके चेहरे, कपड़े, चप्पलें सब कुछ कैसी कथा कहते हैं- उनकी हताशा देखिये और जीवटता भी, जिजीविषा देखिये, किस कदर वे जीने की इच्छा और उछाह से भरे रहते हैं- यद्यपि रोज उनका सपना टूटता है और रोज़ वे एक नया स्वप्न देखते हैं। इनकी तुलना में हमारा मध्यवर्ग, सम्पन्नता के बावजूद कितना डरपोक, हताश, थका हुआ, बीमार और जमाखोर है।

अरविन्द अवस्थी - 'अन्न हैं मेरे शब्द' (1994), 'मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद' (2000) के बाद 'बीज से फूल तक' (2003) आपका तीसरा कविता-संग्रह है। बीज से फूल बनने की इस यात्रा में किस सामाजिक सरोकार की ओर आपका संकेत है?

एकांत श्रीवास्तव- संस्कृति और सभ्यता का जो अंतर है, वही बीज और फूल का अंतर है। संस्कृति विचार है, सभ्यता आचार। क्रियान्वित संस्कृति सभ्यता है और अक्रियान्वित सभ्यता संस्कृति है। प्रत्येक मनुष्य के अंत:करण में एक कोरी जगह है, वहाँ एक क्यारी में गीली मिट्टी है जिसमें कुछ बीज सोये हुए हैं। ये स्वप्न-बीज हैं। क्या सबके जीवन में ये बीज फूल बन पाते हैं? या फूल तक की यात्रा कर पाते हैं। इसी प्रकार सामाजिक स्वप्न-बीज भी होते हैं। बुद्ध, गाँधी और मार्क्स जैसी विभूतियाँ जिन्हें बोती हैं। इन बीजों की फूल तक की यात्रा दरअसल सभ्यता के उत्थान की यात्रा है। 'हिन्द स्वराज' एक ऐसा ही स्वप्न-बीज था और है- सौ बरस पहले जो बोया गया, क्या हम उसे फूल बना पाए?

अरविन्द अवस्थी- आपकी काव्य-पंक्ति है- 'जहाँ कोई नहीं रहता, वहाँ शब्द रहते हैं।' जहाँ कोई नहीं है, वहाँ इन शब्दों की ज़रूरत क्या है और यदि शब्द हैं भी तो इन्हें समझेगा, सुनेगा कौन? काव्य-पंक्ति की व्यंजना स्पष्ट करने की कृपा करें।

एकांत श्रीवास्तव- 'कोई नहीं रहता' से मेरा आशय निर्जनता से नहीं है, उजाड़ जगहों से है- जहाँ केन्द्रीयता का बरक्स बनता है- ऐसी जगहों से है, अर्थात परिधि या हाशिया। आप देखिये कठिन पहाड़ों, रेगिस्तानों और टुण्ड्रा प्रदेश में भी लोग रहते हैं, जहाँ केन्द्रीयता या राजधानियों की चकाचौंध नहीं रहती, उन अंधेरों में भी लोग रहते हैं और शब्द उनके साथ हैं- वहीं रहते हुए। शब्द अर्थात रचना या कविता।

व्हाई डू पीपुल हेट अमेरिका

शिवपूजन त्रिपाठी

यह लेख जियाउद्दीन सरदार और मेरिल विन डेवीज की पुस्तक 'अमेरिका नफरत का पात्र क्यों?' नामक पुस्तक पर आधारित है। जियाउद्दीन सरदार लेखक, ब्राडकास्टर और संस्कृति समीक्षक हैं। वे न्यू स्टेट्समैन तथा अन्य राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में अपने नियमित लेखन के कारण विख्यात है। मेरिल बिन डेवीज लेखक एवं नृतत्व शास्त्री है।

पुस्तक 2002 में 11 सितम्बर की घटना के बाद प्रकाशित हुई। किन्तु यह पुस्तक 11 सितम्बर के बारे में नहीं है न ही यह उसके बाद किये गये कार्यों के बारे में है। यह पुस्तक उस भयंकर घटना से अभिप्रेरित अवश्य है और उस महाविनाश से उपजे महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करती है। पुस्तक एक ऐसी दुनिया जहाँ सत्ता, धन, स्वतन्त्रता और अवसर की वृहत् विषमताएं प्रत्येक स्थितियों में विद्यमान हों, में अंतर्क्रियाओं के परिणामों के बारे में है। इस तरह के अंतर्ग्रथित विश्व में अच्छे और बुरे दोनों के इरादे किसी राष्ट्र के आन्तरिक चरित्र और शेष विश्व से उसके संबंधों को आकार देते हैं। एक मुख्य बात जो लेखक द्वय इस पुस्तक में प्रतिपादित करते है कि अमेरिकी सत्ता से निकृष्टतम असर उन कार्यों पर हुआ जो श्रेष्ठ इरादों से प्रेरित थे। ये प्रभाव मात्र तृतीय विश्व के लोगों के लिये ही सरोकार का विषय नहीं है अपितु यूरोप और अमेरिका के तमाम भूमण्डलीकरण विरोधी आन्दोलनकारियों और न्याय तथा शान्ति के लिये संघर्षरत लोगों के लिये भी महत्वपूर्ण है। लोग अमेरिका से नफरत क्यों करते हैं? यह प्रश्न अवश्य ही नया नहीं किन्तु 11 सितम्बर की घटना के बाद इसमें नयी अनुगूंज पैदा हो गयी है। इसे पाश्चात्य समाज और विशेष रूप में अमेरिका में लिया है। इसने लोगों के दिमाग में इस्लाम और मुसलमानों के बारे में एक जमाने से गहरे पैठे पूर्वाग्रह को निकाल कर सामने कर दिया।

यह प्रश्न कि लोग अमेरिका से नफरत क्यों करते हैं मानकर चलता है कि अमेरिका कोई एकाश्म ढाँचा है जो कि उतनी ही बड़ी नफरत की वस्तु है। तथापि राबर्ट फिस्क इसको स्पष्ट कर देते हैं कि अमेरिका में जो उसकी अधिकारिक छवि ध्वज के आगे एकत्र हो जाने की है उससे कहीं अधिक मतों की विभिन्नता है। तथापि प्रत्येक व्यक्ति अमेरिका शब्द से जो अर्थग्रहण करता है वह है संसाधनों एवं धन के आर्थिक शक्ति पर आधारित सत्ता का केन्द्र सं0रा0 अमेरिका और उसकी अनूठी राष्ट्रीयता के विचार का अनुप्रयोग।

संयुक्त राज्य के प्रभाव के अनेक और विविध पहलुओं के लिये अमेरिका शब्द का प्रयोग वास्तव में हैम्बर्गर संलक्षण (सिंड्रोम) का प्रतिबिम्ब है। वास्तव में हैम्बर्गर एक पूर्ण पैकेज के रूप में आता है। यह अपने आप में पूर्ण आहार है। यह एक विशेष तरीके से उत्पादित किया जाता है, बेचा जाता है और खाया जाता है। यह पूरी प्रणाली हैम्बर्गर अनुभव का आन्तरिक अंग है। यह सम्भव नहीं है कि एक हिस्सा ले लिया जाये और दूसरा छोड़ दिया जाये। आप अचार टमाटर तथा लेटूस को हैम्बर्गर से अलग कर दे लेकिन आपने उन्हें साथ में खरीदा है और उसका दाम दिया है और समूचा प्राप्त किया है। आपको उनका कुछ न कुछ करना है चाहे आप चाहें या न चाहें। अत: अमेरिका सारे विश्व में अन्य राष्ट्रों पर अपने कार्यों और प्रभावों सहित एक सम्पूर्ण इकाई है।

अधिसंख्य अमेरिकी अपनी संस्कृति और अपनी सरकार की नीतियों के शेष विश्व के प्रभाव के बारे में सचेत नहीं हैं। पेरिस स्थित इण्टरनेशनल हेराल्ड ट्रिब्यून ने राजनीति, संचार माध्यम व्यापार और संस्कृति के नेताओं का एक जनमत संग्रह किया जिसमें 58 प्रतिशत गैर अमेरिकी सूचकों ने महसूस किया कि वांशिगटन की नीतियों की असन्तोष और आक्रोश भड़काने में प्रमुख भूमिका रही है जबकि मात्र 18 प्रतिशत अमेरिकी सूचकों ने अपनी सरकार की नीतियों को दोषी माना। इसके अतिरिक्त 90 प्रतिशत अमेरिकियों ने अपने देश की शक्ति और धन को इस बात का कारण माना कि वे क्यों नापसन्द किये जाते है जबकि गैर अमेरिकियों ने पूरी तरह से यह माना कि विश्व के धनी और निर्धनों के बीच की खाई का मुख्य उत्तरदायित्व अमेरिका का है।

एक चौथाई लोगों का केन्द्रीय तर्क यह है कि अमेरिका और शेष विश्व के बीच संबंधों में मुख्य समस्या ज्ञान की है। संक्षेप में इस बात को हम 'जानकार अज्ञान' की समस्या कहते हैं। यह लोगों, विचारों, सभ्यताओं, धर्मों और इतिहासों को उस रूप में जानना है जो कि वास्तव में वे नहीं हैं। 'जानकार अज्ञान' पद का विशेष तौर पर इस्लाम और मुसलमानों के बारे में पाश्चात्य मत के लिये प्रयोग किया जाता है। वास्तव में न तो इस्लाम न ही अन्य गैर पश्चिमी सभ्यता एकाश्म है। और अधिक महत्वपूर्ण यह है कि ये सभ्यताएं न तो अनन्य हैं और न ही पूरी तरह से प्राचीन इतिहास से परिभाषित होती हैं। ये सभी सभ्यताऐं परिवर्तन को अपनी शर्तों के अन्दर अपने अनुभवों मूल्यों और विचारों के अनुसार निरन्तर अनुकूल और सुविधाजनक करने का प्रयास करती है। जबकि जानकार अज्ञान तृतीय विश्व के बारे में द्वार पाल का कार्य करता है कि क्या प्रासंगिक और आवश्यक है बजाय इसके उनकी बात सुने कि वे अपने बारे में क्या कहते हैं।' बिना उनका मत जाने परस्पर सद्‌भाव नहीं आ सकता।

स्वच्छ आकाश से विमान से झपट्टा मारते हुए थोड़ा सा झुकते हुए किसी भव्य और सुडौल काँच स्तम्भ में चमक के साथ फट पड़ना इक्कीसवीं सदी की ठेठ छवि है। एकल परिभाषा की यह छवि भयंकर और वास्तविक है। ईर्ष्या-द्वेष का प्रकरण अत्यधिक दृढ़ता के साथ दक्षिण पन्थी संचार माध्यमों में व्यक्त हुआ। 'शिकागो ट्रिब्यून' ने थामस फ्राइडमैन, 'जिन्होंने वे हमसे नफरत करते है' की पदावली चलाई, ने 2001 के प्रारम्भ में 11 सितम्बर के बहुत पहले सारा दोष 'विशुद्ध ईर्ष्या' पर मढ़ा।

प्रश्न 'लोग अमेरिका से कयों नफरत करते हैं'? के 3 हिस्से हैं लोग, नफरत और अमेरिका ये लोग कौन हैं? कैसे समूह के रूप में व्यक्ति इस प्रवर्ग में रखे जाते हैं। उन्हें कौन सी चीज विशिष्टता प्रदान करती है। लोग, अपने.विशिष्ट गुणों के कारण परिभाषित होते हैं। नफरत लोगों को रक्षात्मक बनाती है और उन्हें आक्रमण के साथ-साथ रक्षा करने को तैयार करती है। इसका एक इतिहास है। प्राय: यह मानवीय कार्यों में संचालन शक्ति की तरह कार्य करती हैं। नफरत : नफरत लोगों के बीच में सीमा बनाती है, दूरी, विश्वास और द्वेष पैदा करती है जिसके कारण जघन्य अपराध करना सम्भव होता है। नफरत एक वैषम्य दिखाती है। कुछ ज्ञात परिपाटियों का उजागर करती है। किन्तु क्या परिपाटियाँ इस बात की व्याख्या कर सकती है, कि अमेरिका क्यों निशाना है?

और अन्त में प्रश्न अमेरिका पर आता है। वह कौन सा अमेरिका है जिससे नफरत की जाती है। चाल्मर्स जॉन्सन जो कि शीत युद्ध के समय एक योद्धा थे और अब कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं, का विचार है कि अमेरिकी विदेश नीति ने अमेरिका के विरूद्ध आतंक और नफरत

पैदा की है। इस पद का सबसे पहले प्रयोग ईरान के प्रधानमंत्री मुहम्मद मुसद्दिक की सी0आई0ए0 द्वारा हत्या के बाद हुए परिणाम के सन्दर्भ में किया गया। ईरान के मामले में इस बेहूदे हस्तक्षेप का परिणाम हुआ शाह की सत्ता में वापसी और दमन एवं अत्याचार के 25 वर्ष जिसके कारण तेहरान में अमेरिका के पूरे दूतावास को एक वर्ष से ऊपर के लिए बन्धक बनाये रखा गया जब अयातुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में क्रान्ति हुई। यह विचार है जान्सन का। उनका यह भी कहना है कि अमेरिकी साम्राज्य का सतत विस्तार और इसकी हद से अधिक पहुंच 11 सित्मबर का मूल कारण है। अन्यत्र चौम्स्की ने कहा कि अमेरिकियों को यह मानना चाहिये कि अधिकांश विश्व में अमेरिका प्रमुख आतंकवादी राज्य माना जाता है।

एडवर्ड सईद ओरियन्टलिज्म (1978) नामक शास्त्रीय पुस्तक के लेखक हैं जिसका संबंध साहित्य और शास्त्र की उस धारा से है जिसमें पाश्चात्य जगत इस्लाम और मुसलमानों को समझता और व्याख्या करता है। यह सिद्धान्त मुसलमानों को मूल रूप से बर्बर कट्टर, भ्रष्ट जर्जर भोगवादी लोगों के रूप में पेश करता है जो प्राकृतिक सिद्धान्तों के विरूद्ध रहते हैं। यह सिद्धान्त पाश्चात्य शास्त्रों में प्रारम्भ में विकसित हुआ और किसी भी परिवर्तन का प्रतिरोध करता है। इसकी केन्द्रीय मान्यता है कि लोक और समाज के रूप में मुसलमानों की असफलता उनके विश्वास के कारण हैं। मध्यकालीन यूरोप ने मुसलमानों और इस्लाम को जिस रूप में पेश किया उसे ब्रिटिश इतिहासकार नार्मन डेनियल ने जानकार अज्ञान के रूप में वर्णन किया है जिसमें किसी वस्तु को इस रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें सम्भवत: वह हो नहीं सकती। जबकि उसको भिन्न प्रकार से जानने के साधन उपलब्ध हैं।

इस प्रकार ओरियन्टलिज्म मुस्लिमों को इस रूप में पेश करता है कि उन्हें समझा नहीं जा सकता किन्तु उनके बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। इस परिदृश्य का सातत्य, और शास्त्रीय ग्रन्थों, साहित्य, इतिहास और राजनीतिक अध्ययनों तथा हॉलीवुड फिल्मों में एक ही तरह के विचारों की निरन्तरता इसी निष्कर्ष पर पहुंचाती है कि इस्लाम और पश्चिम में तभी से द्वन्द्व होता रहा है, जबसे पैगम्बर मोहम्मद साहब ने 610 ई0 में अपना उपदेश देना प्रारम्भ किया।

किन्तु यह मानना गलत होगा कि गैर पाश्चात्य विश्व में प्रत्येक व्यक्ति अमेरिका के बारे में एक विचार रखता है। उदाहरण के लिये कुवैत का राज परिवार अमेरिका के प्रति बहुत कृतज्ञ है और अमेरिका के प्रति प्यार और दुलार दिखाने का कोई मौका नहीं चूकता किन्तु जहाँ कुवैती अमेरिका को अपना कार्य (इराकी कब्जे से मुक्ति) करने के लिये धन्यवाद देते हैं, फिलिस्तीनी अमेरिका से इस बात के लिये नफरत करते हैं कि वह उनके कार्य का समर्थन नहीं करता और इजराइल पर नियन्त्रण नहीं करता है।

तथापि 11 सितम्बर के हमले का निशाना जानबूझकर चुना गया था और लोग अमेरिका से नफरत क्यों करते हैं इस प्रश्न से सीधा संबंधित है। वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर जब बनाया गया था उस समय यह विश्व का सबसे ऊँचा गगनचुम्बी भवन था और यह वैश्विक व्यवस्था और वैश्विक अर्थव्यवस्था का प्रतीक था। इसकी बुनियाद में इस धरती के समृद्धतम राष्ट्र के सबसे वैश्विक नगर की मिट्टी थी। पेंटागन मानव इतिहास के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र की सैन्य शक्ति का आदेश केन्द्र है। अमेरिकी सुपर शक्ति इस समय अनूठी शक्ति है। जिन भौतिक शक्तियों का यह उपयोग या दुरूपयोग करता है उन्होंने इस त्रासदी के परिणाम स्वरूप जाँच के रास्ते खोल दिये।

स्पष्टत: अमेरिका दूसरों को कैसे समझता है और कैसे दूसरे अमेरिका को समझते हैं यह हमारे प्रश्न का मुख्य हिस्सा है। अमेरिका इस ग्रह के प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र के जीवन को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। अत: लोग अमेरिका से नफरत क्यों करते हैं प्रश्न के सभी सम्भावित और विभिन्न उत्तर केवल अमेरिकियों ही नहीं बल्कि सभी के लिये प्रासंगिक हैं जब अमेरिका प्रदूषण या भूण्डलीय गर्मी (Global warming) जैसे मुद्‌दों की उपेक्षा करता है। तो इसका एक मात्र इशारा यही होता है कि एक मात्र अमेरिका ही महत्वपूर्ण है। यह जरा भी आश्चर्यजनक नहीं है कि जो लोग भूमण्डलीय ग्रीष्मीकरण और प्रदूषण के प्रभाव में रहने को अभिशप्त है वे अमेरिका की ओर प्यार और दुलार से नहीं देखते।

सत्य कभी कभी चोट पहुँचाता है। एबीसी टेलीविजन श्रंखला एलियास जो एक स्नातक के छात्र जो वास्तव में जासूस हैं के बारे में है का उद्देश्य यह बताना है कि वह हमें बहुत कुछ पढ़ा सकता है। एलियास वास्तव में अमेरिकी विचार धारा का विस्तार प्रलेख है। इसका मुख्य पात्र सिडनी स्वयं अमेरिका की तरह दोहरे चरित्र की है। अपने स्वाभाविक रूप में यह मासूमियत और सज्जनता की प्रतिमूर्ति है वह चिन्तित और असुरक्षित रहती है, कालेज में अपनी श्रेणी बढ़ाने के लिये पूरी तरह से प्रयासरत, प्यार में धोखा खाई हुई अपनी रूम मेट को सांत्वना देती हुई, अपने मंगेतर को खोने पर विलाप करती हुई, अपने अलग हुए पिता पर गुस्सा होते हुए, अपनी माँ के बारे में सोचते हुए उदार रिपोर्टर मित्र से प्राप्त अग्रिम को उड़ाती हुई नजर आती है। उसके सामान्य जीवन में पर्याप्त आत्म निरीक्षण है। अतिशय खाना पीना है तथा संवदेनशील और मानवीय का आदान-प्रदान भी है किन्तु एक बार मिशन के लिये पड़ने पर सिड़नी एक लड़ाकू मशीन बन जाती है।

एलियास जो अत्यधिक आत्मविश्वास दिखा रहा है वह यह नहीं है कि अमेरिका विश्व पर शासन करना चाहता है बल्कि और अधिक स्वाभाविक तथ्य कि यह संसार पर शासन कर रहा है। राष्ट्र राज्य, भौगोलिक सीमाएं राजनीतिक संरचनाएं महत्वपूर्ण नहीं है महत्वपूर्ण है आपस में लड़ते हुए हित समूहों का संजाल जो विश्व के रंगमंच पर अपने हितों का बदलाव करते हैं।

आज वास्तव में समूचा भूमण्डल बहुत कुछ अमेरिकी समाज का विस्तार मात्र है जहाँ अधिकांशतया सभी लोग अमेरिकी संस्कृति और मूल्यों को गले लगाने के लिये उत्सुक हैं। इसलिये आज अमेरिका पुराने चाल चलन वाली साम्राज्य वादी शक्ति नहीं है जो कि अन्य शक्तियों से प्रतिस्पर्धा करते हुए अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने का प्रयास करती है। यह वास्तव में एक अतिशक्ति है जिसका कोई समतुल्य नहीं है। अत: यह आश्चर्य की बात नहीं है कि एलियास सारे विश्व को अमेरिका समझता है और अमेरिका को विश्व। यदि अमेरिका विश्व है तो इसकी यह स्वाभाविक परिणति है कि अमेरिका कि हित विश्व का हित है और वे सभी लोग जो अमेरिका के हित, उसी संस्कृति और उसकी विश्वदृष्टि को विरोध करते हैं। वास्तव में विश्व के कल्याण और उसकी सुरक्षा के विरोध में कार्य करते हैं।

11 सितम्बर की दुखद घटना के ठीक बाद में एक अमेरिकी शान्तिवादी और 'काउण्टरपन्च' नामक पत्रिका के नियमित लेखक जाल्कान ग्रासमैन ने 1890 से 2001 तक के अमेरिका के 134 हस्तक्षेपों की सूची प्रस्तुत की जिसमें छोटे-बड़े घरेलू और वैश्विक हर तरह के हस्तक्षेप शामिल हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध तक अमेरिका ने प्रतिवर्ष औसतन 1.15 हस्तक्षेप किये। शीतयुद्ध के दौरान

यह औसत 1.29 हो गया। बर्लिन की दीवार के पतन के उपरान्त हस्तक्षेप बढ़कर 2.0 प्रतिवर्ष हो गया। अत: जैसे जैसे अमेरिकी अति साम्राज्यवाद बढ़ता गया उसके हितों की रक्षा के लिये हस्तक्षेपों की संख्या बढ़ती गयी। अमेरिकी हस्तक्षेप का पहले केन्द्र बिन्दु पूर्व एशिया (कोरिया, वियतनाम और इण्डोनेशिया) था और अत्यधिक हिंसापूर्ण था। दूसरा हस्तेक्षप पूर्वी यूरोप में था किन्तु प्रतिरोधी सुपर पावर की उपस्थिति के कारण प्रत्यक्षत: अधिक हिंसक नहीं था। तीसरा दौर लैटिन अमेरिका में हुआ जो क्यूबा से प्रारम्भ होकर महाद्वीप के अधिकांश हिस्से में पहुंच गया। इस बार हिंसा छोटे और बड़े दोनों पैमाने पर हुई किन्तु पूर्वी एशिया के स्तर पर नहीं पहुंची थी। चौथा दौर पश्चिम एशिया में केन्द्रित था जो फिलिस्तीन और ईरान से प्रारम्भ होकर तत्पश्चात् लीबिया और लेबनान/सीरिया होते हुए 1990 के दशक में ईराक पहुंचा और इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में अफगानिस्तान तक पहुंचा। इस प्रकार हस्तक्षेप कन्फ्यूशियस बौद्ध समाजों से प्रारम्भ होकर पारम्परिक ईसाई कैथलिक ईसाई और अन्त में इस्लामिक सम्भ्यता तक पहुंचा।

यदि अमेरिका ही विश्व है तो उसे अपनी वैदेशिक और आर्थिक नीतियों को लागू करने के लिये विश्व की संस्थाओं की आवश्यकता नहीं है। सामान्यत: अमेरिका यू0एन0डी0पी0 यूनेस्को, यू0एन0सी0 एच0आर0 जैसी संस्थाओं में बहुत कम रूचि रखता है। एक संस्था जिसमें अमेरिका पूर्ण नियन्त्रण रखता है वह है विश्व व्यापार संगठन (डब्लू0टी0ओ0)। यह विचार व्यक्त किया गया है कि वास्तव में अमेरिका के नव साम्राज्यवाद को बनाये रखने का यह (वि0व्या0सं0) एक प्रमुख साधन है। इसी तरह इसकी सर्वव्यापी शक्ति और इसकी तकनीकी इसको अति शक्ति के रूप में कार्य करने के योग्य बनाती है।

अमेरिका की अतिशक्ति और तकनीकी साम्राज्यवाद को बनाये रखने का पसंदीदा मंच अकेले विश्व व्यापार संगठन ही नहीं है बल्कि अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक भी है। इसके दो प्रमुख कारण हैं। प्रथमत: विश्व व्यापार संगठन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्वबैंक अत्यन्त अपारदर्शी और आलोकतान्त्रिक वैश्विक संस्थाएं हैं और अपनी निर्णय प्रक्रिया को गोपनीयता के घेरे में रखकर उत्पाती शेष विश्व को दूर रखने के लिये ये आदर्श संस्थाएं हैं। दूसरे मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन दोनों के पास अपनी शर्तों को लागू कराने के लिये विशेष तौर पर विकासशील देशों में प्रभावी तरीके हैं। विश्व व्यापार संगठन संगठन उनके निर्यात के प्रति बदला लेने की धमकी से और अं0मु0 कोष निर्दयता से लागू की जाने वाली ऋणनीति के जरिये ऐसा करते हैं। अमेरिका इन तन्त्रों का प्रयोग विकासशील देशों को अपनी सीमा में रखने के लिए और अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की प्रगति के लिये करता है। कोई आश्चर्य नहीं है कि 'फाइनेन्सियल टाइम्स' के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त एक अध्ययन दल ने विश्व व्यापार संगठन को विकासशील देशों के लिये दु: स्वप्न कहा है।

यदि अमेरिका विश्व है तो विश्व की पर्यावरण की समस्या भी अमेरिका के सन्दर्भ में ही देखी जानी चाहिये। मार्च 2001 में सारे विश्व ने दुखद आश्चर्य के रूप में अमेरिका की यह घोषणा सुनी कि वह क्योटो प्रोटोकाल का पालन नहीं करेगा क्योंकि वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन की चुनौती का सामना करने के लिये यह उपयुक्त तरीका नहीं है। और इस प्रकार प्रोटोकाल की सारी प्रक्रिया को खतरे में डाल दिया। अत: कैलीफोर्निया में विद्युत की कीमत छीनती ओजोन पर्त, बढ़ते वैश्विक तापमान और लुप्त होती हुई ध्रुवीय कैपों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

जिन पौधों को स्वदेशी लोग परम्परा से प्रयोग करते रहे हैं वे लुटेरे बौद्धिक सम्पदा के दावों के शिकार हो रहे हैं। इसकी शुरूआत नीम के पेड़ से हुई जिसका भारत में अल्सर, मधुमेह, त्वचा रोगों, कब्ज की कई तरह की दवाओं के साथ कई वनस्पतियों के लिये प्रभावी कीटनाशक बनाने में प्रयोग किया जाता है। अत: जो कभी मुफ्त और व्यापक रूप से उपलब्ध था जिसको दक्षिण एशिया ने शताब्दियों से प्रयोग किया और विकसित किया वह अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सम्पदा हो गया। नीम के बाद तेजी से लैटिन अमेरिका के अयाहुआसी और क्विनोवा, प्रशान्त क्षेत्र के कावा और फिलीपाइन्स और थाईलैण्ड के करैले की बारी आई। ये सारी वस्तुएं शताब्दियों से स्थानीय लोगों के द्वारा व्यवहार में लाई जाती थीं अब उनके स्वामित्व पर अमेरिकी व्यवसायी दावा कर रहे हैं।

अमेरिकी परिदृश्य से शेष विश्व का अलगाव एक अत्यन्त व्याकुल कर देने वाला तथ्य है। अपनी वृहत् मीडिया प्रणाली के बावजूद अमेरिकी प्रशासन शेष विश्व की खतरों के मामलें में एक बन्द समाज की तरह व्यवहार करता है। अत: कोई आश्चर्य नहीं कि सामान्य अमेरिकी विश्व में अमेरिका के प्रति बढ़ती नफरत से बिल्कुल बेखबर हो। अमेरिकी संचार माध्यमों का प्राथमिक कार्य है अपने अमेरिकी दर्शकों को शेष दुनिया से बेखबर बनाये रखना इसकी रूचि खुश उपभोक्ता बनाने में है न कि जानकार और मुक्त चिन्तकों को बनाने में जो अपने सरकार की विदेश नीति पर सवाल उठाये जैसा कि जार्ज आरवेल ने अपने उपन्यास एनीमल फार्म की अप्रकाशित भूमिका में लिखा है कि मुक्त समाजों में सेन्सरशिप तानाशाही समाजों की तुलना में कहीं अधिक परिष्कृत होती हैं। क्योंकि बिना किसी अधिकारिक रोक के आलोकप्रिय विचार शान्त कर दिये जाते हैं असुविधाजनक तथ्य अन्धेरे में रखे जाते हैं।

दुनिया में शायद ही कोई जगह हो जहाँ हैम्बर्गर न मिल जाये। यद्यपि वृहत पैमाने पर इसका भोजन के रूप में उत्पादन होता है। तथापि मूलत: यह जंक फूड है जिसमें संयोजी वस्तुओं की पूरी श्रृंखला होती है जिससे अत्यन्त न्यून पौष्टिकता वाला उत्पाद तैयार होता है। इसके अलावा हैम्बर्गर निश्चित ही त्वरित खाद्य है तथापि सामान्यत: किये जाने वाले दावे के विपरीत यह विश्व का पहला और एकमात्र त्वरित खाद्य नहीं है प्रत्येक संस्कृति का अपना त्वरित-खाद्य होता है। मध्य पूर्व में श्वारमा, भारत में आलू पूरी चाट, दक्षिण पूर्व एशिया में नासी लमक (सूखी मछली के साथ चावल) पुरानी ब्रिटिश सभ्यता में मछली और चिप्स और चीज तथा हैन के साथ फ्रांसीसी बैग्नेट इसके कुछ उदाहरण हैं। अत: स्पष्ट है कि भोजन और संस्कृति-उत्पाद दोनों रूपों में हैम्बर्गर वह नहीं है जिसका दावा किया जाता है।

हैम्बर्गर अमेरिका के प्रति नफरत का खास स्रोत है। यह उस समूचे संजाल का ठोस प्रतीक है जिसको अमेरिका कहा जाता है। एक हैम्बर्गर हद से अधिक बहुस्तरीय यौगिक है। अमेरिका स्वयं के साथ जो गौरव जोड़ता है और शेष विषय में उसकी जो आलेचना होती है हम्बर्गर उसका एक शक्तिशाली रूपक है। हैम्बर्गर अपने अवयवों से अधिक एक जीवन पद्धति है। मैरीलैण्ड विश्व विद्यालय में समाज शास्त्र के प्रोफेसर और 'दि मैक्डोनल्डाइजेशन ऑफ सोसाइटी' के लेखक जार्ज रिजर कहते हैं कि अपने आपको सारी दुनिया में फैलाने की प्रक्रिया में अमेरिकी संस्कृति ने अश्लील शक्ति अर्जित कर ली।

इसके अलावा अमेरिकी विदेश नीति ने उन देशों की आलोचना की, उन पर प्रतिबन्ध लगाये और उनको शैतान के रूप में प्रस्तुत किया जिन्होंने नाभिकीय अस्त्रों को पाने का प्रयास किया। इसने भारत और पाकिस्तान पर इन अस्त्रों को विकसित करने के लिये अपंग कर देने वाले प्रतिबन्ध लगाये। इसने उत्तर कोरिया को नाभिकीय शस्त्रागार रखने के लिये शैतान घोषित किया है। इसके बावजूद इसने दुनिया में नाभिकीय शस्त्रों का सबसे बड़ा जखीरा बना रखा है। यहाँ तक कि इन अस्त्रों को (हिरोशिमा और नागासाकी में) युद्ध में प्रयोग करने वाला यह अकेला देश है। संयुक्त-राज्य ईराक जैसे देशों को शैतान घोषित करता है और उनपर प्रतिबन्ध लगाता है क्योंकि उसके पास जैविक और रासायनिक हथियारों का जखीरा है। तथापि उसके स्वयं के पास दुनिया का चचेक, एन्ड्रैक्स और अन्य जैविक हथियारों का सबसे बड़ा भण्डार है। इसने संयुक्त राष्ट्र के हर उस प्रस्ताव का दृढ़ता से विरोध किया है जो जैविक और रासायनिक हथियारों को विकसित करने पर प्रतिबन्ध लगाता हो और कभी भी जैविक हथियार सन्धि को मजबूत करने वाला प्रयास करने पर सहमत नहीं हुआ।

फ्रांस जानता है कि 'मुक्त बाजार' से शासित विश्व वास्तव में अमेरिकी संस्कृति के अभिभावकत्व का विश्व होगा। इसीलिये फ्रांस वैश्विकता के सभी पहलुओं पर अमेरिका का समर्थन नहीं करता। फ्रांस और आस्ट्रेलिया दोनों औद्योगिक शक्तियाँ है और कुछ हद तक अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकती है। जैसा कि माग्रेट वरथीम कहती है यदि सम्पन्न, श्वेत, अंग्रेज और यूरोपियन देश डरे सहमें हैं तो अमेरिकी संस्कृति और इसके अति साम्राज्यवादी प्रहार से विकासशील देशों के लोगों ने कितना नुकसान सहा होगा? यदि फ्रांसीसी फिल्मकारी और आस्ट्रेलियन लेखक अपने विकासीय अस्तित्व को लेकर चिन्तित हैं तो तृतीय विश्व के लेखकों, फिल्मकारों और टेलीविजन कार्यक्रम निर्माताओं के लिये क्या उम्मीद की जा सकती है?

भाषाएं निश्चय ही सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन होती है। अत: इस तथ्य से हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि देशीय संस्कृतियों का ह्रास विश्व भर की भाषाओं को प्रभावित कर रहा है। वास्तव में हर दूसरे सप्ताह एक देशीय भाषा लुप्त हो रही है। ऐसा अनुमान है इक्कीसवीं सदी के अन्त तक वर्तमान समय में बोली जा रही 6000 भाषाओं में 5500 प्राचीन ग्रीक और लैटिन की तरह मृत हो जायेगी। अंग्रेजी का विस्तार नग्न भाषाई सुपर शक्ति का उत्पाद है।

सउदी अरब में जेद्दा एक ऐतिहासिक नगर था जिसकी अपनी विशिष्ट पहचान थी जिसके कारण पर्यटक इसे देखना पसन्द करते थे। लेकिन शीघ्र ही यह हाउस्टन की एक घटिया नकल बनकर रह गया। अमेरिकीकरण के कारण मक्का जो कि इस्लाम की पवित्रतम शहर है की और बुरी गति हुई जहाँ कोई भी सड़क टहलने लायक नहीं बची है। अमेरिकी नियोजकों, सलाहकारों और वास्तुकारों ने मक्का को तीसरे दर्जे के अमेरिकी शहर में बदल दिया है जिसमें, सुरंगे फ्लाई ओवर बहु वीथिका वाले रास्ते भड़कीले होटलों के साथ ध्यान आकर्षित करने के लिये प्रतिस्पर्धा करते हें।

बहुत से सउदी नागरिक अमेरिका के प्रति नफरत व्यक्त करते हुए मिलेंगे किन्तु उसके बावजूद पवित्र क्षेत्रों में भी अमेरिकी सेना की उपस्थिति बनी है। वास्तव में अमेरिकी सैन्य टुकड़ियाँ परम्परागत पवित्र नगर से सैकड़ों मील उत्तर तक फैली हैं।

स्वयं अमेरिका के बाद सिंगापुर लक्षणात्मक रूप में पृथ्वी पर सर्वाधिक अमेरिकीकृत स्थान

है। और यह कई एशियाई और लैटिन अमेरिकी नगरों के भविष्य का प्रतिनिधित्व करता है इस तरह का सांस्कृतिक अति साम्राज्यवाद उन देशों में भी अमेरिका के प्रति नफरत के दाग बना देता है जो कि उसके परम मित्र और समर्थक माने जाते हैं।

अमेरिकी संस्कृति की वांछनीयता जिसको कि बेहतर, आधुनिक और भविष्य की लहर आदि के रूप में समझा जाता है का अर्थ यह हुआ कि इसके शिकार स्वयं अमेरिकी संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। फुलर का सुझाव है कि यदि हम वास्तव में समझना चाहते हैं कि अमेरिका शेष विश्व के साथ क्या कर रहा है तो हमें अमेरिका सांस्कृतिक प्रथाएं जैव-आतंकवाद के संदर्भ में समझना होगा जो युद्ध और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की शास्त्रीय अवधारणा की ठीक उलट है। वास्तव में जैसे आतंकवादी वास्तव में इसे केवल प्रारम्भ करता है, अधिकांशतया वास्तविक युद्ध शिकार स्वयं लड़ते हैं जो अपने दैनन्दिन क्रिया-कलाप के दौरान एक दूसरे को संक्रमित करते रहते हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम के रूप में अपने राष्ट्रीय मिथक को दूसरे देशों के लिये मॉडेल मानने का अमेरिकी विश्वास विश्वपटल पर एक प्रमुख कारक बना शेष विश्व के प्रति अमेरिका का दृष्टिकोण एक नये साम्राज्य वाद के रूप में प्रकट हुआ जो कि साम्राज्यवाद के अब तक के रूपों जिन्होंने शताब्दियों से मानव जाति के 60 प्रतिशत हिस्से की आकांक्षाओं को तोड़ा मरोड़ा था से भिन्न होते हुए भी अलग नहीं था। वास्तव में अब तक के साम्राज्यवाद के रूपों में संचित रूप में, वैश्विक समस्याओं के समाधान के रूप में अमेरिकी स्वप्न ने अति साम्राज्यवाद की बुनियाद रखी जिसके अंतर्गत अमेरिका ने शेष विश्व को अपना पिछवाड़े का आँगन समझा जिसको विशुद्ध अमेरिका सन्दर्भों में जानना समझना और लगाये रखना है।

बारबेरियन शब्द की उत्पत्ति प्राचीन ग्रीस में हुई है। ग्रीक कानों को विदेशीभाषाएं बा-बा सुनाई पड़ती थी। तो यह शब्द उन लोगों के लिये प्रयोग किया जाने लगा जो ग्रीक भाषा बोलने में असमर्थ होते थे जिसका आशय यह होता था कि बारबरिज्म बुद्धि का दोष है। शेष विश्व इसको जिस रूप में ग्रहण करता है उसमें यह रूपक बुरा नहीं है। उस अर्थ में अमेरिकन उचित ही अपने को तार्किक और अच्छे का एक सही प्रतिरूप मानते हैं जबकि दूसरे सभी अनवगम्य बारबेरियन है जो यह नहीं देख सकते कि उनके लिये सर्वोत्तम क्या है। तृतीय विश्व के परिदृश्य में देखने पर अमेरिका का उद्‌भव कोई रहस्यपूर्ण बात नहीं है। अमेरिका का उद्‌भव उस विचारधारा से होता है जो साम्राज्यवाद पैदा करती है। अमेरिका का सृजन पश्चिमी शक्तियों के उदय की सुपरिचित कहानी की एक शाखा है जो यूरोप के विस्तार से प्रारम्भ हुई।

मध्यकालीन ईसाई मत ने यूरोप की पहचान परिभाषित की और ऐसा करने में एक स्पष्ट परिभाषा उनकी की जो इससे इतर है वे जो ईसाई नहीं है और जिनका बपतिस्मा नहीं हुआ है। लेकिन दूसरे सारे लोग एक ही तरह के नहीं है। सन्त थामस एक्विनास ने दो मूल प्रवर्ग बताये। विजेय और अजेय रूप से अज्ञानी। विजेय रूप से अज्ञानी वे लोग हैं जो ईसाई मत को जानते हुए भी इसमें शामिल नहीं है। और जैसा कि धार्मिक कानूनों में स्पष्ट लिखा है इस समूह में यहूदी और मुसलमान है। यहूदी 'अन्य' में उस तरह के लोग हैं जो ईसाई समाज की सीमा में रहते है। और उन्हें उनकी अन्यता के लिये प्रताड़ित किया गया है और उनके विरूद्ध भेदभाव किया गया है। मुस्लिम बाहरी अन्य लोग हैं जिनकी ईसाई सीमा में रहने की आशा नहीं की जाती। अजेय रूप

में अज्ञानी वे अन्य लोग हैं जिनका ईसाई मत के सन्देश से कभी सामना ही नहीं हुआ है। ये वे लोग हैं जो मुस्लिम सीमा से भी दूर हैं और जो अपनी प्राचीन शास्त्रीय पुस्तकों के कारण अस्पष्ट रूप से जाने जाते हैं लेकिन उनका धर्मान्तरण कर लिया जायेगा। पाश्चात्य ईसाइयत के राजनीतिक तन्त्र की प्रजा हो जायेंगे। इन्हीं दूसरे प्रकार के अजेय रूप से अज्ञानियों के रूप में यूरोप ने इस्लाम के विरूद्ध अपने मित्र पाने की आशा की थी।

अमेरिका विभिन्न प्रकार के प्रवासियों का देश है किन्तु प्रत्येक वह वस्तु जिससे अमेरिका बना है एकान्त रूप से यूरोपीय हैं जो कि उस पाश्चात्य सभ्यता की देन है जो शेष विश्व की सभी (सभ्यताओं) से श्रेष्ठ हैं, आज के अमेरिका में यूरोप के प्रति संशय और अज्ञान के बावजूद इससे केवल यही विचार मिलता है कि शेष विश्व को समर्पण करना है और सबक सीखते रहना है। यह ज्ञान के आडम्बर में अज्ञान का भव्य रूप है। स्वतन्त्रता, न्याय एवं अन्य सद्गुण किसी गैर पश्चिमी राष्ट्र से आ सकता है इस बात से स्पष्ट इन्कार एवं अन्य संस्कृतियों से संवाद को अप्रांसगिक कर देता है। इस तरह का अज्ञान-पूर्ण दम्भ खतरनाक है। इससे द्विस्तरीय विश्व का निर्माण होता है और अमेरिका के प्रति नफरत की आग को हवा मिलती है। सभ्यताओं में किसी तरह का संघर्ष टालने के लिये सं0रा0 अमेरिका को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्येक सभ्यता को फलने-फूलने का वही अधिकार है, अपने को अभिव्यक्त करने की वही स्वतन्त्रता है और अपने मूल्यों और आदर्शों के अनुसार अपने समाज को चलाने का वही अधिकार है जो उसे है। इतना ही नहीं विश्व के सभी राष्ट्र को अमेरिका को बेइज्जत करने का अधिकार और स्वतन्त्रता है।

अमेरिका की जिस बात से लोग सबसे अधिक नफरत करते हैं वह है उसकी राजनीतिक सत्ता, उसकी सर्वाधिकारी हिंसा, उसका दोहरा (नैतिक) स्तर, उसकी स्वयं रक्षित स्वार्थ नीति और अपने ही हित को दुनिया के हित से बराबर करने का अनैतिहासिक अनाड़ीपन। वास्तव में अमेरिका से नफरत के कई स्पष्ट कारण हैं, इनमें से तीन सामान्यतया सर्वाधिक बताये जाने वाले कारण हैं। इजरायल को अमेरिका का समर्थन जिसे अरब विश्व में अमेरिका द्वारा पोषित उसके सशस्त्र उपनिवेश के रूप में देखा जाता है वाशिंगटन का मिस्र, सउदी अरब और अल्जीरिया के सर्वाधिकार वादी शासनों का समर्थन और विकासशील देशों में बार बार सैनिक हस्तक्षेप।

इन तीन के अतिरिक्त अमेरिका को नफरत का पात्र बनाने के चार मुख्य कारण हैं।

पहला कारण अस्तित्व से संबंधित है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने अन्य राष्ट्रों का अस्तित्व ही बहुत अधिक मुश्किल बना दिया है। अमेरिका विशुद्ध शाब्दिक अर्थों में विकासशील राष्ट्रों के लोगों के मुँह का निवाला छीन रहा है। 'मुक्त बाजार' वस्तुतः अमेरिकी पूँजी का मुक्त संचार अमेरिकी निगमों का अनियन्त्रित विस्तार और अमेरिका से अन्य देशों को मुक्त (एकतरफा) गमनागमन का पर्याय हो गया है। इस स्थिति को अमेरिका द्वारा नियन्त्रित पूँजी संस्थानों जैसे अंतरराष्टीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन के साथ मिलाकर देखने पर हम पाते हैं कि किस तरह वैश्विक अर्थव्यवस्था विकासशील देशों को हाशिये पर डाल रही है।

दूसरा मुख्य कारण ब्रह्माण्डीय है। ईश्वर के लिये पारम्परिक ब्रह्माण्डीय तर्क जो कि मूलतः अरस्तू के द्वारा विकसित है के अनुसार ईश्वर सभी वस्तुओं का कारण है। इसी कारण इस तर्क के कुछ प्रारूप 'आदि कारण तर्क के रूप में जाने जाते हैं। आज के भूमण्डलीकृत विश्व में अमेरिका प्रत्येक वस्तु का प्रधान कारण माना जा रहा है। बिना अमेरिकी सहमति के कुछ भी नहीं चलता

और बिना अमेरिकी हस्तक्षेप के कोई भी विवाद नहीं सुलझता। केवल अमेरिका ही फिलिस्तीन और इजराइल का विवाद सुलझा जा सकता है। अमेरिका के हस्तक्षेप से ही भारत और पाकिस्तान में काश्मीर को लेकर विवाद हल हो सकता है। और अमेरिका ने ही उत्तरी आयरलैण्ड के मामलें में मध्यस्थता की। अमेरिकी सहमति के बिना कार्बनडाई आक्साइड के उत्सर्जन से संबंधित क्योटो सन्धि उस कागज के मूल्य की भी नहीं है जिस पर वह छपी है। बिना अमेरिका की मूड़ी हिले विश्व व्यापार संगठन विश्व बैंक में कुछ नहीं हिलता और संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई अस्तित्व नहीं रहता।

अमेरिका विरोधी भावनाओं का तीसरा मुख्य कारण सत्ता संबंधी है। जो कि प्राणियों की प्रकृति मात्र से संबंधित है। एक बार पुन: यह हमें ईश्वर के लिये मानक तर्क की ओर ले जाता है। ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में सत्ताधारी तर्क का श्रेय सेन्ट एन्सेल्म को दिया जाता है जिसके अनुसार ईश्वर सबसे पूर्ण वस्तु है और यह होने में अधिक पूर्ण है बजाय होने में। अत: भगवान है। निश्चय ही यह चक्रीय तर्क है। अमेरिका के मामलों में यह इस प्रकार हैं कि वह सारी अच्छाई अपने में मानकर तब बुराई करता है और पाखण्ड का आरोप दूसरों पर लगाता है। सारी दुनिया में लोग लगातार सवाल करते हैं। कि क्यों अमेरिका कहता कुछ है और करता बिल्कुल उल्टा है। अमेरिका जो मानक दूसरों के लिए बनाता है, वही अपने ऊपर क्यों नहीं लगाता। ऐसे कैसे हो सकता है कि अमेरिका अपने को सभी सद्गुणों की खान माने और फिर भी गरीबों के प्रति ऐसी अवहेलना कि उनको भोजन और जल जैसे प्राथमिक अधिकार से भी वंचित रखें। अफ्रीका उप सहारा क्षेत्र में एड्स से मर रहे लोग आश्चर्य करते हैं कि कैसे अमेरिका सुपर कम्प्यूटर और बाम्बर्स की व्यवस्था कर लेता है किन्तु उनके लिये ए0जेड0टी0 और दूसरी दवाएं नहीं जुटा सकता।

अमेरिका के प्रति बैरभाव के चौथे मुख्य कारण का संबंध परिभाषाओं से है। यह एक मात्र अति शक्ति ही नहीं है अपितु यह विश्व की सबसे बड़ी परिभाषा गढ़ने वाली शक्ति भी बन गयी है। अमेरिका ही परिभाषा देता है कि लोकतन्त्र क्या है? न्याय, स्वतंत्रता और मानव अधिकार क्या है? आतंकवाद क्या है और कट्टरवाद क्या है, आतंकवाद क्या है और सीधे सीधे बुराई क्या है? किन्तु इन सब को वह एक मात्र अमेरिका के सन्दर्भ में ही परिभाषित करता है अमेरिका की अस्मिता, इतिहास, अनुभव, संस्कृति और प्राय: अमेरिका के हित के संदर्भ में अमेरिका यह मानकर चलता है कि स्वतन्त्रता और न्याय के बारे में अमेरिकी विचार ही एक मात्र विचार है। इनकी व्याख्या और इतर ढंग से व्यवहार की गुंजाइश नहीं हैं इस बात का कोई बोध नहीं है कि अन्य संस्कृतियों के इतिहास और अनुभव ने भी स्वतंत्रता और न्याय संबंधी अपने विचार पैदा किये होंगे। विकासशील देशों द्वारा दो दशकों से वृहत् प्रयास के बावजूद अमेरिका यह मानने को तैयार नहीं है कि भोजन, आवास, प्राथमिक स्वच्छता और अपनी अस्मिता एवं संस्कृति का संरक्षण बाजार की शक्तियों के संरक्षण से अधिक महत्वपूर्ण है।

कोई आश्चर्य नहीं कि शेष विश्व असहमत होने की याचना करता है। विभिन्न प्रकार के समाज चार अवधारणात्मक प्रवर्गों में विभिन्न तरह की आपत्तियाँ रखते हैं उदाहरण के लिये अफ्रीका और एशिया तथा लैटिन अमेरिका के निर्धन भाग के निवासियों में अस्तित्ववादी कारण अधिक महत्वपूर्ण है। ब्रह्माण्डीय कारणों ने यूरोप में विशेष तौर पर पर्यावरणीय और वामपन्थी समूहों में अमेरिका के प्रति नफरत पैदा की है मुस्लिम विश्व के साथ यूरोप में भी सत्तावादी कारण अमेरिका

विरोधी भावनाओं के लिए जिम्मेदार है। विचार को परिभाषित करने की अमेरिका की शक्ति ने चीन, भारत और सामान्य रूप से मुस्लिम लोगों में अमेरिका के प्रति वृहद, पैमाने पर रोष पैदा किया है। सामूहिक रूप से चारों अवधारणात्मक भूमियाँ यह निश्चित कर देती है, कि अमेरिका के प्रति नफरत उतनी ही सर्वव्यापी है जिनकी कि स्वच्छ और ताजी हवा की इच्छा।

नफरत का प्रतिवाद विश्वास और सद्भावना है। वर्तमान समय की समस्या यह है कि शेष विश्व को अमेरिका में कोई विश्वास नहीं है। उसको अमेरिका की अपनी असीम शक्ति और उत्तरदायित्व का प्रयोग करने की योग्यता पर भी विश्वास नहीं है। अमेरिका अपने स्वार्थ के अलावा कोई सामान्य हित की बात पहचान सकेगा ऐसा विश्वास किसी को नहीं है। एक अतिशक्ति के रूप में सारी दुनिया को सैनिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से एक पैर पर खड़ा करने वाला अमेरिका विश्व के सभी राष्ट्रों के लिये एक वास्तविक समस्या है। इसकी दौलत और प्रचुरता शेष विश्व के साथ इसके संबंधों से आये हैं। अत: अमेरिका उस भूमण्डलीय व्यवस्था से जो उसकी जीवनशैली को धारण कर रही है में चयन और त्याग नहीं कर सकता। 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं'। ऐसा अंग्रेज उपनिवेश के उस असंतुष्ट भद्र पुरूष ने कहा था जिसने अमेरिकी क्रान्ति शुरू की थी उसी तर्क से शेष विश्व भी वही कह सकता है।

हमारा संतुलित और व्यवहारिक भविष्य नफरत से पार जाने में है। चूँकि अमेरिका वैश्विक नफरत का स्रोत और निशाना दोनों है अत: उसका ही यह दायित्व है कि वह इसे दूर करे।

पुस्तक का नाम – **व्हाई डू पीपुल हेट अमेरिका**

रचनाकार – **जियाउद्दीन सरदार**
मेरिल विन डेवीज

प्रकाशक – Dis Information Company Ltd.
163, IIIrd Avenue, Suite-108 Newyork (USA)

स्मृति-1 प्रो. कमला प्रसाद-एक दमदार आवाज

इन्दु श्रीवास्तव

यह सच है कि कोई ख़ास क़ीमती चीज़ हो या हुनरमंद इन्सान जब हमारे करीब होता है तो हम उसकी सही क़ीमत का अंदाज़ा नहीं लगा पाते। उससे दूर रहने पर उसकी ख़ूबियों का एहसास होता है।

ऐसे ही डॉ0 कमला प्रसाद जी हमारे बीच एक पारिवारिक सदस्य के रूप में थे। उनके जाने पर लगा कि यूं साफ़गोई से श्रोताओं और पाठकों पर प्रभाव छोड़ने वाला प्रखर वक्ता और सफ़ल संगठनकर्ता जाता रहा।

यूं तो कमला जी का मेरे पिता जी कवि रामप्रसाद जी से परिचय पुराना था पर मेरी उनसे मुलाकात 91-92 में रीवा में हुई। चूंकि मेरे पति उमेश जी रीवा वि0वि0 में उनके साथ थे इसलिए हमारी पहचान खास घरेलू संदर्भों में हुई। यदा-कदा गोष्ठियों में मुलाकात होती रहती थी। जब पहले-पहल उन्होंने मेरी कविताएं सुनी तो संज़ीदा हो गए। कवि दिनेश कुशवाह के पास सरककर धीरे से बोले 'क्या ये कविताएं वाकई इन्दु की हैं' और दिनेश जी का पूर्ण विश्वास के साथ सर हिलाकर कहना 'हां सर 101 परसेंट' कभी नहीं भूलता। हैरानी के साथ एक तारीफ़ का भाव या जो भीतर तक छू गया। सहजता से बोले ऐसे ही लिखती रहो।

वक्ता के रूप में मेरी उनसे भेंट सतना में एक व्याख्यान माला के दौरान हुई। विन्ध्यक्षेत्र के अधिकांश साहित्यकार थे, तब मैंने महसूस किया कि यूं किसी विषय का समग्रता से विश्लेषण कर लगातार दो घंटे बोलना और श्रोताओं को बांधे रखना आसान काम नहीं है।

अपने सतना-रीवा के चिर परिचित मार्ग से जब भी गुज़रते उनकी मित्र-मंडली और शार्गिदों की टोली उन्हें बीच में ही रोक कर कोई गोष्ठी रच देती और हमारी एक और शाम व्यस्त और मस्त हो जाती।

उनकी नियमित दिनचर्या व जीवन-शैली उनकी शानदार शख्सियत को और चमकदार बनाने में काफी हद तक मददगार थीं ये ताई जी यानि कि श्रीमती कमलाप्रसाद की सेवा और परिश्रम का नतीजा था कि उनकी सुगठित काया पर उम्र अपना असर छोड़ने में नाकामयाब रही। अपने सधे हुए रख-रखाव, रहन-सहन और परहेजी खान-पान वाला इन्सान कभी अति-विश्वास में धोखा खा जाता है। कमला जी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। छोटी मोटी तक़लीफ़ों को नज़रअंदाज़ करके लगातार गोष्ठियों और सेमीनारों में दूर दराज़ आते-जाते रहे। उन्हें शायद एहसास नहीं था कि ये उनकी बड़ी बीमारी का सिग्नल है।

कमला जी जब कैंसर की आखिरी स्टेज में थे तब मेरे साथ अति दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी। उमेश जी को अचानक अटैक आया और वे हमेशा के लिए हमें छोड़ कर चल दिए। इस अप्रत्याशित घटना से सब सद्में की हालत में थे। शोक संवेदनाओं का तांता लगा था, तभी एक फोन कमला जी का आया। जिसने मुझे भीतर तक हिला दिया। उसी दिन कीमो थेरपी से निकले थे कि उन्हें किसी ने हमारे घर की ख़बर दे दी।

मेरे दुख के आगे उन्हें अपनी तक़लीफ़ भूल गई। भरे गले से बोले देखो जब तक मैं हूं पूरी कोशिश करूंगा, तुम्हें कोई विभागीय परेशानी हो तो बताना मैं तुम्हारें साथ हूं। आगे बोले मेरी

बीमारी आखिरी दौर में है पर तुम्हारे दुख के आगे मैं अपना दुख भूल गया। यक़ीन जानिए मुझे पहली बार महसूस हुआ कि इन्सान का आत्मबल और खुद पर यक़ीन ही उसे मौत से लड़ने की ताकत और हिम्मत देता है।

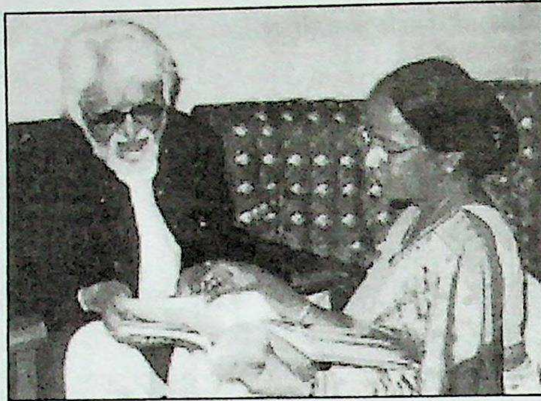
अचानक एक कवि की लाइने याद हो आईं

जो भी कर काम, कर सलीक़े से
जी सलीके से मर सलीक़े से
मैं उसे जान हँस के दे देता
मांगता वो अगर सलीक़े से

शायद उनके जीने का अलग अंदाज़ और सलीक़ा ही उनकी कामयाबी का सबब था। उनका जीवन एक बहुरंगी कोलाज था जिसमें हर चित्र और हर पहलू स्पष्ट और अर्थपूर्ण था। आज उन्हें हम अपने बीच न पा कर भी महसूस करते हैं और करते रहेंगे, उनके कहे हुए और किए हुए से सीख लेते रहेंगे। हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

स्मृति-2 स्मृतियों के झरोखों से-मकबूल फिदा हुसैन

प्रो0 चित्रलेखा सिंह



प्रो. चित्रलेखा सिंह स्व. एम.एफ. हुसैन के साथ

रात का अंधेरा हो अथवा भोर की पहली किरण, मुम्बई की सड़कों पर बड़ी सी सीढ़ी पर चढ़े, पूर्ण ऊर्जा के साथ चौड़े ब्रश से घात करते हुए या दिल्ली में तारपीन के तेल की शीशी में उंगलियों से उसे धारण करते हुए, अपने द्वारा चित्रित कार को एक तरफ रखकर पैदल ही अलमस्त से, सदैव कुछ सोचते हुए, तारपीन का तेल लेने जाते हुए कइयों ने उन्हें देखा होगा। तारपीन के तेल लेने जाते हुये उन्हें मेरे दिवंगत चाचा जी कमिश्नर राजेन्द्र मोहन गुप्ता ने देखा था और मुझे बताया था- चूंकि मैं अपने परिवार में कला से जुड़ी हूँ तो मेरे सब रिश्तेदार इस प्रकार की जानकारी समय-समय पर मुझे अवश्य देते रहते हैं- एक ने मुझे बताया एक बार वे जयपुर में रिक्शा में बैठकर बरसात में बाहर निकल गये हाथ में स्केच बुक लिये और वर्षा की पड़ने वाली बून्दों को कैद करते रहे sketch बुक में कहने लगे ''मैं प्रकृति की चित्रमय रचना को देखना चाहता हूँ शाश्वत! ऐसे चितेरे थे- मकबूल फ़िदा हुसैन। जिन्होंने सदैव रचना की, करते रहे, करते-करते चले गये। मुझे तो लगता है जहाँ भी होंगे उनकी तूलिका अब भी चल रही होगी, थम नहीं सकती, आदत जो पड़ गई थी।

मैंने उनकी कला को बचपन से फिल्मों के होर्डिगंस में देखा है कैसे एक जरा से stroke से दिलीप कुमार, मीनाकुमारी, नर्गिस, भारत भूषण का चरित्र बना लेते थे, ये बड़े-बड़े होर्डिगस उस समय मुझे बहुत प्रभावित करते थे विशेषकर सीढ़ी पर चढ़कर चित्रण करना, बाद में मैंने जब भी भित्ति चित्र बनाये, मचान पर चढ़कर या सीढ़ी पर, तो मुझे कभी कोई असुविधा नहीं हुई मैं सोचती थी जब हुसैन साहब चढ़ सकते हैं तो मैं क्यों नहीं? आज मैं अपने विद्यार्थियों को यही समझाती हूँ प्रत्येक वस्तु को ध्यान से देखो, सूक्ष्म अध्ययन करो मालूम नहीं कौन सी बात कहाँ आपके जीवन में एक नया मोड़ दे दे।

हुसैन साहब से मेरी मुलाकात तीन बार हुई, सर्वप्रथम ललित कला अकादमी लखनऊ द्वारा सुश्री अनुराधा गोयल के संरक्षण में एक चित्रकला कार्यशाला में उ0प्र0 के चुनिन्दा चित्रकारों को आमंत्रित किया गया था, सौभाग्यवश मैं भी आमंत्रित थी। इस कार्यशाला में समस्त चित्रकारों को

उत्तर प्रदेश के किसी भी पर्यटन स्थल का चित्रण करना था। मैंने शाम के समय 'बटेश्वर मन्दिर' का चित्रण किया था। मुझे अपने साथ एक चित्रकार को भी लखनऊ लाने की छूट थी- मैं अपने साथ आशुतोष पानीग्रही को लेकर गई-मुझे प्रसन्नता है कि आशुतोष को लेकर मैंने बहुत दूरदर्शिता का प्रमाण दिया। आशुतोष ने आगे चलकर भित्ति चित्रण गिनीज़ वर्ल्ड बुक में अपना नाम रौशन किया। ठीक समय पर हुसैन साहब आए। हम सब बहुत आह्लादित थे भारत को विश्वपटल पर स्थान दिलाने वाला चित्रकार जो आ रहा था। श्वेत बाल दाढ़ी, हाथ में बड़ी सी तूलिका, कुर्ता पाज़ामा, बन्द गले का अचकन, नंगे पैर कैम्प में आए। कार्यशाला मानक के अनुसार हम सब चित्रकारों में खाली कैनवास पर अपने अपने हस्ताक्षर किए। वे खूब प्रसन्न हो रहे थे सबके हस्ताक्षर देखकर हँसी मजाक भी चल रहा था, गम्भीरत से भावी चित्रकारों के तूलिका घात को भी परखा जा रहा था। उनके लिये चित्र बनाने के पूर्ण साधन किए गये थे पर उस दिन उन्होंने चित्र नहीं बनाया, उस वर्कशॉप में। कहने लगे आज तो मैं केवल कलाकारों से मिलने आया हूँ, उनसे बातें करूँगा, फोटो खिचवाऊँगा। उन दिनों मैं यू0जी0सी0 के मेजर प्रोजेक्ट' भारतीय चित्रकला के इतिहास' पर कार्य कर रही थी। उसमें 'मकबूल फिदा हुसैन' के बारे में मैने जो उनपर लिखा था उस लेख को उन्हें दिखाया (यह फाईल चित्र उसी समय का है) उनसे उस समय काफ़ी देर मेरी अंतरग वार्ता हुई मैंने पूछा आप यह तूलिका क्यों रखते हैं, कहाँ बनवाई इतनी बड़ी तूलिका! कहने लगे फौजी अपने हाथ में बन्दूक रखता है, किसान हल तो मैं चित्रकार अपनी पहचान तूलिका क्यों नहीं रखूँ। इसे मैंने एक बहुत बड़े कम्पनी से आर्डर देकर बनवाया है नंगे पैर चलने के बारे में जब मैंने पूछा तो कहने लगे। नंगे पैर चलने से एक तो मुझे तकलीफ सहन करने की शक्ति मिलती है, दूसरे जिनके पैरों में जूता-चप्पल नहीं होता उनके कष्ट का एहसास होता है, तीसरे ऊबड़-खाबड़, गर्म ठंडा में चलने पर पैरों में एक्वाप्रेशर होता है और पैरों के ज़रिए समस्त शरीर पर रक्त संचालित होता है जो मेरे सेहत के लिये बहुत फायदेमन्द है। एक और अंतरग वार्ता में उन्होंने मुझे बताया इस वर्कशॉप में आने से पूर्व मैं सुश्री मायावती जी से मिला उन्हीं के शब्द 'बड़ी सुन्दर औरत है, मैं उनका पोट्रेट अवश्य बनाऊँगा। सुबह ही उन्होंने सुश्री मायावती के आवास में एक हाथी का रेखा चित्र बनाया था जो उस दिन के अखबार में प्रकाशित भी हुआ था। मेरे चित्र को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी की तारीफ भी की थी यदि सरकार इस प्रकार की धरोहर के बारे में सोचेगी तो अवश्य ये इमारतें अमर रहेंगी।

इसके पश्चात दूसरी मुलाकात उनसे मेरी शायद 'धूमीमल आर्ट गैलरी, कनाट प्लेस, नई दिल्ली में जाते समय एक कॉफी टेबल पर हुई थी बड़े इत्मिनान से अकेले ही बैठे थे, भीड़-भाड़, शोर शराबा से दूर- तब मैंने उन्हें आगरा आने का निमंत्रण दिया था। उन्होंने कहा ऐसे तो आगरा आना मुश्किल है कोई बड़ा कार्यक्रम हो, कुछ कुछ यानि जैसा तो मैं अवश्य आऊँगा-तब मैंने उन्हें चाँदनी रात में नाव पर बैठकर ताज़महल को बनवाने की रूपरेखा दी थी। पीछे मेहताब बाग से चान्दनी रात में ताज़महल बनाने की तमन्ना उनके हृदय में ही रह गई यह कार्यक्रम हम करवा नहीं सके जिसका जीवन भर मुझे अफ़सोस रहेगा।

तीसरी मुलाकात मुम्बई में एक कला दीर्घा में हुई। वहाँ पर उनके केवल रेखा चित्रों का प्रदर्शन था। सशक्त रेखाएें, केवल दो रेखाओं में ही अपनी बात को कहना, चाहे वे घोड़ा, रिक्शा चालक, बैलगाड़ी, मजदूर और मज़दूरन, नंगे बदन दौड़ते बच्चे, बीमारी से कराहते मरीज़, थका हारा किसान, सबको अपना विषय बनाया था। केवल तीन वर्ष की उम्र में माँ को खोने का ग़म

उन्हें जीवन भर सालता रहा जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने मदर टेरेसा का चित्र बनाकर की। इन रेखाचित्रों को देखकर मैं दंग थी और यह भी शिक्षा ली अपनी प्रत्येक लाईन को सम्भाल कर रखो पता नहीं कब, कहाँ इसकी आवश्यकता पड़ जाये। हुसैन साहब ने बताया जल्द ही रेखाचित्रों पर मेरी पुस्तक विमोचित होने वाली है। मैंने कहा बहुत अच्छा है रेखाचित्रों के पुस्तक की अति आवश्यकता है। बाद में उन्होंने बड़े प्रेम से मेरे कैटलॉग पर अपने हस्ताक्षर किये।

भारत के पिकासो कहलाने वाले चित्रकार आज हम सबके मध्य नहीं हैं किंतु उनकी कला सदैव जीवित रहेगी वे भारत की मिट्टी से जुड़कर भी उतना भव्य कार्य करते थे जितना वे लन्दन के स्टूडियों में। लन्दन के स्टूडियों में चाहे कितनी भव्यता हो, मंहगे से मंहगें रंग कैनवास तूलिका हो पर उनके विषय हमेशा भारतीय होते थे- भारतीय महिलाओं का सौन्दर्य माधुरी दीक्षित, ऐश्वर्य राय, उनके विषय थे। होर्डिंग्स से जीवन की शुरूआत करने वाला फिल्मों से कैसे बच सकते थे उन्होंने कई फिल्में थ्रू द आईस ऑफ ए पेन्टर, गज़गामनी आदि बना डाली। रामायण, महाभारत को आत्मसात किया। मानवीय संवेदनाओं और माँ के वात्सल्य को चित्रित करने वाले आज हमारे मध्य नहीं हैं पर उनकी यादें सदैव याद रहेंगी। वे जहाँ भी रहें खुश रहें, आबाद रहें। मैं आज समस्त मानव परिवार की ओर से उन्हें मूक श्रद्धांजलि देती हूँ।

स्मृति-3

डॉ0 गिरिजाशंकर त्रिवेदी की कविताएं

परिचय -11 मई 1939 को उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद के ग्राम अनेई (बिल्हौर) में जन्में डॉ0 गिरिजा शंकर त्रिवेदी का हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज देहरादून के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे डॉ0 त्रिवेदी के 'इन्द्रालय', 'ज्योति रथ', 'उनको याद करें,' 'इन्द्रधनुष कसे बिजली को डोर' आदि महत्वपूर्ण कृतियां हैं। गिरिजाशंकर त्रिवेदी को दून रत्न, हिमगिरि गौरव, उत्तरांचल गौरव आदि कई महत्वपूर्ण सम्मानों से विभूषित किया गया।

डॉ0 गिरिजा शंकरजी का आसामयिक निधन 15 अप्रैल 2008 को हुआ।

डॉ0 त्रिवेदी को अभिनव मीमांसा की तरफ से विनम्र श्रद्धांजलि। इस क्रम में उनकी स्मृति में उनकी 5 कविताएं दी जा रही हैं।

---

(1)
बिखरी है चाँदनी

शिखरों को चूमती
घाटियों में झूमती
बिखरी है चाँदनी!

चिकनी मृदु केंचुल-सी, रेशमी सुहावनी
प्रेयसी के करतल की घुवनों-सी भावनी
झुकी-झुकी पलकों में सपनायी चाह-सी
संगम की रजत-फेन-लहरों सी पावनी

ताल पर, तमाल पर
तृन-वन, तरू-डाल पर
छितरी है चाँदनी।

झील बीच तिरती ज्यों बन्ध-मुक्त उर्वशी
साड़ी-सी नव यौवन-उर से फिसली, खसी
सरगम के पिंजरे का द्वार खोल रागिनी
स्वर्ग की विहंगिनी हो ज्यों धरा पे आ बसी

पकड़ रश्मि डोरी-सी
जनपद की छोरी-सी

उतरी है चांदनी
बिखरी है चांदनी!

(2)

मेघ संवरिया

बूंदों की झाड़ू से
झाड़ ले
गर्मी का कूड़ा
रे मेघ संवरिया!

फिर खुल कर
खिलने को हो रहा
सोकर जागे शिशु-सा
जंगल का मन,
हल्की-सी परस से
टपक गया
पके आक के पत्ते-सा
बासीपन
खेत की कलाई में
डाल दे
फसलों का चूड़ा
रे मेघ संवरिया!

सड़क का भींज कर
बह चलना, क्या कहना
ज्यों निचोड़ती हो पट
सद्यः स्नाता गोरी,
गंधवती पुरवा का
धीरे-धीरे बहना
फिल्मी लय गुनगुनाए
जैसे शहरी छोरी
निर्झर के फुलवा से
टांक दे
घाटी का जूड़ा
रे मेघ संवरिया!

(3)

मालिन रवि-रश्मि

पूरब के मधुवन की
मालिन रवि-रश्मि चली!

रेशम तन, सौरभ मन, ज्योति वसन, हेम बरन
पैरों में कलरव के पायल छुप छूम छनन

शिखरों को रांजती
घाटियों को मांजती
बुहारती गली-गली
मालिन रवि-रश्मि चली!

झीलों के अंग-अंग विकसे आलोक सुमन
उछल-उछल भाग चले झरनों के कनक-हिरन

रूप-रंग पलकों में
धूप-गंध अलकों में
अधरों पर कंज-कली
मालिन रवि-रश्मि चली!

निंदिया की डाल हिली, झरे शिथिल छली सपन,
सिमटी तम स्याह पर्त, चमके रज हीरक-क़न

संकट-सा दुर्निवार
ध्वस्त पस्त अंधकार
जीवन की ज्योति जली
मालिन रवि-रश्मि चली!

(4)

इस जीवित देश में (1)

इस जीवित देश में
पूजा होती है मृतकों की
अर्घ्य, पिंड, श्राद्ध, अक्षत, नैवेद्य, पुष्प
पाते हैं मरे हुए
तुम नाहक अनमने हो कलाकार!
तुम आग पर चलो
और कांटें को झेलो
जो बीते सहन करो, कुछ भी मत बोलो
यहाँ जीवित कलाकार की कोई नहीं सुनता है
हाँ, बाद मरने के
तूलिका, कलम, छेनी
यहाँ तक कि तबला कसने वाली हथौड़ी
और सितार बजाने का मिज़राब

उठाकर रखवा दिए जाते हैं
संग्रहालयों, लाखों की अलमारियों
और शो-केसों में,
ऊपर चिपका दिए जाते हैं
हेडिंग के आकर्षक-आकर्षक अक्षर
जिन्हें देखने को
देशी-विदेशी भीड़ें लग जाती हैं
काउण्टर पर बिकने की टिकटें चुक जाती हैं।

जीवित देश में (2)

इस जीवित देश में
जलते हुए दीपक की कोई क़ीमत नहीं
वह अकेला तूफ़ानी झटकों को सहता है,
और जब बुझ जाता
तब अन्धाकुप्प में
उसका ही दिवंगत उजियारा पुजता है,
यहाँ जब तक कोई जीता है
ज़हर ही पीता है
न कोई संवेदना,
न कोई पुरस्कार
दिया भी गया तो बदनामी या तिरस्कार
ऊपर उलझार दी जाती हैं बीमारियाँ,
चौतरफ़ा घेर दिए जाते हैं कँटीले तार
चुरा लिए जाते हैं पादत्राण, शिरस्त्राण
उघारे तन पर फूँक दी जाती है कौंच
राह पर बिछा दी जाती है कांच
फिर उसे चलने को मज़बूर किया जाता है
ताकि उसके पैर रक्त-रंजित हो जाएं
वह हो कोई भी डब्ल्यू, एक्स, वाई, जेड,
निराला या मुक्तिबोध,
मरने पर ही
आसमान में टँगवाए जाते हैं इश्तिहार
हवा में उड़वाए जाते हैं अख़बार
नाम के, कथा के, कृतित्व के
ग्लास-पर-ग्लास पानी पीकर
दिए जाते हैं भाषण

और उछाले जाते हैं पैम्फलेट व्यक्तित्व के
फिर पगलाई भीड़ नारे लगाती है,
मारक के ही हाथ स्मारक बनाते हैं
पार्कों-चौराहों पर स्टैच्यू लगाते हैं,
आँखों में घड़ियाली आँसू बहाते हैं
और उनके नाम पर
मार्गों-मुहल्लों के होते हैं नामकरण,
निकलती हैं डाक-टिकटें,
होता है सभी कुछ
लेकिन बाद मरने के,
हम तो सिर्फ़ मौत के प्रतीक्षा करते हैं
निकालने को विशेषांक
लिखने को आर्टिकिल,
संस्मरण।

(5)
निराला तुम जीते हो

जब किसी किसलयवदना लतिका को
देखता हूं तरू प्रिय के उर से मिली हुई,
अनुभव करता हूँ रजनीगंधा खिली हुई
झकझोरी जुही की कली
धृष्ट मलयानिल से
और सुबह-सुबह झरी हुई शेफाली को
तब मुझे लगता है
निराला तुम जीते हो!

उपेक्षा के घूरे पर उगा हुआ कुकुरमुत्ता,
कुरूपता की सीलन-सड़ांध का खजोहरा
लग्गी लिए भटकता बिल्लेसुर बकरिहा,
कुछ करने की आग से बुझता हुआ कुल्लीभाट,
रूग्ण, दीन औ' गँवार
झींगुर, बदलू लुकुआ
धोबी, तेली या कोई चतुरी चमार
बेगार ढोने वाले समाजी कहार
टूटे तरू की छुटी दीन लता-सी विधवा,
जल जलाती धूप में
पत्थर तोड़ती हुई

स्वेद-सिक्त मज़दूरिन,
झूम-झूम मृदु गरजते
अंबर में करते रोर मेघ को बुलाता
अकाल-कवलित
(राजस्थानी, बिहारी या) कोई
अधीर कृषक,
मलता हुआ दीन पेट एक हाथ
दूसरे से फटी पुरानी झोली को खोलता
बच्चे जीर्ण लिए साथ-भिक्षुक
पड़ते जब निगाह में
तब मुझे लगता है
निराला तुम जीते हो!

खाकर पत्तल में करते छेद
कान्यकुब्ज कुल के कुलांगार
रचकर राष्ट्रीय गीत
गर्दभ-मर्दन स्वर में
गा-गाकर बेचने वाले साहित्यकार,
घर की रीति-नीति और धर्म-कर्मों पर
भेदया जयसिंहों के
लुके-छिपे, खुल वार,
रेस्तराँ या कैफ़े में 'मास्को डायलाग्ज़'
गर्म-गर्म सिप के साथ बोलते 'गिडवानी',
रोड़ा और पत्थर
कहीं का कहीं से ले
दे मारने वाले टी0एस0 इलियट के
देशी तरफ़दार,
सबको निरखता हूं
और जब
लौटी हुई रचनाएँ लेकर उदास
बार-बार तकता हूं दिशाकाश
तब मुझे लगता है
निराला तुम जीते हो!
जब-जब घिरता है चतुर्दिक् घनांधकार
'धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध'
कह, मन का राघव
कर उठता चीत्कार

'मैं रण में गया हार'
फिर सहसा मौन बोल उठता यूँ-
'शक्ति की करो मौलिक कल्पना'
'योग्य-जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं,
गीता है गीता है
स्मरण करो बार-बार
जागो फिर एक बार'
तब मुझे लगता है
निराला तुम जीते हो!

सचमुच, तुम जीते हो
बिखरे हुए जीते हैं धरती पर तुम्हारे बिंब,
जीती ही नहीं,
लाखों को जिलाती हैं
तुम्हारी उत्प्रेक्षाएँ, उपमाएँ, उक्तियाँ
कालजयी काव्यकार!

बुझती नहीं है प्रतिभा की चिनगी भी
जिसके तुम 'कान्त रवि'
महाकवि,
कृतिकार अपनी कृतियों में रहता है
'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' कहती श्रुति
मृत्युन्जय कलाकार!
कभी तुम चुके नहीं,
कभी नहीं रीते हो
अब भी युग-दाह-दग्ध हालाहल पीते हो
जीते हो, जीते हो
निराला तुम जीते हो!

कहानी

यह कहानी नहीं है......
(कहानी: पंकज सुबीर)

पंकज सुबीर

वैसे तो इस कहानी.....क्षमा करें मैं तो पूर्व में ही लिख चुका हूँ कि ये कहानी नहीं है, तो फिर इसे कहा क्या जाए........? चलिये, इसे एक घटना कह लेते हैं। हाँ तो इस घटना का केन्द्रीय पात्र मैं ही हूँ? और कोई हो भी कैसे सकता है? अपने आपको केन्द्रीय पात्र रखने में जो आनन्द है वो किसी दूसरे को नायक बना देने में कहाँ है। हम सब इसी भ्रमजाल में तो जी रहे हैं कि हम ही नायक हैं। खैर तो फ़िलहाल तो यह तय हुआ कि घटना का केन्द्रीय पात्र मैं ही हूँ। मेरे समेत इस पूरी घटना में केवल चार ही पात्र हैं, ये आपकी सुविधा के लिए है, आपकी......?मतलब आप पढ़ने वालों की सुविधा के लिए। आपके पास आजकल समय ही कहाँ है पढ़ने-वढ़ने का। बड़ी मुश्किल से तो आपने थोड़ा सा समय निकाला है। उस थोड़े से समय में भी मैं आपको उलझा डालूं तो आगे से आप वह थोड़ा सा समय निकालना भी बन्द कर देंगे।

घटना के मेरे अलावा जो बाकी के तीन पात्र हैं, उनमें से दो पुरूष हैं और एक स्त्री है। हम चारों एक ही बिरादरी में अलग-अलग ऊँचाइयों पर विराजमान लोग हैं। शुरूआत करते हैं मुझसे। मैं क़ाग़ज़ पर अक्षरों से कुछ पहेलियाँ रचता हूँ और प्रयासरत हूँ कि मुझे भी लेखक मान लिया जाए। हालंकि मैं पूर्व में लिख चुका हूँ कि मैं भी उसी बिरादरी का हूँ लेकिन ये मेरा व्यक्तिगत विचार है, अभी बिरादरी का विचार तय होना बाकी है। मेरे अलावा जो बाकी के तीन हैं उनमें से एक स्त्री और एक पुरूष को पति-पत्नी जैसा ही कुछ कहा जा सकता है। सामाजिक मान्यताओं और परम्पराओं को मद्देनज़र रखा जाए तो इन दोनों में जो पत्नी नाम का पात्र है उस पात्र के गले में बाक़ायदा एक मंगलसूत्र है जो पति नाम के पात्र ने काफ़ी सारे साक्षियों के सामने ना जाने क्या सोच कर पहना दिया था। पत्नी नाम के पात्र ने अभी तक उसे पहन रखा है इसलिए कह सकते हैं कि वह पत्नी है।

अब इन दोनों पात्रों को नाम क्या दिया जाए ? ठहरिये-ठहरिये.....नाम देने के पहले मैं बता दूँ कि ये दोनों बाक़ायदा लेखक हैं। कई सारी साहित्यिक गोष्ठियों में दोनों मंच पर पास-पास की कुर्सियों पर बैठते हैं, और माना जाता है कि दोनों की सफलता में एक दूसरे का बड़ा योगदान है। ये 'माना जाता है' वाक्य किसके संदर्भ में लिखा जा रहा है वह कुछ स्पष्ट नहीं है। क्योंकि काफी लोगों का ऐसा मानना है कि दोनों में से लिखता कोई एक ही है, दोनों नहीं लिखते। कुछ लोगों का ऐसा भी मानना है कि दोनों ही नहीं लिखते। खैर फिर भी इस 'माना जाता है' को ही माना जाए। हाँ तो दोनों को नाम क्या दिया जाए। चलिए महिला और पुरूष से काम चलाते हैं। परेशान मत होइये, आप ये ही सोच रहे हैं ना कि पुरूष तो घटना में तीन हैं, फ़िर ये कैसे पता चलेगा कि किस पुरूष की बात हो रही है ? चिन्ता ना करें दूसरा वाला जो पुरूष पात्र है वो पुरूष है ही नहीं, फ़िर.....? दरअसल वो तो महापुरूष है। अब बाक़ी बचा मैं, तो मैं ही कौन सा पुरूष हूँ, मैं तो मैं हूँ, ना स्त्री ना पुरूष केवल मैं। तो तय हुआ कि घटना में जो लगभग पति-पत्नी हैं उनके नाम महिला और पुरूष है। मेरा नाम 'मैं' हैं।

अब चलें अपने गौ[illegible] की तरफ, कहानी का चौथा पात्र दरअसल में बिरादरी का मोटा वाला खंभा है, इसलिए मैंने कहा था कि वो पुरूष नहीं है, वो तो महापुरूष है। इस महापुरूष की एक सुदृष्टि किसी को भी बिरादरी में ले आती है, कुदृष्टि क्या कर सकती है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। खुद कुछ नहीं लिखते हैं, मगर चूंकि दूसरों के लिखे हुए की आलोचना, समालोचना, समीक्षा करते हैं, इसलिए महापुरूष हैं। इनकी कलम, देश-काल और परिस्थिति के अनुसार ही स्याही उगलती है। उगलना भी चाहिए, आख़िर को वो कोई छोटी मोटी कलम थोड़े ही है, वह तो महान बनाने वाली कलम है।

खैर अब घटना शुरू करने से पहले बस एक बात और, हम चारों का थोड़ा सा वर्णन। मैं स्वयं तो वैसे अशरीरी पात्र हूँ फ़िर भी बता देता हूँ कि मैं तीस वर्ष के लगभग का युवक हूँ। आँखों में मध्यवर्गीय लालच है इसलिए अवसर पाते ही महापुरूषों के चरणों को चाट चाट कर अपनी वफ़ादारी बताने का प्रयास करता रहता हूँ। पुरूष गंजा, तोंदियल और अनाकर्षक है, इसके विपरीत महिला वैसी ही है, जैसी उसे होना चाहिए या इस घटना की महिला पात्र को जैसा होना चाहिए। हमारे महापुरूष भी पूर्ण महापुरूष हैं, सुता हुआ इकहरा शरीर, झक सफ़ेद धोती कुर्ता पहनते हैं, कभी कभी प्याज़ी या मूंगिया कलर का कुर्ता भी पहनते हैं। थोड़ी मोटी फ्रेम का चश्मा लगाते हैं, मतलब कुल मिलाकर वैसे ही हैं जैसे कि महापुरूष होते हैं।

चलिए अब घटना को शुरू करते हैं। मैं जब उस शहर में उतरा तो यह तय था कि मुझे रात भी यहाँ रूकना है। महिला और पुरूष से मेरा रिश्ता ऐसा है कि मैं वहाँ रूक सकता हूँ और इस रूकने के पीछे मेरा वास्तविक मकसद है महिला और पुरूष के घर से दो घर छोड़कर रहने वाले महापुरूष के चरणों को चाट कर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाना। क्योंकि ऐसा करे हुए मुझे काफ़ी समय हो गया है। वैसे तो महापुरूष मुझे अच्छी तरह से जानते हैं किन्तु महापुरूषों की याददाश्त जरा कमजोर होती है, अगर बहुत दिनों तक कोई तलवे चाट के नहीं जाए तो ये उसको भूल भी जाते हैं।

दिन भर अपना काम निबटा कर जब मैं महिला के घर पहुँचा तो वो अकेली थी। मुझे देखते ही बोली 'अरे.....! आज कैसे रास्ता भूल गए भई......?'

'बस यहाँ कुछ काम से आया था, काम पूरा हुआ तो सीधा यहाँ आ गया कि आज रात यहाँ ही रूका जाए' मैंने मुस्कुराते हुए कहा। 'क्यों नहीं, क्यों नहीं.....? जाओं जाकर मुंह हाथ धोकर फ्रेश हो जाओ, मैं कुछ हल्का फुल्का खाने की व्यवस्था करती हूँ' महिला ने कहा।

मैं उस कमरे की ओर बढ़ गया जिसमें मैं अक्सर ठहरता रहता हूँ। चाय की चुस्कियों के बीच हमारे मध्य साहित्य, लेखन को लेकर चर्चाओं का लम्बा दौर चला। महिला का मानना था कि उसकी प्रतिभा का पूर्ण दोहन नहीं हो पा रहा है। मैं गौर से उसकी ओर देखता रहा। थोड़ी बुढ़ा ज़रूर गई है लेकिन अभी भी बहुत कुछ बाकी है। पुरूष नहीं आये हैं। महिला ने बताया कि वो अक्सर देर रात तक आते हैं, काफी व्यस्त रहते हैं। शाम गहरा गई या यूं कहिए कि रात ही हो गई। मुझे लगा कि अब मुझे अपना वास्तविक कार्य भी पूरा कर लेना चाहिए। मैंने कहा कि मैं ज़रा महापुरूष के घर तक होकर आता हूँ। 'ठीक है हो आओ, तब तक ये भी आ जाएंगे, फ़िर साथ ही खाना खाएगें' महिला ने उत्तर दिया।

मैं टहलता हुआ महापुरूष के घर पहुँचा। आप भले ही इसे ना मानें लेकिन सच यही है कि महापुरूष अकेले ही बैठे थे, होता है ऐसा, महापुरूष हमेशा ही भीड़ से घिरा रहे ऐसा कोई जरूरी तो नहीं। जाते ही मैंने साष्टांग से थोड़ा कम वाला प्रणाम किया। महापुरूष ने गद्‌गद् होते हुए कहा 'अरे बस बस.....कब आए ?' मैंने कहा 'बस चला ही आ रहा हूँ, सोचा सबसे पहले आपके दर्शन कर लूं काफी समय हो गया था।'

'और कैसा चल रहा है लेखन ?' महापुरूष का गद्‌गद्‌पन अभी भी बाकी है। मेरी चाटुकारिता, लिजलिजापन इसे और बढ़ा रहा है।

'कहां का लेखन ? बस यूं ही कुछ प्रयास कर लेता हूँ, वो भी जितना आपका मार्गदर्शन मिल जाए बस उतना ही।' मैंने अपने लिजलिजेपन को और बढ़ाते हुए कहा।

'अरे हाँ तुम्हारी एक कविता पढ़ी थी कहीं, क्या तो भी शीर्षक था। ठीक थी कविता, मगर तुमसे मैं इससे भी कहीं ज्यादा की उम्मीद रखता हूँ' ये उनकी आदत है, जैसे जैसे सामने वाले का लिजलिजापन बढ़ता है वे खुलना शुरू हो जाते हैं।

'आपने पढ़ी थी.....?' मेरे स्वर में इस तरह के भाव आ गए मानों उनका पढ़ लेना कोई अद्‌भुत घटना है। 'आप पहले भी कह चुके हैं कि और ज्यादा कुछ आप चाहते हैं, लेकिन क्या करूँ बहुत प्रयास करने के बाद भी यहाँ नहीं आ पाता। अब आपकी छाया नहीं मिलेगी तो भटकाव तो आएगा ही।' मैंने अपनी पूरी शक्ति अपने व्यक्तित्व को मालिक के पैरों में लोट रहे पालतू कुत्ते की तरह बनाने में लगा डाली।

'अरे नहीं......। तुम में ऊर्जा है, तुम कर सकते हो। इसीलिए तो तुमसे कहता हूँ और किसी से नहीं कहता।' महापुरूष के चेहरे पर एक सौम्य सी मुस्कुराहट भी आ गई, ठीक वैसी टीवी धारावहिक के रामायण के राम के चेहरे पर बिना वजह नज़र आती थी। मैंने अपने चेहरे पर उपकृत हो जाने वाले पूर्ण भाव लाए। साथ ही अपनी देहयष्टि में भी उपकार के बोझ से दब जाने की क्रिया की।

'और......? कहां ठहरे हो ?' महापुरूष ने हाथ की पुस्तक को सामने रखी टेबल पर रखते हुए कहा।

'बस यहीं पास में पुरूष के घर ठहरा हूँ' मैंने जानबूझ कर नहीं कहा कि महिला के घर ठहरा हूँ। हालांकि घर तो महिला पुरूष दोनों का ही हैं, मगर महिला कह देने से शायद महापुरूष बुरा मान सकते थे।

'अच्छा-अच्छा......वहाँ ठहरे हो, पुरूष थे क्या घर पर ?' महापुरूष ने पूछा।

'नहीं वे तो अभी आए नहीं थे, महिला ही थीं। कह रहीं थीं पुरूष तो देर रात तक आते हैं' मैने स्वर में अदब का समावेश करते हुए उत्तर दिया।

'हाँ भई.....अब तो बड़े लेखक हो गए हैं देर से नहीं आएँगे तो क्या करेंगे?' महापुरूष के स्वर में कुछ था जिसे मैं समझ नहीं पाया।

'खाना तो यहीं खाओगे ना ?' महापुरूष ने कुछ अधिकार वाले स्वर में मुझसे पूछा मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। लगता है आज देवता कुछ अधिक ही प्रसन्न है।

'जी सोच कर तो यहीं आया हूँ कि आज आपके साथ ही भोजन करूंगा' मैंने कुछ अटपटा सा उत्तर दिया।

'कितनी रोटी खाओगे ?' महापुरूष ने सीधा प्रश्न किया। इस तरह के प्रश्न को यदि किसी से सीधे पूछ लिया जाए तो मेरा दावा है कि कोई भी इसका तुरन्त उत्तर नहीं दे सकता।

'जी बस चार या पाँच' मैंने भी संक्षिप्त मगर उलझा सा उत्तर दे दिया।

'ठीक है, अन्दर जाकर खाना बनाने वाले लड़के से कह दो कि चार या पाँच रोटी ज्यादा बना लेगा। और हाँ उससे कह देना कि कुछ दे जाएगा' महापुरूष ने आदेशात्मक स्वर में कहा। 'कुछ' क्या है मेरी समझ में आ गया। खैर मैंने अन्दर जाकर उन्होंने जैसा कहा था वैसा ही कह आया। थोड़ी ही देर में महापुरूष के सामने वाली टेबल पर एक दो प्लेटों में आकर 'कुछ रखा गया। रोस्टेड चने, मूंगफली के दाने और उन पर पतला कतरा हुआ प्याज, धनिया सजाकर छिड़का गया था। जाहिर सी बात है, रात हो गई है।

'क्या लोगे ?' महापुरूष ने पूछा।

'जी बस जो आप लेंगे थोड़ी सी मैं भी लूंगा' मैंने स्वर में उनके प्रति सम्मान का पुट डालते हुए उत्तर दिया।

'ठीक है, वहाँ से वो ट्रे उठा लाओ' उन्होंने सामने की तरफ इशारा करते हुए कहा।

दीवार में अलमारी बनी हुई थी जिसमें भांति भांति की बोतलें सजी थीं। सामने टेबल पर रखी हुयी एक ट्रे में शाम की तैयारी की हुई रखी थी, मैंने उस ट्रे को लाकर उनके सामने की टेबल पर रख दिया।

लगभग एक घण्टे बाद महापुरूष सचमुच के महापुरूष हो गए। अब महापुरूष तो वही होता है ना जो सच बोलता है। तो हमारे महापुरूष ने भी सच बोलना शुरू कर दिया। ना जाने किस किसके बारे में क्या क्या बोलते रहे, शायद इसी को निर्वाण की स्थिति कहते हैं, जब पूर्ण सत्य का ज्ञान हो जाता है। हालांकि यह नहीं कहा जा सकता कि निर्वाण की स्थिति में था कौन? महापुरूष या मैं।

'हमारे यहाँ एक सहित्यिक आयोजन प्रतिवर्ष होता है। इस बार हम लोगां की इच्छा है कि आपका सम्मान उसमें किया जाए।' मैंने उपकार को उतारने का प्रयास करते हुए कहा।

'ये अच्छा तरीका है किसी बड़े साहित्यकार को फोकट में बुलाने का ? डेढ़ सौ रूपट्टी का शाल और पाँच रूपए का श्रीफल देकर सम्मान कर दो' महापुरूष ने व्यंग्य के स्वर में कहा। मैं सिटपिटा कर रह गया।

'पता है, हमारे देश में शाल केवल दो ही को उढ़ाई जाती हैं, या तो शव को, या साहित्यकार को। दोनों ही मामलों में हम एक शाल फैंककर दोनों के प्रति अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं।' एक घूण्ट पीकर गिलास नीचे रखते हुए महापुरूष ने कहा।

'सम्मान-वम्मान की तो अब मेरी कोई इच्छा रही नहीं। करना चाहो तो कर लेना, नहीं भी करोगे तो चल जाएगा। करोगे तो भी शाल तो मैं वहीं छोड़ दूंगा, दूकान वाले को वापस कर देना। तुम तो ये बताओं पत्रम् पुष्पम् का क्या हो सकता है।' महापुरूष ने मोटे लेंस के पीछे से झांकते हुए मुझसे कहा।

'जी जैसा आप आदेश करें हो जाएगा' मैंने उत्तर दिया। हालांकि उत्तर देते समय ज्ञात था कि अब ये व्यवस्था भी मुझे अपनी जेब से ही करनी है।

'ठीक है, पर हाँ ये खर्चा तम्हारे ऊपर तो नहीं आएगा ना। समिति वगैरह तो ठीक ठाक है ना ?' महापुरूष ने फिर प्रश्न किया।

'नहीं-नहीं सब व्यवस्था समिति को ही करना है' मैंने निर्वाण वाली अवस्था में भी झूठ बोलते हुए कहा। आधे घण्टे का समय और बीता। मैं नहीं जानता कि पूर्ण सत्य के ऊपर भी क्या कुछ होता है, मगर वो निर्वाण से ऊपर वाली कुछ स्थिति तो आ ही चुकी थी।

'चलो अब खाना खाया जाए' महापुरूष ने अंतिम घूँट लेकर ग्लास को नीचे रखते हुए कहा।

'महिला तुम्हारा इंतजार तो नहीं कर रहीं होगी' महापुरूष ने प्रश्न किया।

'जी कर तो रहीं होंगी' मैंने उत्तर दिया।

'जब तक खाना लगता है, तब तक बोल आओ कि तुम खाना यहाँ खा रहे हो' यह आदेश था।

'जी' मैंने कहा और उठ गया।

'सुनो' पीछे से महापुरूष का स्वर सुनकर मैं ठिठका 'उनसे कह देना मैं बुला रहा हूँ।'

'जी ठीक है' कह कर मैं बढ़ गया।

महिला अभी भी अकेली थी। मुझे देखा तो बोली 'कितनी देर कर दी, तुम्हारा इंतज़ार करते करते मैंने अभी खाना खाया है'।

'जी मैं तो खाना वहीं खा रहा हूँ, महापुरूष नहीं माने। उन्होंने आपको बुलाया है।' मैंने झिझकते हुए कहा।

'अरे अब मैं क्या करूंगी आकर ? रात भी काफी हो गई है।' महिला ने कुछ नाक-भौंह सिकोड़ते हुए कहा।

'जी ठीक है' कह कर मैं पलटा, अचानक महिला का स्वर सुनाई दिया 'अच्छा ठीक है कहना मैं आ रही हुँ' मैं उत्तर सुनकर बढ़ गया।

खाना लग चुका था महापुरूष मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। 'आओं' महापुरूष ने मुझे देखते हुए कहा। महिला के बारे में कुछ नहीं पूछा। शायद उन्हें पता है कि यदि उन्होंने बुलाया है तो महिला को आना ही है। खाने के दौरान ही महिला भी आ गई।' आईये' महापुरूष ने स्वागत करते हुए कहा। 'खाना लेंगी आप ?'

'नहीं नहीं, खाना तो मैं खा चुकी हूँ' महिला ने बैठते हुए उत्तर दिया।

'चलो ये पापड़ ले लो' महापुरुष ने पापड़ की प्लेट को बढ़ाते हुए कहा। महिला ने एक पापड़ उठा कर उसे कुतरना शुरू कर दिया।

'और कुछ लोगी?' महापुरुष ने कुछ देर पहले उपयोग की जा रही ट्रे की ओर इशारा करते हुए कहा।

'नहीं, बताया ना मैं खाना खा चुकी हूँ' महिला ने उत्तर दिया।

'उससे क्या होता है? थोड़ी बहुत........?' महापुरुष ने प्रश्न अधूरा छोड़ दिया, महिला ने कोई उत्तर नहीं दिया। महापुरुष ने मेरी तरफ देखकर ट्रे की ओर इशारा किया। मैंने ट्रे से में एक साफ ग्लास उठाया और एक छोटा सा 'कुछ' बनाकर महिला की ओर बढ़ा दिया। महिला उस 'कुछ' को सुड़कने लगी। सामने प्लेट में कुल नौ चपातियाँ आ गई थी। मैंने अपने लिए पांच चपातियाँ बोलीं थी अत: जाहिर है महापुरुष चार खाते हैं। हमने अपने अपने हिस्से की चार और पांच को निबटाया तब तक महिला भी ना ना करते हुए चार 'कुछ' सुड़क चुकी थी।

'और सुनाओ क्या चल रहा है?' खाने से फ़ारिग होकर एक साफ तौलिए से हाथ पौंछते हुए महिला की ओर देखकर महापुरुष ने पूछा।

'बस कुछ ख़ास नहीं, एक प्लॉट पर कुछ काम कर रही थी, मगर कुछ ठीक ठाक जम नहीं रहा है।' महिला ने उत्तर दिया।

'क्या सब्जैक्ट है।' महापुरुष ने आंखें मूंद कर कुर्सी से सर टिकाते हुए पूछा।

'आपको बताया तो था, विवाहोत्तर संबंधों पर एक लंबी कहानी लिख रही हूँ।' महिला ने उत्तर दिया।

'हूँ' आंखें, बंद किये हुए ही महापुरुष ने कहा। 'सब्जैक्ट कुछ घिसा पिटा हो चुका है। हर तीसरी कहानी में यही हो रहा है। उसमें नया क्या करने की गुंजाइश तुमने ढूंढी है।' महापुरुष ने उसी प्रकार आंखें बंद किये हुए पूछा।

'वही तो समझ नहीं पा रही हूँ कि क्या नया ट्रीटमेंट दिया जाए। पिछली बार आपको जो बताया था। अभी काम वहीं पर रुका हुआ है।' महिला ने उलझन भरे स्वर में कहा।

'कहानी का शीर्षक क्या है' महापुरुष ने पूछा।

'अपूर्णा' महिला ने उत्तर दिया।

'अच्छा है, बहुत अच्छा है, पूरी कहानी को व्यक्त कर रहा है। कहानी कितनी हो चुकी है?' महापुरुष की आंखें अभी भी बंद ही हैं।

'आधी हो चुकी है, मगर अब काफ़ी सारी उलझनें सामने आ रही हैं।' महिला ने कहा।

'वो तो आएंगी ही, आधी होना मतलब अंत होना शुरू हो रहा है और अंत में तो उलझनें आती ही हैं। दो ही तो बातें होती हैं शुरूआत और अंत, और बीच में होता है ये आधा, ना शुरूआत और न अंत। जहाँ शुरूआत आकर समाप्त होती है और जहाँ से अंत प्रारंभ होता है।' महापुरुष का स्वर मानों किसी कुएं में से आ रहा था।

'कभी कभी जब हम आधे तक पहुंचते हैं तो वहां पहुंच कर अंत के प्रारंभ होने की थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। बहुत पीड़ादायी होती है ये प्रतीक्षा।' महापुरुष के कहने के बाद कमरे में सन्नाटा फैल गया। 'तुम्हारी कहानी के साथ भी यही हो रहा है' कहते हुए महापुरुष ने आँखें खोलकर महिला की तरफ देखा।

'हाँ.....। शायद.....।' महिला ने उलझन भरे स्वर में कहा।

'शायद नहीं ऐसा ही है' महापुरुष ने कहा। 'तुमको नींद आ रही होगी शायद? फिर महापुरुष ने मेरी तरफ देखकर पूछा।

'हां बहुत थका हुआ हूँ, मुझे प्रश्न के तरीके से ही ज्ञात हो चुका था कि मुझे यही उत्तर देना है।

'ठीक है बाहर दीवान डला है, तुम जाकर सो जाओ। तुम्हारे कार्यक्रम के बारे में हम सुबह तफ़सील से बात करेंगे।' महापुरुष ने निर्णय सुनाते हुए कहा।

मैं उठकर बाहर जाने लगा, पीछे से महापुरुष का स्वर आया 'दरवाजा बाहर से उढ़का देना'। मैंने कमरे से बाहर आकर दरवाज़े को उढ़काया और दीवान पर आकर लेट गया। दिन भर की दौड़ धूप, यात्रा की थकान और उस पर रात्रि के बारह बज जाना, इन सबका सम्मिलित परिणाम ये हुआ कि आंखें बंद करते ही नींद लग गई। हालांकि यहाँ पर आपको आपत्ती हो सकती है कि ऐसी स्थिति मैं किसी को भी नींद कैसे आ सकती है मानव मन का उत्सुक स्वभाव उसे सोने कैसे दे सकता है। मगर चूंकि घटना मेरी है इसलिए मेरे पात्र मेरी मर्ज़ी से सोएंगे और जागेंगे। हकीक़त भी यही है कि मुझे लेटते ही नींद आ गई।

जब नींद खुली तो सूर्य निकलने के लगभग एक घंटा पूर्व वाली स्थिति थी, हल्का सा प्रकाश चारों ओर फैला हुआ था। जहां मैं सो रहा था वो जगह न कमरा थी, ना खुला हुआ था, उसे एक जालीदार बरामदा कह सकते हैं। प्यास काफी ज़ोर से लग रही थी। कुछ देर तक तो सहन करके लेटा रहा मगर जब सहन नहीं हुई तो उठ गया। दरवाज़े को धीरे से धकेला, वो रात को मैंने जिस तरह उढ़काया था उसी अवस्था में था। झिझकते हुए मैंने अंदर प्रवेश किया, कमरे में रखे हुए दीवान पर महापुरुष और महिला दोनों ही शांतिपूर्वक सो रहे थे, यहाँ पर शायद आप उम्मीद कर रहे होंगे कि मैं कुछ तफ़सील से वर्णन करूंगा, मगर मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूंगा। मैं केवल यही कहूंगा कि उस ओर देखे बिना ही मैं रसोई घर की ओर बढ़ गया। रसोईघर में जाकर मैंने दो तीन ग्लास पानी पिया, तीसरा ग्लास पी ही रहा था कि महापुरुष का स्वर सुनायी दिया 'एक ग्लास पानी भरकर यहां भी रख जाना। ध्यान दें कि वाक्य में 'रख जाना' का प्रयोग हुआ है 'दे जाना' का नहीं। मैं एक ग्लास पानी भरकर कमरे में आया। कमरा पूर्ववत ही था मानों यहाँ से पानी मांगने वाली आवाज़ आई ही नहीं हो। महापुरुष और महिला उसी प्रकार शांतिपूर्वक सो रहे थे। मैंने ग्लास को टेबल पर रखा और बाहर की ओर बढ़ा। 'सुबह घूमने की आदत हो तो घूम आओ, बाहर से दरवाजा लगा जाना' पीछे से फिर आवाज़ आई।

बाहर आकर मैंने दरवाज़ा लगा दिया, घूमने की वैसे तो आदत नहीं है पर यह तो तय था कि अब नींद नहीं आएगी इसलिए बाहर निकल पड़ा।

चारों तरफ सुबह होने की तैयारी चल रही थी। वैसे इस घटना को यहीं खत्म किया जा सकता था क्योंकि लग यही रहा है कि घटना और महिला की अधूरी कहानी अपूर्णा, दोनों ही समाप्त हो चुके हैं, मगर नहीं, अभी हमारा एक पात्र तो घटना में आया ही नहीं है। जिक्र से क्या होता है पात्र को तो सशरीर उपस्थित होना पड़ता है।

कुछ देर तक में फ़िज़ूल में ही इधर-उधर टहलता रहा कि अचानक मुझे पुरुष का ख्याल आया, उसके बारे में सोचता हुआ मैं उनके घर की ओर बढ़ा। पुरुष बाहर बरामदे में ही मिल गए

केवल लुंगी और बनियान पहने बैठे थे। चाय पीते हुए अखबार पढ़ रहे थे। मुझे देखते ही बोले 'अरे.....! सुबह सुबह कहाँ से चले आ रहे हो भाई?'

'सुबह सुबह नहीं कल का आया हूँ, रात को उधर कुछ साहित्यिक चर्चा चल रही थी इसलिए वहीं रुक गया था' मैंने उत्तर दिया।

'अच्छा....। हाँ उधर की गोष्ठियाँ तो रात भर ही चलती हैं' पुरूष ने कुछ विचित्र स्वर में कहा।

'चाय पिओगे?' पुरुष ने पूछा।

'नहीं पीने का सवाल ही नहीं है' मैंने भी बेतकल्लुफ़ी से उत्तर दिया।

'तुम बैठो मैं बना कर लाता हूँ' कहते हुए पुरुष उठे और अंदर की ओर बढ़ गए। एक ग्लास पानी पीने की इच्छा में मैं भी पीछे पीछे चल दिया। रास्ते में मैंने देखा कि पुरुष के बेडरूम का दरवाजा आधा खुला हुआ है और अंदर पलंग पर चादर से ढका हुआ एक मानव शरीर सो रहा है। चादर पूरी तरह ढकी थी इसलिए समझना मुश्किल था कि सोने वाला पुरुष है या स्त्री। चादर उठाकर देखा नहीं जा सकता था। हालांकि मैं उठाकर देख भी लेता पर पूर्व में कह चुका हूँ कि कहानी में केवल चार पात्र हैं, इसलिए अब नहीं उठा सकता। ख़ैर यह आपको समझना है कि सोने वाला कौन है। वहीं खड़े खड़े मैंने रसोई की ओर देखा जहाँ पुरुष चाय बना रहे थे, मुझे लगा पुरुष की लुंगी सफेद झक धोती में बदल गई है। उनकी बनियान, मोटी खादी वाले प्याज़ी कुरते में बदल गई, आंखों पर मोटी फ्रेम का चश्मा आ गया है। मैं धीरे से बुदबुदाया 'एक और महापुरुष' सुबह के सन्नाटे में मेरा बुदबुदाना पुरुष तक पहुंच गया, हालांकि अस्पष्ट पहुंचा इसलिए बोले 'कुछ चाहिए क्या?' मैंने कहा 'हां पानी चाहिए, मैं ले लेता हूँ' कह कर अंदर से पानी का ग्लास भरकर मैं बाहर आकर बैठ गया। मेरे हिसाब से घटना समाप्त हो चुकी है आपका क्या मानना है।

माँझी

उमेश चन्द्र शर्मा

आँधी और तूफान तिसपर भयानक बारिश ने नाँव को डाँवाडोल कर रखा था। यात्री इस भयानक मंजर को देख अपने आराध्य की प्रार्थना कर रहे थे। मेवा मल्लाह यात्रियों के खौफजदा चेहरों को देखकर विचलित हो रहा था। वह उन्हें ढाढ़स भी बंधा रहा। जहाँ नाव में बैठे बड़े बड़े मूँछों वाले मर्दों की धोती गीली हो चली थी वहीं ऐसी स्थिति में भी नाव पर बैठी मुकुरी के चेहरे पर भय का नामो निशान नहीं था, जबकि शेष यात्री किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो चले थे। 10 वर्ष की मुकुरी मेवा मल्लाह की एक मात्र सन्तान थी। वह अपने पिता की छोटे से डन्डे से सहायता कर रही थी।

अन्तत: मेवा मल्लाह का परिश्रम रंग लाया। आँधी और तूफान और भयानक बारिश उस मेहनतकश मल्लाह के परिश्रम के समक्ष नतमस्तक हो गयी और हार मान ली। नाव कठिनता से धीरे-धीरे किनारे पहुँच गयी थी। यात्रियों ने ईश्वर और विशेषकर मेवा मल्लाह को धन्यवाद दिया। यात्रियों ने मेवा को किराये के अलावा ईनामों से लाद दिया। आज यात्रियों के लिए मेवा मल्लाह का महत्व गजग्राह की लड़ाई में गज के उद्धारक विष्णु भगवान से कम नहीं था।

मेवा मल्लाह का तीन प्राणियों का परिवार था। मेवा, उसकी पत्नी और एक मात्र पुत्री सन्तान मुकुरी। मेवा का खानदानी पेशा नाव चलाकर आजीविका चलाना था। अगल बगल के पच्चीसों गाँवों में मेवा मल्लाह का एक मात्र परिवार मल्लाह था। उसके खानदान के लोग सैकड़ों वर्षों से घाट पर नाविक का कार्य करते चले आ रहे थे। यह संयोग ही था कि मेवा के खानदान में सर्वदा से एक ही पुत्र सन्तान उत्पन्न होता था तथा उसी से वंश बढ़ता चला आ रहा था। मेवा कभी मस्ती में होता तो महुए की दारू चढ़ाकर चिलम खीचते डींगे हाँकने लगता तथा कहता कि वह उस मल्लाह का वंशज है जिसने कभी भगवान राम को नदी पार करवाया था।

मेवा को एक दुख सालता रहता था कि उसको कोई पुत्र सन्तान नहीं हुआ। मुकुरी को देखकर वह कभी कभी मायूस हो जाता और ईश्वर से प्रार्थना करता कि भगवान उसको एक पुत्र दे दे परन्तु भगवान ने उसकी यह प्रार्थना नहीं सुनी। मेवा यह सोचकर दुखी रहता था कि उसके बाद उसके पूर्वजीय पेशे को कौन करेगा। बेटी मुकुरी की तो शादी हो जायेगी और वह ससुराल चली जायेगी। उसके मरने के बाद क्या होगा। मेवा कभी-कभी शून्य में घूरते-घूरते मुकुरी को एकटक देखता रहता और सोचता कि काश भगवान ने मुकुरी को लड़का बनाया होता। वह एकान्त में ईश्वर से प्रार्थना करता कि भगवान मुझे एक लड़का दे दो। गंगा मइया से भी यही प्रार्थना करता था कि डूबते वंश को बचाने के लिए एक लड़का दे दे। वह सोचता कि उसने तो कभी कोई पाप नहीं किया। गंगा मइया में डूबते हुए कितनी जाने बचायी है। फिर यह परिस्थिति कैसे उत्पन्न हो गयी।

समय बीतता गया और एक समय ऐसा आया जबकि उसकी पत्नी सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य हो गयी। महीनों वह भाव शून्य रहा और जीवन के प्रति निराश हो गया। दो चार दिन वह घाट पर नहीं गया तो चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच गयी। लोगों का शहर आना जाना बन्द

हो गया। नदी पर पुल तो था नहीं। शहर आने जाने का एक मात्र [illegible] देहात के कई गांवों का माध्यम था। अन्य कोई मल्लाह भी उस गाँव में नहीं था। मेवा मल्लाह के घर मेला लगने लगा। मान मनौव्वल का सिलसिला चलता रहा। लोगों ने सोचा कि मेवा किराया बढ़ाना चाहता है लोगों ने स्वयं किराया बढ़ा दिया और उससे निवेदन किया प्रति व्यक्ति किराया पचास पैसे बढ़ाकर दिया जायेगा। मेवा को इससे कोई सरोकार नहीं था। उसे दुख था तो मात्र इतना कि उसके दुख को किसी ने नहीं समझा। मेवा दो चार दिन के उपरान्त सामान्य हो गया तथा उसने ईश्वर की इच्छा मानकर पतवार थाम लिया। गाँव की दिनचर्या सामान्य रूप से चलने लगी।

इधर एक परिवर्तन यह हुआ कि मुकुरी जो लगभग 10 वर्ष की हो चुकी थी अपने पिता का खाना पहुँचाने घाट तक जाने लगी थी। मुकुरी का बचपन से ही नदी से नाता था। मुकुरी तैरना भी अच्छा जानती थी। एक दिन जब वह घाट पर मेवा के लिए भोजन लेकर मेवा के उस पार से आने का इन्तजार कर रही थी तो अचानक हवा के झोकें ने उसके दुपट्टे को उड़ा कर नदी में बहा दिया। मुकुरी को उस दुपट्टे से अत्यन्त लगाव था जो अभी हाल ही में दशहरे के मेले में खरीदा गया था। मुकुरी उस दुपट्टे को पकड़ने के लिए नदी में कूद गयी। नदी उफान पर थी और दुपट्टा बहता जा रहा था परन्तु मुकुरी ने हार नहीं मानी और दुपट्टे के पीछे तैरती रही। उस तरफ से मेवा नाव और यात्रियों को लेकर आ रहा था। जब उसने दूर से मुकुरी को नदी में दुपट्टे के पीछे तैरते हुए नदी के गहरे भाग की तरफ जाते हुए देखा तो वह चिल्लाकर मुकुरी को रोकने की कोशिश करने लगा। यात्रीगण भी चिल्लाकर मुकुरी को रोकने लगें। तब तक मुकुरी दुपट्टे तक पहुँच चुकी थी और अब वह लहरों के थपेड़े खाती हुई और उनको पटकनी देती हुयी वापस नदी के घाट पर लौट रही थी।

घाट पर लौटते ही मेवा ने मुकुरी को बाँहों में भर लिया। यात्रीगण मुकुरी के दुस्साहस की प्रशंसा कर रहे थे। मुनीम जी ने मेवा को चपत लगाते हुए कहा कि मेवा तुम तो व्यर्थ ही बेटे के लिए परेशान रहते हो तुम्हारी मुकुरी तो बड़ों बड़ों के कान काटने वाली है। तुम्हारी मुकुरी किसी बेटे से कम थोड़े ही है। यात्रीगण के चले जाने के बाद मेवा ने मुकुरी को गोद में बिठाकर खूब प्यार किया। आज उसने जाना कि उसकी मुकुरी किसी बेटे से कम नहीं है। उफनती नदी का सीना चीरकर जिस बहादुरी से मुकुरी वापस घाट तक बड़ी आसानी से वापस पहुँच गयी थी वैसा तो वह जवानी में भी नहीं कर पाता था। उस दिन से मेवा मुकुरी को अपने साथ ही नाव पर रखने लगा। जब कभी मेवा को आराम करना होता तो वह मुकुरी को चप्पू थमा देता। अब उसे लगता कि वह व्यर्थ ही बेटे के न होने के संबंध में चिन्तित रहता था। मुकुरी की लगन और निष्ठा देखकर अब उसे बेटे के न होने का गम खत्म हो चला था।

शनैः शनैः समय बीतता गया। मुकुरी जवान हो गयी। मेवा मुकुरी के हाथ पीले करने की सोचने लगा। अब उसे मुकुरी का नाव पर मल्लाह के रूप में जाना अच्छा नहीं लगता था। उसे महसूस होता था कि जवान यात्री मुकुरी में दिलचस्पी लेने लगें हैं। परन्तु मुकुरी इन सबसे बेखबर थीं उसे केवल अपने काम से काम होता। मेवा को अब पुनः बेटे के न होने का गम सालने लगा। उसे लगता था कि जब मुकुरी की शादी हो जायेगी और मुकुरी अपने ससुराल चली जायेगी तथा वह बूढ़ा हो जायेगा तो क्या होगा। उसकी वंश परम्परा कैसे चलेगी। ऐसा नहीं है कि मुकुरी को अपने पिता की इस चिन्ता का ज्ञान नहीं था। वह भी अपने पिता की इस चिन्ता से वाकिफ थी और अक्सर अपनी माँ से शादी करने वाली बात का विरोध करती।

माँ उसे समझाती थी कि प्रत्येक लड़की की शादी होती है और उसे ससुराल जाना होता है। शादी के बाद ससुराल ही उसका घर होता है तथा लड़की का मायके एवं मायके के कारोबार से कोई संबंध सरोकार नहीं रह जाता। परन्तु मुकुरी इसे मानने को तैयार नहीं होती।

अन्ततः एक दिन ऐसा आ ही गया जब मुकुरी के घर पर शहनाइयाँ बजने लगी। मंगल गीत होने लगे और मुकुरी को हल्दी का उबटन लगने लगा। मुकुरी की अनिच्छा को किसी ने ध्यान नहीं दिया। वह अपने बूढ़े माँ बाप और अपने नाव और घाट को छोड़कर जाना नहीं चाहती थी परन्तु सिसकियों के बीच उसकी शादी और बिदाई हो गयी। मेवा का घर सूना हो गया। नाव और घाट वीरान से हो गये। मेवा की बीबी को अब स्वयं भोजन पहुँचाने घाट पर जाना पड़ता था। दूर से मेवा को लगता कि मुकुरी आ रही है परन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं था। मेवा को लगता कि मुकुरी के जाने के गम में नदी की लहरें, घाट एवं नाव विकल हो गये हैं इसीलिए लहरें बारम्बार अपना सर किनारों पर पटकती है और ऊँचा उठकर मेवा से पूँछती है कि तुमने हमारी मुकुरी को क्यों हमसे दूर कर दिया। मेवा कोई जवाब नहीं दे पाता।

वक्त ने शनैः शनैः मेवा को बूढ़ा कर दिया था अब उसको नाव चलाना दुष्कर प्रतीत होने लगा था। मेवा की उम्र ऐसी थी कि उसको इस समय किन्हीं बलिष्ठ हाथों के सहारे की जरूरत थी और उसकी पत्नी को भी।

उधर मुकुरी ससुराल में शरीर से तो उपस्थित रहती थी परन्तु मन से वहाँ नदारद रहती थी। खाना बनाते समय अथवा घर का कोई कार्य करते समय उसका मन मायके, घाट और नाव पर होता था। उसका मन चप्पू बनकर उसके शरीर रूपी नाव को हाँकता रहता था। एक दिन उसके गाँव के बंशी काका उसकी ससुराल आये। बंशी काका से ज्ञात हुआ कि उसके बाबूजी अब कृशकाय हो गये हैं तथा अक्सर बीमार रहते है और बड़ी मुश्किल से नाव हांक पाते हैं। उसकी माँ का स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता है। मुकुरी एक बंधी गाय की भाँति हो गयी थी जो प्राय पगहे को तुड़ाकर अपने पुराने घर को भाग जाना चाहती थी। बंशी काका तो चले गये परन्तु मुकुरी की स्थिति पिंजरे में कैद पंछी की भाँति हो गयी जो पिंजरे के खुलने की तलाश में हो और मौका पाते ही उड़कर अपने कोटर में छिप जाना चाहता हो। मुकुरी को ससुराल, पति और शादी का रिश्ता नागपाश की भाँति और बेमानी लगने लगा था जिससे छुटकारा पाना ही उसने जीवन का ध्येय बना लिया। अन्ततः मुकुरी ने एक दिन ससुराल से महाभिनिष्क्रमण करने की ठानी। उसे लगा कि गंगा मईया बुला रही है और वह गंगा मईया के बगैर जीवित नहीं रह सकती। सामाजिक बन्धनों को तोड़े बगैर वह गंगा मईया की सेवा नहीं कर सकती थी और रात्रि में उसने ससुराल की देहरी लाँघ दी जिसको न लाँघने की शिक्षा उसके माँ बाप और विवाह के बन्धन ने दिया था।

भागती हुई मुकुरी अपने गाँव पहुँची परन्तु घर न जाकर वह गंगा मईया के आगोश में समाने को व्याकुल हो गयी। घाट पर पहुँचकर उसने देखा कि नाव घाट पर खूँटे से बंधी हुई है नाव का रंग रोगन खराब हो चला था तथा वह उसके माता पिता की भाँति बूढ़ी नजर आ रही थी। वही नाव जो उसके बचपन की साथी थी। जिसके गोद में मुकुरी उछली कूदी और खेली थी जिसने उसे हजारों बार इस पार से उस पार किया था; जिसने लोगों का भार ढोते ढोते खुद को बूढ़ा बना दिया था। मुकुरी नाव में बैठ गयी और उसने गंगा मईया को अपने हाथों से छुआ तो उसके रास्ते की सारी थकान समाप्त हो गयी। अभी भोर होने में समय था। मुकुरी नाव में ही सो गयी।

भोर होने पर भी उसकी निद्रा नहीं टूटी। उसने सपने में देखा कि वह नाव खे रही है, गंगा मईया एक नारी का रूप धर कर उसे दुलरा रही हैं और उलाहना दे रही है कि तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी थी। तभी अचानक हलचल से उसका स्वप्न भंग हो गया। उसने देखा कि धुधंलके में एक कृशकाय व्यक्ति नाव को खोल रहा है। कौन होगा? सोचते ही उसने अपने बाबू जी को देखा जो कितने कृशकाय हो गये थे। मेवा ने जब बेटी को देखा तो हैरत में पड़ गया। बाप बेटी एक दूसरे से लिपट गये। बाप ने बेटी को इस तरह भागकर आने की उलाहना दिया और बेटी को घर लाया। माँ ने भी उसे उलाहना दिया और ससुराल से दामाद को बुलाकर मुकुरी को वापस भेजने की सलाह दिया परन्तु मुकुरी के मन की बात केवल मुकुरी ही जानती थी माँ और पिता के कृशकाय शरीर को देखकर मुकुरी ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अब वह ससुराल नहीं जायेगी और एक बेटे का कर्तव्य निभायेगी।

मेवा ने ससुराल से दामाद और समधी को बुलाया। मुकुरी के ससुराल वाले मुकुरी के इस तरह अनायास और अचानक चले आने से अत्यधिक रूष्ट थे परन्तु मेवा के मान और मनौव्वल से वे लोग मुकुरी को ले जाने के लिए राजी हो गये थे परन्तु मुकुरी जाने को तैयार न हुई। मुकुरी ने शर्त रखी कि यदि उसका पति उसके मायके में घर जवाई बनकर रहने को तैयार हो तो वह उसके साथ बतौर पत्नी रहने को तैयार है अन्यथा नहीं। मुकुरी के श्वसुर ने इसे अपनी तौहीन माना और अन्ततः मुकुरी का ससुराल से रिश्ता समाप्त हो गया।

मुकुरी ने विवाह के पूर्व की दिनचर्या अपना ली। माँ अशक्त हो चली थी। वह माँ की सेवा करती, खाना पकाती, और खाना लेकर घाट पर चली जाती। बापू को खाना खिलाती और वापस घर चली आती। समय ने किसको छोड़ा है। मुकुरी की माँ रुग्ण होकर चारपाई पकड़ ली थी। रोग समझ में नहीं आता था परन्तु मुकुरी की माँ को मुकुरी का ससुराल छोड़कर आने का गम खाये जा रहा था। इसकी परिणति अन्ततः मुकुरी की माँ की मृत्यु के रूप में हुई।

पत्नी की मृत्यु ने मेवा को तोड़कर रख दिया था। पत्नी की मृत्यु और मुकुरी का ससुराल से नाता तोड़ने ने मेवा को भी मृत्यु पथ पर धकेल दिया था। मेवा के हाथ और पैर लड़खड़ाने लगे थे। नाव खेना अब उसके बस की बात नहीं रह गयी थी। मेवा कातर आँख से मुकुरी को देखता था जो उसकी सेवा सुश्रुषा में जुटी हुई थी। मुकुरी खाना बनाती और उसकी सेवा करती थी। घाट पर नाव बंधी की बंधी रह गयी। लोगों का आना जाना बन्द हो गया था। पच्चीसों गांव की जनता का शहर से आवागम का माध्यम समाप्त हो गया था। नये जमाने में लोगों का शहर आना जाना अत्यधिक बढ़ गया था। जनता नदी पर पुल की माँग करते हुई आन्दोलन पर उतर आयी थी। शासन ने जनता की माँग को जायज मानते हुए नदी पर पुल बनाने की योजना स्वीकृत कर दी थी।

मुकुरी को शासन की यह योजना स्वीकार्य न थी। घर पर मेवा अपने मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा था तभी उसने देखा कि उसके सिरहाने एक लड़का खड़ा है। मेवा ने आँखे खोलकर उसे पहचानने का प्रयास किया परन्तु पहचान न सका। उसे लगा कि मुकुरी से मिलते जुलते चेहरे का लड़का आकर खड़ा हो गया है। मुकुरी मेवा के शरीर पर गिरकर रोने लगी। मेवा ने देखा कि मुकुरी ने अपने केशों को काटकर लड़कों जैसे कर दिये हैं। उसने स्त्रियोचित वस्त्रों का परित्याग करके मेवा के मर्दाने वस्त्रों को पहने रखा था। उसे लगा कि वह पुत्र विहीन नहीं है। उसका जवान बेटा

उसके सामने खड़ा है। मेवा का मन आह्लादित हो उठा। उसने उठकर मुकुरी को सीने से भींच लिया। मेवा और मुकुरी दोनों की आँखों से झर झर आँसू बह रहे थे। मेवा ने सन्तोष की सांस ली। उसकी नाव का खेवनहार जो उसे मिल गया था। मेवा का शरीर अचानक निष्प्राण होकर चारपाई पर जा लगा। मुकुरी चीत्कार कर उठी।

अब मुकुरी सारे बन्धनों से मुक्त हो गयी थी। माँ और पिता के गोलोकवासी होने के उपरान्त और ससुराल से सभी नाते तोड़ लेने के उपरान्त मुकुरी ने अपना नाता बाप की पुरानी धुरानी नाव और गंगा मइया से जोड़ लिया था। मेवा की जगह मुकुरी ने ले ली थी। भोर में मुकुरी अपनी नाव लिये घाट पर खड़ी मिलती और रात होने तक यात्रियों को इस पार से उस पार तक ले आती जाती रहती। जाड़ा हो गर्मी हो या बरसात देश के सच्चे सिपाही की तरह मुकुरी अपने काम को अंजाम दे रही थी। किसी को यह आभास नहीं होता था कि मेवा नहीं रहा। बड़े बुजुर्ग कहते कि मेवा की आत्मा को यह देख कर सन्तोष हो रहा होगा कि उसकी बेटी ने अपने पुश्तैनी धन्धे को कितनी बखूबी संभाल लिया था।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में कई योजनाएं प्रारम्भ कर दी थी। शासन ने स्वीकृति के अनुसार पुल बनाना प्रारम्भ कर दिया था। मुकुरी जब यात्रियों को ढो चुकी होती तो गौर से उस तरफ देखती जहाँ सैकड़ों की संख्या में इन्जीनियर और हजारों मजदूर पुल बनाने के काम में जुटे हुए थे। नदी की अतुलनीय गहराइयों में भारी भरकम खम्भे बनाये जा रहे थे और खम्भों पर लोहे की छड़ों और राड से कंक्रीट बालू और सीमेण्ट से बनता पुल धीरे-धीरे नदी को नापता जा रहा था। मुकुरी अपनी टूटी फूटी पुरानी धुरानी नाव से बनते हुए पुल के पास पहुँचती और उसे घूरती रहती। उसको लगने लगा था कि अब उसकी और उसके नाव की कोई जरूरत नये जमाने को नहीं रह जायेगी। नाव पर बैठने वाले यात्री प्रायः नये पुल के बारे में बातें करते रहते थे। लोग चाहते थे कि जल्दी से जल्दी पुल बनकर तैयार हो ताकि वे लोग शहर से जुड़कर तरक्की कर सके और रात में भी कृत्रिम रोशनी में नहा सके। अब लोगों को मुकुरी की नाव में मजा नहीं आता था। लोग चाहते थे कि पुल बनकर तैयार हो और वे लोग सर्र-सर्र करते साईकिल, स्कूटर, मोटरसाईकिल और बस से घर से शहर और शहर से घर की दूरी नाप सकें। मुकुरी को लगता कि लोग कितने एहसान फरामोश हैं मुकुरी को लगता था कि अब उसकी और उसके नाव की प्रांसगिकता समाप्त हो गयी है।

अन्ततः एक दिन आ गया जब पुल बनकर तैयार हो गया। मुख्यमन्त्री जी ने आकर पुल का उद्घाटन किया। मुख्यमन्त्री जी ने नारियल फोड़ा और फीता काटा और आला हाकिमान और पच्चीसों गाँवों की जनता जुटी हुई थी। जन जन के मन में उल्लास के भाव थे। मुख्यमन्त्री जी के काफिले ने पुल से नदी को पार किया। और पुल आवागमन के लिए खोल दिया गया। घाट पर अंधेरा था जहाँ कभी चप्पू की आवाज और लालटेन की रोशनी लोगों के मन में उत्साह और प्रकाश भर देते थे। घाट के निर्जन और ऊबड़ खाबड़ रास्ते शर्म से भीड़ और चकाचौंध भरे संगमरमरी पुल से आंखें चुरा रहे थे। घाट पर थी अकेली और नितान्त अकेली मुकुरी उसकी यादें और उसकी पीढ़ियों पुरानी बूढ़ी नाव। मुकुरी की आँखों के सामने से बचपन से अब तक का सारा बीता वक्त पन्ना दर पन्ना गुजर रहा था। अब वक्त को, लोगों को, न तो उसकी फिक्र थी न ही जरूरत। मुकुरी ने नाव में बालू भरना प्रारम्भ कर दिया। बालू भरते भरते मुकुरी बेदम हो गयी परन्तु उसने बालू भरना बन्द नहीं किया। अन्ततः मुकुरी ने नाव में इतना बालू भर दिया

कि वह डगमगाने लगी। मुकुरी ने नाव किसी तरह खेते खेते मझधार में पहुँचा दिया। उसने अपने पुश्तैनी नाव को बेतहाशा चूमना प्रारम्भ कर दिया। मन ही मन उसने अपने माँ और पिता को नमन किया और नाव में खुखरी से छेद कर दिया। नाव में पानी भरना प्रारम्भ हो गया। शनै: शनै: नाव नदी में बैठने लगी। मुकुरी ने गंगा मइया में अंजुरी भरकर दो बार पानी निकाल कर उड़ेला मानो वह अपने माता पिता का श्राद्ध कर्म कर रही हो। उसने गंगा मइया को अन्तिम बार प्रणाम किया और निश्चंत भाव से उनकी गोद में उसी प्रकार बैठ गयी जैसे वह बचपन में माँ की गोद में बैठ जाया करती थी। माँ ने अपनी प्यारी लाड़ली बच्ची को अपने आँचल में छिपा लिया था।

समय बीतता गया। लोग बाग उस घाट को भूलने लगे परन्तु जब कभी कोई आदमी रात बिरात उस घाट पर आता है तो उसे आज भी एक पुरानी नाव के चलने और चप्पू की आवाज का एहसास होता है।

कहानी

एक शाम न जाने किसके नाम

ममता शर्मा

कमरे में कुल चार लोग थे........बा, सुराज, जेनी और रमण। यह घर बा और सुराज का है, जेनी और रमण यहाँ शाम गुजारने आए हैं। अक्सर ये चारों लोग यही करते हैं। कभी बा और सुराज जेनी और रमण के यहाँ चले जाते हैं तो कभी जेनी और रमण यहाँ बा और सुराज के पास चले आते हैं। इसके अलावा कभी-कभी शहर के किसी सुकून भरे रेस्तरां में भी इन चारों को साथ-साथ देखा जाता है। ये इन चारों के समय गुजारने के अलग अलग तरीके है। चार अलग अलग पर्सनैलिटी और अलग-अलग मिजाज के इन लोगों के एक साथ जुटने की एक खास वजह है। यह एक अच्छी बात थी कि जिंदगी के ऐसे मुकाम पर, जब इन्हें साथ की जरूरत थी, जब इनके ग़म कुछ ऐसे थे जिन्हें हर दूसरा इंसान नहीं समझ सकता था तब वे चारों एक दूसरे को देने के लिए समय निकाल लेते थे। उन चार अलग-अलग पर्सनैलिटी के लोगों के बीच एक तार ऐसा था जो उन्हें बड़े ही खूबसूरत तरीके से जोड़ता था। इस जुड़ाव से एक ऐसा समवेत सुर प्रवाहित होता था जिसकी लय में वे चारों सुकून पाते थे, मानों कोई खूबसूरत तान छेड़ दी गई हो और हर श्रोता अपनी-अपनी अवस्था में अपने-अपने हिस्से का आनंद ले रहा हो। बा......कॉलबेल की आवाज सुनकर सुराज ने बा को पुकारा। बा तबतक रसोई में जा चुकी थी क्योंकि घड़ी की सुई पाँच पर थी। बा को पता था कि अब जब भी कॉलबेल बजेगी दरवाजे पर जेनी और रमण ही होंगे। जेनी घर के अंदर आने के बाद बा को रसोई में टिकने नहीं देगी क्योंकि जेनी को शामें रसोई में गुजारना पसंद नहीं है।

'बहुत हो चुकी फार्मेलिटी अब हमें थोड़ा इनफार्मल रहना चाहिए' कई दिनों बा को ऐन मौकों पर रसोई में देखने के बाद जेनी ने एक दिन कहा था जैसे? बा ने प्रश्न किया था।

'जैसे घिसे-पिटे सीन की तरह मेहमानों के आने पर किचन में चाय या शर्बत या फिर किसी ऐसे ही काम के लिए खटपट बंद कर देनी चाहिए।'

'लेकिन जेनी चाय के बिना तो सब कुछ अधूरा जैसा लगता है? बा के चेहरों पर सवाल था।

हाँ बात तो सही है तुम्हारी, चाय ही तो हमें एनर्जी देती है इन शामों से चाय को निकाल दो तो कुछ नहीं बचेगा.......ये तो हो सकता है चाय बनाकर पहले ही रख ली जाय! जेनी ने कुछ सोचकर कहा।

बात बा को पसंद आ गई थी और तब से जैसे ही ड्राइंग रूम में टंगी घड़ी पाँच घंटे बजाती है, बा रसोई का रूख करती है। चाय बनाकर केतली में रख ली जाती है, बा पारूल की बनाई हुई एक पुरानी टीकोजी निकालती है और उसे केतली पर डाल देती है। उस टीकोजी के साथ बा की कुछ पुरानी यादें जुड़ी हुई थी, जैसे बारिश का मौसम, रिक्शे में आधे भींगते हुए उस टीकोजी को बनाने का सामान जुटाने के लिए उसकी और पारूल की शहर की तंग गलियों की भटकन, रात-रात भर उन दोनों का जाग कर उसे तैयार करना, पारूल की आधी कच्ची और आधी पकी चाय बनाकर लाना, और आखिर पारूल को क्राफ्ट में 10 में से 9 नम्बर मिल जाना। पिछले पाँच बरस से टीकोजी एक बक्से में बंद थी और अब पारूल के जाने के बाद उसकी गैर हाजिरी में

उसे आसपास महसूस करने का एक जरिया बन चुकी थी यह एक अच्छी बात थी कि बा को चाय के साथ शक्कर हाँ या शक्कर न की मशक्कत नहीं करनी पड़ती। सीधे पानी और दूध मिलाया, चार चम्मच चीनी चाय पत्ती और सुगंध के लिए इलाइची और चाय तैयार!

उन चारों की मुलाकातें सुनिश्चित है जिनके सुनिश्चित वार्तालाप है और सुनिश्चित परिणाम है। उन वार्तालापों में नया कहने को कुछ भी नहीं था; रोज वही सवाल, रोज वही जवाब और रोज वही मायूसी! चाय का दौर! मन के बहलाने को दो-चार हल्की फुल्की बातें! मगर वे चारों एक जगह बैठकर उन्हीं पुराने सवालों में हर रोज कुछ नया तलाश लिया करते थे।

हर रोज की तरह आज भी वे चारों बैठकखाने में बैठे हैं जहाँ रोशनी कहीं न कहीं से छनकर आ रही है। बैठकखाने में एक पुरानी स्टाइल का सोफा है, सोफे के पास रखे टेबल पर नए स्टाइल की टेबल-लैंप है। बैठकखाने के एक दूसरे कोने को शाल के एक स्टडी टेबल ने घेर रखा है जिस पर पारूल की एक हँसती हुई सी तस्वीर रखी है जो हालाँकि कई दिनों से रखी रहने के कारण अपने होने का अर्थ खो बैठी है पर फिर भी कभी-कभी मायूस हो जाने वाले माहौल में अपनी उपस्थिति दर्ज करती है। टेबल के साथ एक बुकशेल्फ है जिसमें किताबें अटी पड़ी है जिन्हें देखकर लगता है मानों उन्हें न छूने की हिदायत दे दी गई हो क्योंकि उनमें तरतीब का बेइंतहा अभाव है। बुकशेल्फ की ऊपरी सतह पर अलबत्ता धूल का एक भी कतरा नजर नहीं आता है जो इस बात का सबूत है कि शेल्फ के बाहरी हिस्सों की बिला नागा सफाई की जाती है।

इन चारों की मुलाकातों का केन्द्र अमूमन पारूल और संजना हुआ करते है। पारूल है बा और सुराज की इकलौती संतान और उधर संजना भी जेनी और रमण की एकमात्र संतान है। दोनों पिछले ही साल से हॉस्टल में है और इनकी शामें इन्हीं दोनों की छोटी-बड़ी कभी जरूरी और कभी मामूली सी बातों से गुलजार है।

आज कितनी बार फोन किया? -जेनी ने बा से पूछा। ज्यादा नहीं, एक बार सुबह सवेरे. ....वह समझो अलार्म के लिए, उस समय तो बात कहाँ हो पाती है, फिर दोपहर में लंच के समय और फिर शाम में एक बार। बा यह सारा ब्यौरा रूक-रूक कर देती है, और जेनी ऐसे सुनती है मानों ब्राह्मांड का सबसे बड़ा रहस्य खोल रही हो।

'तो मतलब कुल तीन बार हुआ न?' जेनी ने सवाल किया।

'हाँ कुल तीन बार........बा ने कहा।

बा और जेनी दोनों ही रोज करीब दो से चार बार बच्चों को फोन कर लिया करती है। इन टेलीफोनी वार्ताओं से उनके पास इतनी बातें इकट्ठा हो जाती, जो उनकी शामों को भर दिया करती।

हॉस्टल का खाना सही नहीं है........बा ने बातों की कड़ी को जोड़ा। लेकिन तुम तो अभी उस दिन बहुत तारीफें कर रहीं थीं कि खाना बड़ा अच्छा है........जेनी ने कहा।

'वही तो पारूल कह रही थी शुरू में इंप्रेस करने के लिए ऐसा करते है फिर वहीं ढाक के तीन पात वहीं पानी भरी सब्जियाँ.......पानी भरी दालें......पारूल तो हंस रही थी कहती थी बाकी सारी चीजें कम है बस पानी की कोई कमी नहीं........जेनी और बा दोनों हंस पड़ी।

उनके वार्तालापों में हँसने के अवसर कम ही मिला करते। बा कुछ सोचने लग गई उसे पुराने दिनों का एक वार्तालाप याद आ गया।

'आज खाने में क्या है'.........हमेशा की तरह उस दिन भी फोन उठाते ही बा ने पूछा

लौकी की सब्जी.........

'ओह लौकी.........(बा को पूरा भरोसा हो गया कि पारूल ने लौकी सब्जी देखकर ही खाना छोड़ दिया होगा)

'तुम चिंता मत करना मैंने कैंटीन से रोल मंगवा लिया था.......और माँ वैसे भी तुम अब खाने की चिंता मत किया करना.......यह तो रोज का धंधा है........कभी मन का होगा, कभी मन का नहीं होगा, कभी स्वाद के लिए बाहर खा लेंगे, कभी कुछ भी नहीं खाएंगें........हम यहाँ खाने के लिए थोड़े ही आए है.......'

पारूल कितनी समझदार हो गई है और एक वो दिन थे जब प्लेट में चीजों का मुआयना करने के बाद पारूल चुपचाप खिड़की से रोटी और सब्जी बाहर गिरा दिया करती : खाली पेट रह जाया करती पर मन का ही खाना खाती।

हाँ यह तो तुम ठीक कह रही हो.........जेनी की आवाज से बा की तंद्रा टूटी : 'संजना भी शुरूआती दिनों में खाने की ही बातें किया करती, ऐसा लगता कि अब तक जो खा रही थी वह सब बेकार था और स्वाद का खाना तो उसे अब जाकर मिलने लग गया है। लेकिन आजकल खाने का कोई जिक्र ही नहीं करना चाहती। अब खाने की उसकी जिंदगी में अहमियत ही नहीं रह गई है।.........दोनों एक तरह से यह नई स्थिति अच्छी है कि जो मिला खा लिया लेकिन इसमें एक ही खतरा नजर आता है कि बच्चे जो कभी-कभी भूख को मार लिया करते हैं उससे सेहत पर असर न पड़े सही। दोनों कुछ देर मौन रहे अपनी अपनी सोच में गुम!

उनके वार्तालापों की यह एक खास बात थी इन वार्तालापों के बीच लंबे-लंबे मौन थे जो वार्तालापों से अधिक मुखर हो उठते थे।

'पर बा खाने में हर तरह की आदतें बच्चों में होनी चाहिए न........तुम्हें ऐसा नहीं लगता.......!' जेनी ने कहा मानों कोई नास संधान मिल गया हो।

बा ने सिर्फ सर हिला दिया और सोचने लग गई कि जेनी शायद खुद को मजबूत करने के लिए यह सब कह रही है। उसे याद आ गया था कि महज दो दिनों पहले ही संजना के जन्मदिन पर जेनी ने कुरियर में हाथ से बनी मिठाइयाँ भिजवाई थी। उस वक्त बा को लगा था कि जेनी ऊपर से जितनी बोल्ड लगती है अंदर से उतनी ही कमजोर है। बा को लगता है कि संजना के जाने के बाद जेनी की पर्सनैलिटी खंडित हो गई है और इसी वजह से उसकी बातों में विरोधाभास झलकता है। अक्सर वह अपनी बोझिल भावनाओं को छुपाने के प्रयास में बेहद इंप्रैक्टिकल हो उठती है। संजना उसकी बेटी ही नहीं उसकी अजीज दोस्त भी थी, उसे आसपास हर वक्त देखने की वह आदी हो गई थी और अब जब वह दूर है तो जेनी अपने भीतर कहीं गहरे में इस अकेलेपन से लड़ रही है।

'खाने की क्या बात है मुझे तो लगता है कि हमें कुछ दिनों के लिए फोन भी करना बंद कर देना चाहिए- क्यों भाई साहब......जेनी यह सब कहते हुए अब सुराज की ओर मुखातिब हो

गई थी। जेनी की इस बात पर सब मौन हो गए, जैसे हर कोई अपने खिलाफ खड़ा होकर खुद को इस बात के बरअक्स टटोल रहा हो और खुद से सवाल कर रहा हो मसलन' 'क्या ऐसा संभव है?' या फिर 'क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ?' और यह भी कि 'बच्चों के बगैर हम कितने अधूरे हैं!' वगैरह-वगैरह........

'छोड़िए न जेनी........फोन ही तो करते है नए जमाने की सुविधा है उसका फायदा उठाते बस. ....आज से 10-15 बरस पहले जो बच्चे हॉस्टल में जाते तो हम भी वैसे ही हो जाते, बच्चों को 6 महीने के लिए पूरी तरह से भूल जाते.......

सुराज की इस बात से सभी ने राहत की साँस ली, सबके चेहरों पर मुस्कान लौट आई जैसे किसी गैर-जरूरी मशक्कत से बचा लिए गए हो।

'पकौड़े तो बढ़िया हैं आज कोई खास दिन है क्या?' रमण ने टेबल पर पड़ी प्लेट से पकौड़े उठाते हुए बात को नया मोड़ दिया।' खास दिन क्या यूँ ही........असल में पारूल का जन्मदिन है 'बा ने संकोच के साथ कहा........

'फिर तो यह अन्याय है सिर्फ पकौड़े में ही काम चला लिया.......यह तो सरासर ज्यादती है. ....'

'अरे नहीं, असल में उसे पनीर के पकौड़े पसंद है........बा ने सफाई पेश की।

'ओह......तो ऐसा कहिए न, वही तो मैंने सोचा कि जन्मदिन और पकौड़े का क्या तालमेल हो सकता है।'

'पारूल तो इतना पसंद करती है कि एक बार खुशबू मिलनी चाहिए कि आज पनीर के पकौड़े बने है प्लेट लेकर किचन में खड़ी हो जाएगी मजाल है आसानी से किसी और तक पकौड़े पहुँच जाए। इन बच्चों का तो ऐसा हिसाब है भाई साहब, पेट नहीं देखते, भूख नहीं देखते........स्वाद से खाते है स्वाद मिले तो दस रोटियाँ खा जाएँ और स्वाद न मिले तो एक दाना मुँह में न डालें। उसके जाने के बाद हमने पनीर के क्या, किसी भी चीज के पकौड़े खाने बंद कर दिए। सुबह-सुबह मुबारकबाद देने के लिए फोन किया तो मैंने बताया कि आज शाम की बैठकी में हम तुम्हारी पसंद का कुछ खाएँगें और जन्मदिन सेलीब्रेट करेंगे।''

सबने बा की बातों को महसूस किया, सब मौन थे, नीरव शांति में मुँह में चबाने की आवाज और दिमाग में घुमड़ते विचारों का शोर था।

'सोचा था बच्ची हॉस्टल जाएगी तो जिंदगी की आधी भाग'-दौड़ समाप्त हो जाएगी....... .कुछ ऐसा करेंगे जो इतने दिनों नहीं कर पाए' रमण ने कहा

'जैसे कुछ ऐसा जो दिल के बेहद करीब हो'........रमण ने पकौड़े को लाल सॉस में लपेटते हुए कहा।'

तो......भागदौड़ तो खत्म हो ही गई है न...... सुराज बोले

'वही तो मुश्किल है, भागदौड़ तो खत्म हो गई है पर अब तो लगता है जैसे जिंदगी के किसी मोड़ पर शुरू हुई यह भागदौड़ कब हमारे खून में रचबस गई और हमें मालूम ही नहीं हो पाया, जबतक भागदौड़ थी हम सही थे और अब जब नहीं है तो उसी की तलब होती है।'..... ...यह रमण कह रहा था।

'ये बात तो है यार......एक अजीब सा खालीपन है आसपास लोग है यार दोस्त हैं काम का प्रेशर है पर एक खालीपन साथ चिपका हुआ है जैसे! रह-रहकर अपनी उपस्थिति का अहसास कराने वाला खालीपन......दफ्तर में मेज की दराज खोलो तो वहीं नजर आ जाने वाला खालीपन. ......'

'इसका तो उपाय है मेरे पास'.........रमण ने गंभीर मुखाकृति के साथ कहा।

'वह क्या है?' के अंदाज में कई जोड़ी आँखों की पुतलियाँ रमण की ओर गड़ गई।

'किसी कारपेंटर को बुलवाकर दराज ही हटवा डालो' चारो एक साथ हँस पड़े। मानों हँसने की राह तलाश रहें हों और वह मिल गई हो।

एक बात कहूँ सुराजी'......रमण ने फिर नए सिरे से बात का पल्ला पकड़ा।

'हम कहते है बहुत काम है, बहुत काम है ये करना है, वो करना है, समय नहीं मिलता, दफ्तर और घर के बीच बँटे रहते हैं बच्चों की भागदौड़ ट्यूशन, उनकी रोज की जरूरतें वगैरह-वगैरह फिर एक मोड़ पर आकर सब कुछ थम सा गया। बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ गया और उन्होंने हर छोटी-बड़ी जरूरत के लिए आपकी ओर देखना बंद कर दिया, ऐसा लगा जैसे यह एक सफर था और सुर में उनके कदम आपके कदमों से तेज हो गए। वे कब आपका साथ छोड़कर आगे बढ़े आपको पता ही नहीं चल पाया......क्यों ठीक कह रहा हूँ न.......हम जिस तरह यहाँ बैठकर उनके खाने को उनके एक-एक निवाले को discuss करते है, उनकी बीती हुई पुरानी बातें याद करते हैं- यह सब बस हमारे लिए ही है.......उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ने वाला!'

'देखो, रमण यह तो जिंदगी का उसूल है यह सब हम कोई बच्चों के लिए तो कर नहीं रहे. ......यह सब तो खुद के लिए कर रहे हैं।.......'

'क्या हम सब एक बार और चाय पी सकते हैं?' सुराज ने माहौल की गंभीरता को कम करने की गरज से कहा।

'बिल्कुल.....लेकिन एक शर्त के साथ,' जेनी भी इस चर्चा से निकलने की राह तलाश रही थी।'

वह क्या? बा ने पूछा

'इस बार चाय मेरे हाथों से......

'चलेगा......'

जेनी और बा किचन में चली गई। वार्तालाप के अब दो बिन्दु हो गए। जेनी और बा किचन में और सुराज और रमण ड्राइंग रूम में। यह जरूरी था इसलिए क्योंकि ऐसे वार्तालापों में जेनी और बा बहुत बार अकेले रहना ज्यादा मुनासिब समझती थीं क्योंकि एक तो उन्हें ऐसा महसूस होता था कि कभी-कभी सुराज और रमण की चर्चा बहुत कुछ सैद्धांतिक हो जाया करती और दूसरे वैसे तो सुराज और रमण भी बच्चों की चर्चा में अथाह सुख पाते थे पर उन्हें अपने तथाकथित पौरूष का प्रर्दशन भी आवश्यक लगता था। मसलन उन्हें यह चाहत होती कि दिन में चार-पाँच बार न सही तो कम से कम एक बार बच्चों को फोन जरूर करें, उनकी आवाज सुनें या कहें यह चाहत होती कि उनके न होने के अहसास को कम करने की गरज से एक बार बच्चों से बात हो जाए

पर जब बा और जेनी अपनी बातें शुरू करके कहती कि 'आज कितनी बार फोन किया तो रमण और सुराज एक दूसरे की ओर मंद मुस्कान फेंकते हुए कुछ ऐसा भाव प्रकट करते कि ''देखों इन्हें......ये कितनी कमजोर दिल हैं'

शुरू-शुरू में तो जेनी ऐसे भावों को भाँपते ही चिढ़ उठती और बहस पर उतारू हो जाती।

'क्यों आपका नहीं जी करता अपने बच्चों से फोन पर बातें करने का.......अच्छा बा हमें क्या पता ये दफ्तर से कितनी बार फोन करते हैं.......

वगैरह-वगैरह।

बा जेनी को समझाती कि ये तो मर्दों के दिखाने की बातें हैं; सच्चाई तो यह है जेनी कि बच्चों के मामले में मर्द हम औरतों से ज्यादा कमजोर दिल होते हैं। पर फिर भी जेनी ऐसी बातों पर बिफरना नहीं भूलती थी। जेनी अब चाय बनाने में व्यस्त थी। ड्राइंग-रूम में सुराज और रमण अब भी चर्चा में थे।

'सच कहूँ सुराज और मैं इस बारे में अब काफी सीरियस हूँ।

'किस बारे में?'

'मुझे लगता है हमें खुद को बदलना होगा........कभी कभी......या कहो अब अक्सर लगता है कि बच्चे हमें भूलते जा रहे है......क्यों तुम्हारा क्या ख्याल है?

'बस यूँ ही'

'ये क्या बात हुई कुछ तो सोचते होगे तुम........कुछ तुमने भी महसूस किया ही होगा.........मैं ठीक कह रहा हूँ या नहीं........

मतलब, मुझे इसमें कोई बुराई वैसे नहीं नजर आती यह वक्त की मांग है अलबत्ता.......उनकी लाइफ ही ऐसी हो गई है क्या करें........इसमें उनका कोई कसूर नहीं है। लेकिन हकीकत तो है ही कि बच्चे ज्यादा......वे क्या कहते है.......प्रैक्टिकल हो गए है......जहाँ जरूरत महसूस करते हैं वहाँ भावनाएँ प्रदर्शित करते हैं और जहाँ गैर जरूरी समझते है........क्यों तुम्हें क्या लगता है' रमण ने सुराज की ओर सवालिया दृष्टि से देखा।

'सच पूछों तो मैंने भी पिछले कुछ महीनों में पारूल के जाने के बाद की स्थितियों पर करीब से गौर किया........कुछ-कुछ वैसा ही महसूस हुआ.......पर मैंने सोचकर चर्चा नहीं की.......न बा से और न तुम लोगों से कि कहीं यह मेरे अकेले का ही अनुभव हो......या यह कि कुछ अटपटा सा लगे सुनने में.......'

'क्या हम इसे जेनरेशन गैप कह सकते है.......' रमण ने कुछ सोचते हुए कहा।

'याद है रमण तुम कहा करते थे हमारे समय में जैनरेशन गैप जैसी कोई चीज नहीं होगी'

'हाँ खूब याद है.......लेकिन यहाँ बातचीत का मुद्दा यह नहीं है कि हम सही हैं या गलत'

अचानक से बजी फोन की आवाज ने रमण की बात को बीच में ही भंग कर दिया।

'लगता है बिटिया का फोन है.......' रमण ने मुस्तैदी के साथ पाकेट में सेलफोन टटोलते हुए कहा।

'संजना का होगा तो मुझे भी एक जरूरी बात करनी थी' उधर जेनी ने भी किचन से निकलते हुए कहा।

'ओह......' रमण ने फोन का नम्बर देखकर कहा।

'क्या हुआ......'जेनी ने करीब आकर पूछा।

'नहीं कुछ नहीं......संजू का नहीं है......'

पलभर को कमरे में मौन पसर गया। जेनी आकर रमण के पास ही सोफे पर बैठ गई। रमण सर के पीछे हाथ बाँधे अतीत में लौट गया। सुराज लंबी सांसे खींचकर रसोई में चला गया।

'बा चाय तैयार है क्या?

'फोन किसका था?'........बा ने पूछा।

'किसी का नहीं' सुराज ने कहा।

आज की शाम का आखिरी दौर आ पहुँचा था। प्यालियों पर लगती चम्मच की आवाज मौन को तरंगित कर रही थी।

स्कूटर

दीपक शर्मा

हमारे गांव में पहला स्कूटर हमारे दादा ने खरीदा था।

बाइस-वर्षीया हमारी बुआ के लिए। सन् 1960 में।

उन दिनों लड़कियों में साइकल का और लड़कों में मोटर साइकल का चलन तो आम था किन्तु स्कूटर का नहीं। सच पूछें तो हमारे क्षेत्र में लोकप्रियता हासिल करने में स्कूटर को अगले दस साल तो लगे ही लगे थे।

अब स्वाभाविक था, बुआ का स्कूटर गांव भर में चर्चा का विषय बन गया था। महिलाएं यदि कम ऊँचाई पर बनी उसकी गद्दी और पिछले अलग आसन की बात करतीं तो पुरुष उसके इन्जन और पार्सल कम्पार्टमेन्ट के स्थल की। मोटर साइकल के विपरीत स्कूटर सवार को इंजन के ऊपर टांगें फैला कर नहीं बैठना पड़ता था।

हमारे परिवारजन ज़रूर बुआ के स्कूटर के बारे में विविध एवं विभक्त राय रखते थे। मेरे पिता, चाचा और दादी को जहां स्कूटर की वजह से बुआ का गांव भर में आकर्षण-केन्द्र बन जाना संकटपूर्ण एवं आपत्तिजनक लगता था वहीं दादा का तर्क था, यह स्कूटर बुआ को गांव के अपने मकान से शहर के अपने कालेज के बीच का दस मील का रास्ता तय करने में न केवल सुविधा देगा बल्कि उनकी आत्मनिर्भरता को भी दृढ़ करेगा। हाल ही में बुआ ने उसी कालेज में लेक्चरर की नौकरी पायी थी जिसके होस्टल में रह कर उन्होंने अपनी बी0ए0 और एम0ए0 पास की थी। अल्पसंख्यक वर्ग के उस कालेज में गैर-धर्मी विद्यार्थिनियों के होस्टल में रहने की व्यवस्था तो थी मगर अध्यापिकाओं का वहां कमरा पाने के लिए उसी अल्पसंख्यक वर्ग का होना अनिवार्य था।

उधर मेरी मां चाची और तीनों चचेरी बहनों के लिए स्कूटर साहस-कर्म एवं अपूर्व अनुभव का उपकरण बन गया था और वे दादा के दल में सम्मिलित हो गयी थीं। फलस्वरूप दादा उन्हें बुआ के स्कूटर की पिछली सीट पर सवार होकर शहर घूमने की आज्ञा भी जब-तब देने लगे थे।

किन्तु वह सब अल्पकालीन रहा।

पहले दल का शेष। दूसरे दल की मौज।

बुआ के संग हुई दुर्घटना के कारण।

उस दिन बुआ जब कालेज से अपने बताए, समय पर देर तक घर नहीं लौटी थी तो दादा ने चाचा को उसने मोटर साइकल पर लिया था और शहर की ओर निकल पड़े थे। बुआ को खोजने।

लौटे मगर टैक्सी से थे। चाचा के बिना।

घायल बुआ के साथ।

जो उन्हें रास्ते में बेहोश पड़ी मिली थीं।

क्षत-विक्षत।

बिना स्कूटर के।

उस समय हम बच्चों को बताया गया था, पड़ोस के गांव के अपराधशील कुछ तत्व बुआ से उन का स्कूटर छीनते समय उन्हें घायल कर गए थे।

समूचा सच मैंने बहुत बाद में जाना था।

बुआ के साथ बलात्कार भी हुआ था।

उत्तरवर्ती दिन परिवार के लिए गहरा असामंजस्य लाए थे।

बात केवल स्कूटर की हानि उठाने की नहीं रही थी। बल्कि असली बात तो यह थी कि बुआ की दारुण स्थिति के लिए दादा के दोनों बेटे-मेरे पिता एवं चाचा-उनकी उस अव्यावहारिक 'खरीद' को उत्तरदायी ठहरा कर बात-बात पर उन से उलझने लगे थे।

ऐसे में बुआ का मनोबल निरन्तर बिगड़ता जा रहा था।

उन्हें उस से उबारने के लिए दादा ने एक और 'खरीद' कर डाली।

बुआ के कालेज के समीप नवनिर्मित एक मकान की।

बुआ को उन के नाम स्वतन्त्र एवं स्थायी निवास देने हेतु।

किन्तु बुआ वहां हम बच्चों के बिना रहने के लिए तैयार नहीं हुईं। शहरी स्कूलों में गांव की तुलना में बेहतर पढ़ाई होने की संभावना का हवाला देकर हमें भी अपने साथ लिवा ले गयीं।

दोनों अपने भाइयों के प्रत्याख्यान के बावजूद।

हां, मेरी मां, दादी और चाची की मौन सहमति अवश्य ही उनके साथ थी।

आज सभी मानते हैं बुआ ही ने हम चारों को पोसा, पढ़ाया, ब्याहा, पुरे का पूरा बनाया। सब जगह उचित सम्मान दिलाया। किन्तु बुआ ऐसा नहीं मानतीं।

वे पूरा श्रेय दादा को देती हैं।

जिन्होंने सब समय उनकी गरिमा बनाए रखी थी।

प्रतिकूल से प्रतिकूल समय में भी उनका भेद किसी के सामने नहीं खोला था,

1960 के उस स्कूटर की 'खरीद' दादा ने बुआ के आग्रह पर की थी, अपने से नहीं।

चकबन्दी

हुस्न तबस्सुम निंहा

उसकी अजब गजब मनः स्थिति और करतूत को देख सब हतप्रभ थे। किसी को कुछ कहते यह समझते नहीं बन रहा था। हवलदार साहब विस्फारित नेत्रों से सामने का दृश्य देखते रह गए। क्रोध व अवसाद से तप कर कनपटियां लाल हो गईं। गुर्राए-

''क्या कर रहे हो रामदीन-?'' तो बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया गया-''चक बाँट रहा हूँ हुज़ूर........''

एक बारगी पूरी भीड़ में ''हा.....हा.....हू.....हू.....'' की ध्वनि लहरा गई। हवलदार के जले पर नमक पड़ गया। घूरती आँखों से भीड़ पर निगाह डाली-''क्यूं बे.....खींसे निपोर रहे हो, तुम्हारी बहनों का मुजरा हो रहा है क्या-.....?

हवलदार की हुंकार सुन भीड़ में ठण्डा सन्नाटा पसर गया। मगर इस भीड़ से उदासीन रामदीन अपने ही क्रीड़ा में मस्त था। भीड़ के बीचों-बीच तीन लाशें पड़ी थी। सिरकटी लाशें। तीनों लाशों के सिर धड़ से अलग थे। मौत से अब तक खून बह-बह के जमीन में सिक्त हो चुका था। मक्खियां भिनभिना रही थीं। पनीली हवा में दुर्गन्ध पूरी तरह व्याप्त थी। तीनों लोशें बराबर से पड़ी थीं। सिरहाने रामदीन बैठा था। पास ही गड़ांसा पड़ा, हुआ था। हमला बिल्कुल पारदर्शी था। किसी खोज बीन या तहकीकात की कोई गुन्जाइश नहीं। तीनों खोपड़ियों से रामदीन मगन होकर खेल रहा था। एक धड़ की खोपड़ी दूसरे में लगाता, दूसरे की तीसरे में फिर तीसरे की पहले में। इस तरह बार-बार इधर से उधर, उधर से इधर खोपड़ियाँ जोड़-तोड़ रहा था। पूरा शरीर लहू में नहाया था। तन पे केवल अण्डर वियर, वो भी लहू के रंग की होकर सूख-सूख चिकटा गई थी। पूरे परिदृश्य पे मक्खियों का साम्राज्य था। हवलदार लिखा-पढ़ी करते करते फिर गूंजा-

''इन सालों को कोई पहचानता है?''

''जी हुज़ूर.......''-एक नवजवान आगे खिसक आया-

''ई खोपड़ी तो पटवारी साहेब की आए-''-उसने तीनों सिर में से एक को इंगित करते हुए कहा। जिसका चेहरा अत्यन्त रोबीला बड़ी-बड़ी मूंछे, और सिर पे खिचड़ी बालों की हल्की फसल। दूसरे बाशिन्दों ने भी ''हाँ-हाँ'' दोहराई। हवलदार डण्डे से खोपड़ी इधर-उधर करते बोला-

''और इसका धड़.....?''

ये सुन सब बगलें झांकने लगे। संयोग से तीनों शरीरों की कद-काठी भी उन्नीस-बीस ही थी और तन्दुरूस्ती भी। किन्तु जिनकी लेखपाल के पास आमद-रफ्त थी, वे ताड़ गए। इस तरह एक शरीर मुकम्मल किया गया। रामदीन जिसे खींच कर दूर बैठाया गया था, अब भी जमीन पर आड़ी-तिरछी रेखाएं खींच रहा था। बुदबुदा रहा था। बच्चों की भीड़ उसे गोला बनाए घेरे खड़ी थी। छेड़-छाड़ में कोई बच्चा बोल देता-

"दूनी भैय्या, क्या कर रहे हो......?

तो एक सपाट उत्तर मिलता-

"चक बांट रहे हैं"-बच्चे खिलखिला उठते।

अब मसला फंसा था दूसरी दो लाशों का। इन्हें कोई चीन्ह ना पाया। अब दिक्कत थी। एक बार हवलदार ने भी प्रयास किया। बारी-बारी सरों में धड़ों को जोड़-जोड़ देखा। किस देह पर कौन सी खोपड़ी फबती है। किन्तु नहीं। जिस धड़ पर जो खोपड़ी लगाओं, वही सटीक लगती। हवलदार संतुष्ट न हो सका। अलबत्ता कई तरफ से फबती कसी गई-

"हुजूर चक बांट रहे हैं....का.....?

हवलदार खिसियाया। पर अगले ही क्षण खिसियाहट दबाते हुय गुर्राया-"कौन बोला बे-?

सबकी सिट्टी गुम। हवलदार झल्ला कर उठा तीन बोरे मंगवाए। तीनों लाशों को बोरे में रख कर गाड़ी पर लदवाया। और रवाना हो गया। दूसरी जीप पर रामदीन को हथकड़ियों में जकड़ कर शेष सिपाही लेते गए। एक-डेढ़ घण्टे में ही गांव में जैसे विष घुल गया। खाना पीना भूल सारी औरतें और मर्द अपनी-अपनी मण्डली बनाए इस असामायिक घटना पर दीदे फेरने लगे। रामदीन की पत्नी व मां का अलबत्ता बुरा हाल था। गाँव से थाने तक एक दहशत व्याप्त थी। लोग रह-रह कर "हाय.....।" कह उठते।

लाशें थाने लॉकअप में रखी गई थीं। लाशों की शिनाख्त के लिए सूचना निकाली गई। लेखपाल के महकमें से पता दरयाफ्त कर उनके परिजनों को सूचित कर लाश अन्त्यपरीक्षण के लिए भेज दी गई। अब शेष दो लाशों का मसला था।

x x x x

सड़क से लगे जंगल के पीछे बसी इस देहाती बस्ती की दुर्दशा सीधे-सरल किसान किसी अजाब की मानन्दि ढोते जा रहे थे। ईंटे-गारे में ढले मकानों में रहने वाले सम्भ्रान्त वर्ग की श्रेणी में गिने जाते थे। बाकी झोपड़ी-पट्टी वाले निम्न जाति, निम्न कोटि में सीमित कर दिए गए थे। जीविकोपार्जन के स्रोत शून्य......। जीने के संसाधन के नाम पर केवल कृषि। वो भी केवल उच्च या मध्यम वर्ग के किसानों के लिए। मजदूर कृषकों के लिए वो भी नहीं। आधे से अधिक भूमि बंजर या परती। जिन मजदूर किसानों के पास कृषि योग्य भूमि थी भी, वो भी धुप्पल में हथिया ली गई थी। वे संसाधन हीन किसान अपनी भूमि, से भी वंचित कर दिए गए। "कब?"-उन्हें भी नहीं पता। अचानक कोई मजबूत से तुल्य किसान के हरकारे आकर खेत जोतने लगते। खेत का वास्तविक मालिक जब हस्तक्षेप करता तो उसे दुत्कार कर हंका' दिया जाता। रपट अव्वल तो लिखी नहीं जाती। लिख भी ली जाती तो कागजात पलटवाने पर पता चलता कि वो भूमि उक्त मजदूर किसान की कभी थी ही नहीं। वो तो दया, कृपा वश उसे बोने दिया जा रहा था। और कोई तर्क....?

इस प्रकार वो मजबूर किसान, किसान से सिर्फ मजदूर रह जाता। निर्धन कृषकों के पास सिफारिश नहीं, मोटी रकम नहीं, छल-हृदय के हथकण्डे नहीं.....विवश......। "कभी अपनी जमीन थी"- इस कडुवे सच को हसीन ख्वाब सोंच कर भूल जाने की चेष्टा करते। नहीं भूल पाते तो सांसों की दुकान समेट जिन्दगी की छांह से उड़ कर चलते बनते।

ज्यादा दूर क्यूं जाईए, पिछले साल ही इसी गाँव के ग्यारह कृषक बैंक के कर्ज तले दब कर मर गए। इस वर्ष भी, पटेसर घूरे, सलालुद्दीन व जगरूप ने आत्हत्या कर ली। गाँव ऐसे ही सिमटता गया। छः हजार की आबादी वाला गाँव इतने में ही सिमटा-सहमा घूमता है। जिनकी भूमि हड़पी गई वे अपनी ही जमीन पर कृषक-मजदूर बन कर तिनके बीन रहे हैं। अपनी जमीन की खाक को ऐसे कलेजे से लगाते हैं जैसे-मक्का, काबह.....या जैसे दरिन्दों द्वारा हथिया ली गई अपनी खुद की जायी बेटी। जिन्होंने आत्म हत्याएँ कर लीं, उनके बीवी-बच्चे पलायन कर गए। शहरों के शुष्क व क्रूरतम परिवेश में वे खप गए। कोयले बीनते हैं, पत्थर तोड़ते हैं औरतें देह तक बेच चुकी हैं। बच्चे भीख तक मांगते हैं।

हाँ, इस बार किन्तु चमत्कार हुआ कि रामदीन अन्याय के विरूद्ध बोल गया। बोला ही नहीं, गड़ांसा तक उठा लिया। और राक्षसों का काम तमाम कर दिया। भले ही मानसिक संतुलन गंवा बैठा किन्तु भू-माफियाओं का किस्सा तमाम कर दिया था। सारे भुक्तभोगी मजदूर कृषक भीतर-भीतर हरक गए थे। उसकी पीठ ठोंक रहे थे। जैसे दीनू ने सारे प्रताड़ित किसानों का प्रतिशोध ले लिया था। विशेष कर वे, जो आज अपनी भूमि खो कर अपनी ही भूमि पर मजदूरी कर रहे थे। जो खून के आंसू बारहों महीने रोते थे। इस प्रकार भू-माफियाओं के चंगुल में निर्धन किसान बुरी तरह फंसे पड़े थे।- बहरहाल, दूसरे ही दिन भोर का झुटपुटा खुलते -खुलते हवा में तैरती एक दुबली-पतली सतत्-पिचहत्तर के बीच झूलती बूढ़ी स्त्री थाने में दाखिल हुई। आंखों में अजब सोयापन व दर्द तैर रहा था। पता चला वह लाशों की शिनाख्त करना चाहती हैं। दरोगा साहब ने बुलाकर फौरी तफ्तीश की-

''कहाँ से आई हो माता जी......?''

''कग्गर से........''

''तुम्हारे घर का कोई मर्द गुम है ?''

''हाँ साहेब, हम सीतापुर से हैं। पाँच साल से हम यहीं कग्गर में आकर बस गए हैं। बेटे की शहर में ही कपड़े की दुकान है। बहू चल बसी। दो बच्चे हैं, जिन्हें मैं पाल-पोस रही हूँ।

सुमिरन कल भोरहे निकला था चकबन्दी के सिलसिले में। हमारी करीब के गाँव लाल पुरूवा में कुछ जमीन निकलती है''

वह कहते-कहते थमी ही थी कि पास ही जमीन पर दीवार से टेक लगाए, पालथी मारे बैठी दो-दो हाथ का घूंघट डाले रामदीन की पत्नी बुक्का फाड़ चिल्ला पड़ी-''हाँ, हुजूर....... यही सब बेइमान अऊर घूसखोरन ने मिलकै हमरी हरी भरी जमीन लील ली। अऊर बदले माँ पत्थर चट्टान हमरे गले मढ़ दीन्ह। जिमा खोपड़ी फौड़े से भी दूब नाए उगत.....पिछली चकबन्दी माँ हमार दुई देवर नहरिया में बूड़ के अपना जीवन लीला समाप्त कर लीन्ह.....इन्ही सबके कारन हुजूर.....''

दरोगा ने उसकी बातें ठेलते हुए वृद्धा को देखा फिर बोला-

'चलिए, अन्दर चलिए.....''

बीच का गलियारा फांद के वे एक सीलन युक्त दुर्गन्ध से भरी कच्ची कोठरी के पास पहुँचे। खुलवाया। स्त्री भीतर गई। चेहरों से कपड़ा हटाया गया। वैसे ही वृद्धा लहराती हुई जमीन पर आ

गिरी। सिपाही चीख सुन कर दौड़े। पानी से चेहरा भिगोया गया। [illegible] चीख मार कर रो पड़ी और एक लाश से लिपट गई। किसी तरह वृद्धा को लाश से अलग किया गया और शिनाख्त होते ही लाश को पोस्ट मार्टम के लिए भेज दिया गया। कागजी लिखा-पढ़ी के उपरान्त स्त्री भी वापस हो गई।

दरोगा साहब झल्लाते हुए अपनी कुर्सी पर बैठे-

''स...साले.....आह कमाओगे, तो आह भुगतोगे.....''

''हाँ साहेब......'' सिपाही ने हां में हां मिलाई.....।

''अरे राम आसरे....मुफलिसों की आह जाया नहीं जाती साऽऽले बाल बच्चे रखा के हराम खाते हैं। ये लेखपाल तहसीलदार वगैरह सब यही करते घूमते हैं......इसी में बने है। सरकार की छुरी सिर्फ हम पर ही लटकती है-गिनी रोटी नपा शोरबा.....जरा खिड़की खोलना आज गरम भी बहुत है.......'' दरोगा साहब ने वर्दी के सामने के बटन खोले और आस्तीनें चढ़ा कर कुर्सी के पिछले हिस्से पर सिर टिकाया और आँखें बन्द कर लीं।

x x x x

सांझ के लगभग पाँच बजे होंगे। चिलकती गर्मी कुछ ठण्डी नमी से भर गई थी। अब थोड़ी राहत थी। दरोगा साहब का दिन बड़ी बेचैनी और उठते-बैठते बीता था। फिलवक्त वह अपनी आराम कुर्सी पर बैठे सिगरेट के छल्ले फूँक रहे थे कि थाने में तीन व्यक्ति धड़धड़ाते से घुसे। एक लम्बी-चौड़ी कद-काठी वाला भारी-भरकम शरीर से झक सफेद धोती-कुर्ते में था। चेहरा रोबीला किन्तु विनम्र। बाकी दोनों मंझोले कद के व्यक्ति थे और पैंट शर्ट में थे। दुबले-पतले। दरोगा साहब ने उड़ती निगाहों से देखा और अनदेखी कर दी। वे नजदीक पहुँचे। धोती-कुर्ता वाला व्यक्ति मेज पर झुकते हुए धीमे से बोला-

''साहब,......हम लाश की शिनाख्त करने आए हैं''

-दरोगा ने उन पर दृष्टि डाली-

''कल से कहाँ थे......''

''थे तो हम घर पे ही, लेकिन.....''

''ठीक है ठीक है, सुन्दर, इन्हें लाश दिखाओ......''

अनमने से वह किसी सिपाही को काम सौंप कर टेबिल वर्क में लग गये। क्षण भर बाद एक सिपाही आया और उन तीनों को लॉक-अप तक ले गया। खोला।

लाश का चेहरा देखते ही तीनों के चेहरे का रंग उड़ गया। मुँह से हल्की 'आह' निकल गई। वे मुँह पे रूमाल रखे वापस दरोगा के पास आ गए। दरोगा ने मेज पे झुके झुके ही पूछा-

''पहचाना......?''

''जी हाँ, मेरे भैय्या ही हैं।''

''नाम और पता......?''

''सलीम अख्तर वल्द अख्तर अली मरहूम''

''हूँ......''

''नायब तहसीलदार, उमरा विकास खण्ड। उमरा में ही हमारा निवास है......।''

''हूँ''-दरोगा की कलम चल रही थी। अचानक उस व्यक्ति के चेहरे पे लाल रंग पुत गया। दरोगा की टेबिल पर दोनों हाथ टिकाते बोला-

''मैं ये पूछ रहा हूँ, दरोगा जी, जब आप लोग अवाम की सुरक्षा नहीं कर सकते तो कुछ चूड़ियाँ लेकर भेज दूँ, आप लोगों को.....साला........गाजर-मूली की तरह आदमी कटवा रहे हो. ....लगता है पनिश्मेन्ट पोस्टिंग पर आए हुए हो........।''

-दरोगा साहब को करंट सा लगा। दन्न से सीधे खड़े हो गए- ''क्या कहा.......तेरी तो. ....''-सहसा कुछ सोच कर हाथ रोक लिया-

''अबे गधों, तुम लोगों के मुँह तो हराम लगी है। जब गरीब किसानों को लूटोगे, उन्हें बेमौत मरने को मजबूर करोगे तो वे तुम्हारी हत्या नहीं करेंगे तो क्या आरती उतारेंगे.....सरकार तो किसानों को उजाड़ फेंकने पर तुली है ही, तिस पर तुम साले भी उनकी मामूली सी सम्पत्ति बर्दाश्त नहीं कर पाते......मोटी रकम पाकर किसान का गला काटते हो, तब कहाँ रहती है तुम्हारी मर्दानगी.......?-फिर पीछे मुड़े-

''सुन्दर.....,इनके मल्वे को रूखसत कर दो......''

-वह तीनों सिपाही के साथ दाँत पीसते हुए लाश की तरफ बढ़ गए......।कुछ सेकण्ड बाद वही धोती-कुर्ते वाला आदमी दरोगा साहब के केबिन में धड़धड़ाता हुआ घुसा-

''दरोगा साहब, वह मेरा भाई नहीं है.....मेरा मतलब है कि सिर मेरे भाई का है पर धड़ नहीं।.......धड़ किधर है.......?''

''बड़े कमज़र्फ हो, ये भी कोई बात है, ये कैसे मुमकिन है........?''

''बात घुमाओ मत, इसके साथ दो लाशें और थीं, उन्हीं में से किसी का है.....।''

''यदि ऐसा है भी है, तो अब क्या हो सकता है, लाशें जा चुकी हैं, सम्भवतः उनका क्रिया-कर्म भी हो चुका होगा। उन्हें हासिल करने का अब क्या उपाय.......? बाई द वे........, आप कैसे कह सकते हैं कि वो धड़ आपके भाई का नहीं है। कोई पहचान......?''

''.....अमां वाह.....खूब रही, अमां.......हम मुसलमान हैं......मुसलमान........''-अन्तिम शब्द उसने थोड़ा खींच कर कहा, ऊँचे स्वरों में, फिर आगे जोड़ा-

''.......और वो लाश क़ाफिर की है.......काफ़िर की......''

क़ाफिर शब्द पर दरोगा साहब भीतर ही भीतर तिलमिला गए। लेकिन मौका मुआमले की नजाकत समझते हुए चुप रहे। उन तीनों को बैठने का संकेत किया, अब वह सोच रहे थे समस्या का निदान कैसे हो......? फाइल निकाली, बाकी दोनों लाशों के पते खोजने लगे। जेहन में चक्की चल रही थी...... '' एक तो तीन हत्या की जवाब देही थी ही, तिस पर ये चूक.....तब तो नहीं, लेकिन इस बार निलम्बन तय है, नहीं तो पनिश्मेंट तो हर हाल में......''

- गहरी सांस के साथ एक जगह उंगली टेक दी। दोनों पते बारी-बारी से पढ़े और दोनों पतों पर दो-दो सिपाही इस ताक़ीद के साथ रवाना कर दिए कि ''लाशें फौरन लेकर आओ''।

फिर शान्त बैठकर दरोगा साहब अल्ला पीर मनाने लगे। बीच-बीच में वह तीनों व्यक्तियों के चेहरों की ओर एक गहरी तोष के साथ देख लेते। तीनों व्यक्ति भाव-शून्य छत तक रहे थे। गर्मी और उसम से छट पट करते। गाहे-बगाहे मुख्य द्वार से हल्का झोंका आ जाता तो कुछ राहत मिलती। कभी-कभी वे एक साथ बाहर देखने लगते। उन्हें आए एक घण्टा हो गया था, और सिपाहियों के गए भी पौन घण्टा होने को था, दूर झोपड़ियों में दिए टिमटिमाने लगे थे। दरोगा साहब बैठे-बैठे पहलू बदले जा रहे थे। मच्छरों की भन्न-भन्न से उकताहट सी होने लगी थी। तभी बाहर आकर एक ''सुमो'' रूकी। दरोगा की आँखों में अचरज छलक आया। अभी वह अनुमान लगा ही रहे थे कि उसी वृद्धा ने भीतर प्रवेश किया-''हुजूर......वो लाश मेरे बेटे की नहीं, किसी मुसलमान की है, मैं वापस ले आई हूँ......''-सुनते ही दरोगा समेत तीनों व्यक्ति बाहर की तरफ बेतहाशा भागे। वृद्धा सीधी लॉक अप की तरफ दो व्यक्तियों के साथ भागी। दरोगा साहब दालान में खड़े लम्बी-लम्बी साँसें खींचते रहे।

डॉ0 विद्या सिंह

1.

सोनू और मुन्ना को, घरेलू काम के लिए रखा गया उन्हीं का हम उम्र रम्मू, बड़ी हसरत भरी निगाहों से देख रहा था। सोनू की पिदाने की बारी थी। सोनू ने जब गुच्ची में गुल्ली के पीछे डंडा लगाया तो रम्मू ने मन-ही-मन अपने आप को उसकी जगह खड़ा कर दिया और जब गुल्ली उछली, तो उसे लपकने के लिए वह मुन्ना के स्थान पर जा खड़ा हुआ। उसे बहुत पछतावा हुआ, जब गुल्ली मुन्ना के हाथ में आते-आते छूट गई। वह हाथ मलने लगा, जैसे गुल्ली मुन्ना के हाथ से नहीं, उसी के हाथ से छूटी हो। सोनू बड़ी देर से पिदाए जा रहा था और मुन्ना दौड़-दौड़ कर थक चुका था।

''अब बस करते हैं सोनू। घर में डाँट पड़ जाएगी। बड़ी देर हो गई है।'' ''बस यह दांव दे दो, फिर जैसा तुम कहोगे,'' सोनू चिरौरी पर उतर आया था ''नहीं-नहीं अब और नहीं।'' मुन्ना ने गुल्ली सोनू के सामने जमीन पर फेंक दी और घर जाने को मुड़ गया।

सोनू मायूस हो गया। तभी उसकी नजर रम्मू पर पड़ी। ''रम्मू तुम खेल लो थोड़ी देर।'' उसके स्वर में आदेश था ''नहीं सोनू भइया, मैं तो बस ऐसे ही..........।'' अपने शरीर को ठेलता हुआ रम्मू वहाँ से हट गया।

2.

दशमी के मेले में, पिता शेखर को घुमाने ले गए, तो किसी भी परिचित से उसकी तारीफ कर बैठते, ''देखिए कितना अच्छा बच्चा है। इतनी देर से मेले में घूम रहा है, लेकिन किसी चीज की फरमाइश नहीं कर रहा है।'' शेखर दुकानों पर सजे चमकीले धनुष-बाण, तलवारें देख रहा ललचा जाता, किन्तु पिता की प्रशंसा उसकी ललक पर भारी पड़ जाती। पिता ने उसे झूले में झुलाया, कुल्फी खिलाई और घर के लिए मिठाई बँधवा कर जब वह घर आए, शेखर माँ के सामने बिफर पड़ा, ''मैं अच्छा बच्चा नहीं हूँ। मुझे धनुष-बाण चाहिए। उसने रो-रो कर घर में कोहराम मचा दिया। गुस्साए पिता ने उसे दुबारा स्कूटर पर बैठाया और मेले में ले गए। इस बार किसी परिचित से कह रहे थे, ''इतना जिद्दी बच्चा है कि घर जा कर, मुझे फिर मेले में आना पड़ा है। पहले नहीं बता सकता था कि इसे धनुष-बाण चाहिए। बरखुरदार मेले में आए मेरे साथ, जिद कर रहे थे मम्मी के सामने!

3.

नाव में कई सवारियाँ बैठी थी। एक सज्जन पहाड़ों पर बादल फटने की किसी घटना की चर्चा कर रहे थे। सादे कुर्ते-धोती में पेशे से भूगोल के प्रवक्ता कृपाशंकर ने कुछ जिज्ञासा दिखाई तो वह सज्जन थोड़े उग्र हो गए। ''आपके समझ में आने योग्य बात नहीं है यह। इसे तो यह समझ सकते हैं।'' उनका इशारा कृपाशंकर के साथ जा रहे, कमीज-पतलून में सजे उनके चचेरे भाई की ओर था। भाई शर्म से गड़ गए क्योंकि बहुत कोशिशों के बाद भी वह दसवीं पास नहीं कर पाए थे।

1. भरोसा

सुमन सिंह

कॉपी-किताब बेचो, लोहा-टीना, शीशी बोतल रद्दी अख़बार बेचो......ऽ......ऽ.......ऽ।'' रद्द वाले की आवाज़ सुन वह कुछ पल के लिए बेचैन हो जातीं, दरवाजें तक दौड़कर जातीं फिर मायूस हो लौट आतीं। जब भी कोई रद्दी वाला उस कॉलोनी में आता उनका मन उदास व बेचैन हो जाता। कई-कई दिन लगते मन को शांत व सहज होने में। घर का कोई सदस्य इस रहस्य को नहीं जान पाता कि आख़िर रद्दी वाले से उन्हें क्यों परेशानी है। वो अंदर ही अंदर घुटती रहतीं। एक दिन पति से नहीं रहा गया तो उन्होंने पूछ ही लिया, ''क्या बात है सरोज, जब भी कोई रद्दी वाला आता है तुम परेशान हो जाती हो?''

''नहीं कोई ख़ास बात नहीं, बस यूँ ही।'' उन्होंने टालने की गरज से कहा। लेकिन पति नहीं माने कई सालों से वे पत्नी को इस स्थिति में देख रहे थे। उन्होंने जब बहुत दबाव डाला तो पत्नी रो पड़ीं।

''एक दिन शाम के समय जब आप ऑफिस में थे तो एक रद्दीवाला जो पहले भी कई बार आकर रद्दी ले गया था, बहुत ही परेशान सा रोता हुआ आया और बोला कि उसका बेटा बहुत बीमार है और उसे फौरन अस्पताल में भर्ती कराने के लिए चार हज़ार रुपये की सख़्त जरूरत है। वह अपने बेटे की सौगंध खाकर रोने लगा कि मैं आपके सारे पैसे धीरे-धीरे लौटा दूँगा। मुझसे उसकी हालत देखी नहीं जा रही थी सो मैंने उसे चार हज़ार रुपये दे दिए पर आपसे नहीं बता पाई, मुझे लगा कि वो कभी न कभी तो आयेगा ही रुपये लौटाने......पर.....पर वो नहीं आया चार साल बीत गये।''

''सरोज, तुम भी न एकदम बुद्धू ही हो, ऐसे किसी अजनबी को इतने पैसे देते हैं, क्या नाम था उसका?'' पति गुस्से से तमतमा रहे थे।

''नहीं पता'' सरोज के आँसू थम नहीं रहे थे।

''जब नाम नहीं पता, घर का नहीं पता तो किस आधार पर तुमने उसे पैसे दिए।'' गुस्सा चरम पर था।

''भरोसा था सो........।'' पछतावे और दुःखी से भरी वो फूट-फूट कर रो रही थी।

2. दहेज-हत्या

स्त्रियों के ऊपर हो रहे अत्याचार के विरोध में न जाने कितने संगठनों के साथ मिलकर उन्होंने काम किया था। दहेज-उत्पीड़न, घरेलू हिंसा जैसे मुद्दों पर जब उनकी लेखनी चलती तो लोग मुग्ध हो जाते। कहानियाँ, कविताएँ और आलेखों के द्वारा समाज में फैली इन कुरीतियों पर वो करारा प्रहार करतीं। उनके भाषण ओजस्वी होते। शहर में उनका नाम एक प्रतिष्ठित समाजसेवी के रूप में प्रसिद्ध था। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। उनकी विभिन्न साहित्यिक-सांस्कृतिक गोष्ठियों में भागीदारी, विविध मुद्दों पर अनवरत लेखन कि यकायक वो गुमसुम रहने लगीं। सेमिनारों, गोष्ठियों से बुलावा आता पर न जातीं, पढ़ना-लिखना सब ठप्प हो गया। उनकी इस अरुचि और असहयोग का कारण जानने के लिए उतावले हितैषियों ने जब उनको बहुत कुरेदा तब वह फफक पड़ीं- ''दहेज-हत्या के न जाने कितने आरोपियों को मैंने सज़ा दिलवाने के लिए संघर्ष किया, आंदोलनों में हिस्सा लिया, नारी-मुक्ति अभियान में बढ़-चढ़कर भागीदारी की पर उसक एक घटना ने मुझे झकझोर दिया है। मेरी सीधी-सादी बहन की बहू ने आत्महत्या कर ली और बहन और पूरे परिवार पर दहेज-हत्या का आरोप मढ़ दिया गया। मैं उनकी बेगुनाही की चश्मदीद गवाह हूँ। जिस दिन यह कांड हुआ मैं वहीं थी पर कोर्ट में मेरी गवाही से भी कुछ नहीं हुआ। बहन और पूरे परिवार को निरपराध होते हुए भी सज़ा मिली। उन्हें जेल जाते हुए विवश देखती रही और सोचती रही कि ऐसे ही न जाने कितने निरपराध दहेज-हत्या के झूठे आरोप में जेल में ठूंस दिए जाते होंगे कईयों के इस हाल की जिम्मेदार तो मैं स्वयं हूँ। बिना सच जाने दहेज-हत्या में सैकड़ों आरोपियों को निर्ममता से सज़ा दिलवाने की पक्षधर रही, न जाने कितने निर्दोष लोगों की गुनहगार बन गयी अनजाने ही........।''

रो-रो कर उनकी आँखें सूज गयी थीं। हथेलियों पर टिके आँसुओं से लथपथ चेहरे पर पश्चाताप साफ झलक रहा था।

आधुनिक समाज में आधुनिक हो रही है स्त्री-विरोधी हिंसा

भाषा सिंह

देश के चमचमाते विकास का जिस तरह से ढिंढोरा पीटा जा रहा है, उतनी तेजी से यह भी विज्ञापित किया जा रहा है कि महिलाएं अधिकार संपन्न हो गई हैं, उनकी मुक्ति की राह खुल गई है। यह समझाने की कोशिश हो रही है कि स्त्री हिंसा- उनके साथ भेदभाव अब बीते जमानों की बात हुई, या पिछड़े समाज- गांव देहात की परिघटना रह गई है। क्या वाकई ऐसा है? आसपास हो रही घटनाओं पर नजर डालें तो कड़ुवी हकीकत सामने आती है।

महाराष्ट्र के सतारा जिले में एक दिल को झकझोर देने वाली घटना औरतों की बराबरी के ढिंढोरे पर तमाचा मारती लगती है। इस इलाके में अनगनित परिवारों ने घर में जन्मी बच्ची का नाम ही नाखुशी रख दिया था। ऐसी अनगिनत बच्चियां उस इलाके में बड़ी हो रही है, इसी नाम से वे स्कूल जा रही है। ये वो लोग हैं। जिनके पास बच्चियों को भ्रूण में मारने के संसाधन नहीं होगें, वरना बड़े-छोटे शहरों में ये काम सज़्य परिवार पहले ही कर लेते हैं। ये इस आजाद भरत में, विकास की राह में चमचमाते भारत में हो रहा है, जहां लड़की का जन्म इतना कष्टकारी है कि उसे नाखुशी के नाम से ही बुलाया जाता है।

पिछले साल सुप्रीम कोर्ट ने सह-जीवन पर अपने एक फैसले में रखैल (कीप) शब्द का इस्तेमाल किया। इस शब्द के इस्तेमाल के विरोध मं देश की जानी- मानी वकील और एडिशनल सोलिसिटर जनरल ऑफ इंडिया इंदिरा जयसिंह ने कहा..........21वीं सदी में कोर्ट किस तरह से किसी महिला के लिए यह शब्द इस्तेमाल कर सकता है। क्या हम किसी महिला के लिए यह कह सकते हैं कि उसने किसी पुरूष को रखैल रखा हुआ है? इंदिरा जयसिंह ने कहा कि जिस तरह के शब्द कोर्ट ने सह-जीवन पर फैसला सुनाते हुए इस्तेमाल किए हैं, वह भीषण रूप से महिला विरोधी हैं। उन्होंने रखैल शब्द के अलावा-वन नाइट स्टैंड यानी एक रात के संबंध के प्रयोग को भी आपत्तिजनक बताया और कहा कि इस तरह की शब्दावली कोर्ट की स्त्री पक्षधार छवि को तोड़ती है। इस फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सह-जीवन में रहने वाली महिला मुजारा-भत्ता के लिए तभी दावा कर सकती है जब उसका संबंध चार स्थितियों को पूरा करने वाला हो-पहला, वह युगल समाज में दंपत्ति की तरह रहता हो अथवा माना जाता हो, दूसरा, उनकी कानूनी उम्र शादी करने की हो, तीसरा, वे कानून शादी करने योग्य हो जिसमें उनका अविवाहित होना शाामिल है और चौथा, वे लंबे समय से साथ रह रहे हों। इसी क्रम में कोर्ट ने कहा कि अगर कोई आदमी किसी रखैल-कीप को रखता है जिसे वह पैसा देता है और उसका इस्तेमाल मूलतः अपनी यौन इच्छा की पूर्ति के लिए करता है या नौकरानी के तौर पर रखता है, तो उसे सह-जीवन नहीं माना जा सकता। इस फैसले की तीखी आलोचना सिर्फ इन्दिरा जयसिंह ने ही नहीं की, समाज के व्यापक समुदाय ने इसे स्त्री विरोधी माना।

भ्रूण हत्याएं बेलगाम जारी हैं। जो इलाका जितना संपन्न है, जितना पढ़ा लिखा वहां लड़कियों की हत्याएं उतनी ही अधिक हैं। दिल्ली, हरियाणा, पंजाब इसमें अव्वल है। हाल में जारी हुए

आंकड़ो से फिर ये सच सामने आया है कि दिल्ली के संभ्रांत समझे जाने वाले इलाकों में लिंग अनुपात खतरनाक स्तर पर पहुंच गया है। हरियाणा में लड़कियों की संख्या इतनी कम हो गई है कि वहां लड़के कुंवारे रह जा रहे हैं। पिछले चुनावों में तो–दुल्हन लाकर दो, तब वोट लो, के नारे लगे। दक्षिण भारत –उड़ीसा से वहां बहुएं लाई जा रही हैं। यही हाल राजस्थान का है । विकास और उच्च तकनीक ने लड़कियों से छुटकारा पाना आसान कर दिया है और स्त्री जाति के लिए अस्तिव का संकट पैदा करती अदृश्य हिंसा बेलगाम जारी है।

पिछले कुछ सालों से कई प्रेमी युगलों की हत्याओं का सिलसिला जारी है। उत्तर भारत की खाप पंचायतें बढ़ चढ़कर न सिर्फ इन हत्याओं को अंजाम दे रही है बल्कि इनके पक्ष में सरेआम बयानबाजी कर रही हैं। इन खापों के ऐतिहासिक महत्व का गुणगान करने में लगी हुई हैं। प्रेम के विरोध में एक अभियान चलाया जा रहा है। प्रेम करती स्त्री लड़की उनकी दुश्मन नंबर वन बनी हुई है और इसे वे किसी भी सूरत में खत्म करके समाज को एक नैतिक पाठ पढ़ाना चाहते हैं। ये हत्याएं दूर–दराज हो रही है, ऐसा नहीं । देश की राजधानी में ऐसी खौफनाक वारदातें हुई, जिनमें पुलिस प्रशासन की संदिग्ध भूमिका सामने आ चुकी है। किसी भी मामले में कोई ठोस प्रगति कानूनी दृष्टि से नही हुई, सिवाए एक- मनोज और बबली के। इन हत्याओं को रोकने के लिए अलग से एक कठोर कानून बनाने की बात हुई, उसका मसौदा भी तैयार हुआ, लेकिन मामला अभी ठंडे बस्ते में है। न तो राजय सरकारें और न ही केन्द्र सरकार खापों के वोट बैंक से पंगा लेने को तैयार हैं। एक पूर्व केंद्रीय मंत्री ने तो यहां तक कहा कि औरतों को मारना कोई नई बात नहीं है, सदियों से होता आया है। अब मीडिया के चलते हंगामा है, पहले कोई आवाज न उठाता था।

ये सारी घटनाएं व सोच समाज में बड़े पैमाने पर महिलाओं पर होने वाली हिंसा की नजीर हैं कहीं उत्पीड़न मानसिक है, कहीं शारीरिक तो कहीं बौद्धिक–पर है वह महिला हिंसा ही। सुप्रीम कोर्ट ने अनायास ही रखैल शब्द का इस्तेमाल नहीं किया और न ही ऐसे ही कन्या भ्रूण हत्याएं बढ़ रही हैं। स्त्री विरोधी सोच अब भी बरकरार है, पर उसका वार ज्यादा महीन या यूँ कहें परिष्कृत हो गया है। जिस तेजी से प्रेमी युगलों की हत्याएं एक प्रवृत्ति का रूप अख़्तियार कर रही है, उससे यह सफ दिखाई देता है कि स्त्रियों की बढ़ी हुई पहल कदमी से ठहरे हुए समाज में छटपटाहट है।

अंतर यह आया है कि हर स्त्री विरोधी कदम का मुकाबला हो रहा है। एक तरफ स्त्री विरोधी सोच बरकार है तो उससे टक्कर लेने के लिए विभिन्न तबके की महिलाएं भी मुखर हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि देश में इस समय जितने आंदोलन चल रहे हैं- जनता से जुड़े उनकी कमान मुख्यतया औरतों के हाथ है। उनके नेतृत्व में लोगों का विश्वास भी बढ़ रहा है। लेकिन रास्ता लंबा है। इस मुखरता से यह मान लेना कि समाज में स्त्री विरोधी सोच या लिंग आधारित हिंसा कम हो रही है, गलत होगा। आज भी सुपर वुमेन की मांग बाजार वैसे ही परोस रहा है, दहेज आज भी लड़कियों के जीवन पर संकट की तलवार की तरह लटक रहा है, जो अक्सर हमारे सभ्य समाज में दिखाई नहीं देता। इन सारे रूपों को·जानकर ही उनके खिलाफ आवाज मुखर की जा सकती हैं शुक्र है, ये आवाज छोटे–बड़े कोने से उठ रही है और यही सबसे बड़ी बात है।

हिंदी ग़ज़ल का लहजा

अशोक मिजाज

'हिन्दी भाषी जिस ज़ुबान में बात करते हैं वह आम बोल चाल की ज़ुबान है इसे हिंदी वाले हिंदी और उर्दू वाले उर्दू कहते हैं हिंदी कविता में हिंदी का प्रयोग बहुत बाद में शुरू हुआ काफी दिन कविता में ब्रज भाषा का प्रयोग चालू रहा। द्विवेदी युग में आधुनिक हिंदी में ही कविता लिखने का आन्दोलन चला आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस बात पर बल दिया की कविता ब्रज भाषा में और गद्य आधुनिक हिंदी में नहीं चलना चाहिए, जैसे गद्य लिखा जाता है वैसे ही पद्य लिखा जाये। इसका फल ये हुआ कि गद्य पद्य की भाषा एक रूप हो गयी, लेकिन ग़ज़ल में हिंदी का व बोलचाल की भाषा का प्रयोग शुरू से होता आ रहा है''। यह विचार हिंदी के विद्वान कवि त्रिलोचन शास्त्री जी ने मेरे ग़ज़ल संग्रह की समीक्षा में लिखे थे।

ग़ज़ल में शुरू से ही हिंदी भाषा के प्रयोग के उदाहरण स्वरूप यहाँ मैं उर्दू शायरी के बाकायदा शुरू होने के पहले के शायर जो शाहजहाँ के दरबार में मीर मुंशी थे, जनाब चंद्रभान बरहमन के दो शेर प्रस्तुत कर रहा हूँ-

खुदा ने किस शहर अन्दर हमन को लाय डाला है
न दिलबर है न साकी है न शीश है न प्याला है
बरहमन वास्ते स्नान के फिरता है बगिया में
न गंगा है न यमुना है न नद्दी है नाला है

हिंदी उर्दू के इस मिले जुले असर से जो लहजा (बात करने का ढंग TONE) बना उसे नए ज़माने ने हिंदी ग़ज़ल का नाम दिया अर्थात हिंदी ग़ज़ल की शुरुआत यहीं से मानी गयी है।

यहाँ पहले शेर में शह्न को शहर और पियाला को प्याला की तरह प्रयोग किया गया है जबकि इसी तरह के प्रयोग के लिए दुष्यंत जी पर आपत्तियां दर्ज की गयीं थीं। लेकिन दुष्यंत जी की ग़ज़ल में भी हिंदी उर्दू के अनोखे संगम से एक ऐसा लहजा बना जो अव्वल से आखिर तक कायम रहा और उनकी मकबूलियत का सारा दारोमदार इसी लहजे और अंदाज़-ए-बयाँ (काव्य शैली) पर है। और यही लहजा हिंदी ग़ज़ल का मानक लहजा कहलाया जिसमें आम बोलचाल के शब्दों के साथ साथ हिंदी और उर्दू के शब्दों को बहर और विषय वस्तु की ज़रूरत के अनुसार पिरोया गया है- उदाहरण

चीड़ वन में आँधियों की बात मत कर
इन दरख्तों के बहुत नाज़ुक तने हैं

यहाँ छंद की मजबूरी से पेड़ों की जगह दरख्तों का प्रयोग किया गया है

लेकिन इससे दुष्यंत जी का लहजा और मुखर हुआ है जबकि इसी ग़ज़ल के दूसरा शेर देखें-

जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में
हम नहीं हैं आदमी हम झुनझुने हैं

इस शेर में दुष्यंत जी को उर्दू शब्द का सहारा नहीं लेना पड़ा लेकिन उनका लहजा और अंदाज़े बयां वही रहा साथ ही झुनझुन का काफ़िया भी उन्होंने हिंदी गीतों की परंपरा के अनुसार बाँधा है जो हिंदी ग़ज़ल को एक नयी पहचान देता है

कहीं कहीं उन्होंने अपने व्यंग्यात्मक लहजे को और असरदार बनाने के लिए भी उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है- उदाहरण

कहां तो तय था चरागाँ हरेक घर के लिए

कहाँ चराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए

भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ

आज कल दिल्ली में है ज़ेरे-बहस ये मुद्दआ

विषय वस्तु के आधार पर भी उन्होंने कई उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है जिनका सटीक हिंदी शब्द नहीं मिल सकता या जिनका हिन्दी शब्द ग़ैर-गज़लिया ज़ुबान का शब्द है क्योंकि ग़ज़ल की अपनी एक गज़लिया ज़ुबान होती है,

अर्थात यदि चन्द्रभान बरहमन्न और दुष्यंत को हिंदी ग़ज़ल का शायर माने तो हिंदी ग़ज़ल में उर्दू शब्दों का प्रयोग सौ फीसदी जायज़ है कमाल की बात ये है कि आज के तथाकथित हिंदी ग़ज़ल के हिमायती दुष्यंत जी द्वारा उर्दू शब्दों के उपयोग पर आपत्ति जता रहे हैं वो शायद हिंदी ग़ज़ल को सिर्फ हिंदी भाषा देना चाहते हैं मेरी नज़र में ऐसा करना पाँव में बेड़ियाँ बाँध कर नृत्य करने जैसा हैं।

यह सत्य है कि ख़ुद दुष्यंत ने कभी अपने आप को हिंदी ग़ज़ल का शायर नहीं कहा है और यह भी कटु सत्य है कि ख़ुद हमने दुष्यंत जी को हिंदी ग़ज़ल के शायर के रूप में निरूपित करके उनकी प्रसिद्धि के दायरे को कम आँका है उदाहरण के लिए उनका शेर जो न सिर्फ हिंदी उर्दू ग़ज़ल प्रेमी बल्कि हर सजग हिन्दुस्तानी की जुबां पर सफ़र कर रहा है, प्रस्तुत कर रहा हूँ......

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं

मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए,

उन्होंने ग़ज़ल में उर्दू शब्दों के प्रयोग हिंदी बोलचाल के हिसाब से किये जाने पर बल दिया है। क्योंकि उनकी भी मुख्य कोशिश हिन्दी और उर्दू को गंगा जमुना कि तरह मिला देनी की रही है।

और उन्होंने अपने लहजे और अंदाज़-ए-बयाँ से यह बात साबित भी कर दिखाई है, मैंने लहजे का ज़िक्र बार बार इसलिए किया है कि ग़ज़ल के पारखी इस बात से अच्छी तरह वाकिफ हैं कि ग़ज़ल में लहजा या अंदाज-ए-बयाँ (काव्य शैली) का कितना महत्व है। शाइर का लहजा ही उसकी पहचान होता है, हिन्दुस्तान अनेकों भाषाओं और बोलियां का देश है इसलिए यहाँ हर दस पंद्रह किलोमीटर की दूरी पर बोलियाँ और बोलने का अंदाज़ (लहजा, TONE) भी बदल जाता है और काबिल लोग उनके बोलने के अंदाज़ (लहजा) से ये अंदाज़ा लगा सकते हैं कि बोलने वाला हिन्दुस्तान के किस इलाके का है व किस तबके का है।

हिंदी और उर्दू ग़ज़ल में मूलतः [illegible] लहजे का फर्क होता है।

''सॉरी यार माफ़ करना में जरा सा लेट हो गया''

यह वाक्य आज की आम बोलचाल कि भाषा का वाक्य है जिसे हिंदी में लिखा जाये तो हिंदी का और उर्दू में लिखा जाये तो उर्दू का वाक्य कहा जायेगा लेकिन उर्दू में माफ़ की जगह मुआफ़ और जरा की जगह ज़रा लिखा जायेगा। कोई भी शब्द जब एक भाषा से दूसरी भाषा में जाता है तो उसका उच्चारण बदल बदल जाना स्वाभाविक है जिसे आम बोलचाल की भाषा में स्वीकार कर लिया जाता है इसीलिए आम बोलचाल की भाषा में शायरी करने वालों के शेरों में ऐसे शब्दों का प्रयुक्त हो जाना सहजता व सरलता की निशानी है और इनके प्रयोग पर ऐतराज़ करना नासमझी व दकियानूसी कहा जायेगा। इसलिए हिंदी ग़ज़ल का लहजा उर्दू ग़ज़ल से भिन्न होता है और इसी लहजे के आधार पर हिंदी ग़ज़ल की पहचान की जानी चाहिए। लहजा और अंदाज़-ए-बयाँ (काव्य शैली) के ग़ज़ल में महत्व को समझने के लिए वाणी प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित ''ग़ज़ल दुष्यंत के बाद भाग-2'' की भूमिका में जनाब निश्तर खानकाही का आलेख ''ग़ज़ल क्या है'' के कुछ अंश अपनी बात के समर्थन में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

जनाब निश्तर खानकाही कहते हैं- ''ग़ज़ल में व्यक्तिगत शैली अथवा ग़ज़लकार के निजी एवं सशक्त लहजे का विशेष महत्व है। इस वाक्य में प्रयोग किये गए ''सशक्त'' शब्द पर विशेष रूप में ध्यान दें। हमारा कहना है कि ग़ज़ल के शेरों पर ग़ज़लकार कि व्यक्तिगत छाप यदि साधारण हैं, अद्‌भुत गहरी एवं आकर्षक नहीं हैं, सशक्त और प्रभावपूर्ण नहीं है तो वह साहित्य में कोई बड़ा स्थान नहीं बना सकेगी''। निश्तर खानकाही लेख के अंतिम पेराग्राफ में कहते हैं-

''दरअस्ल, नए से नया कहने और ढूंढ-ढूंढ कर नए से नए प्रतीक लाने की होड़ में इन दिनों उर्दू हिंदी भाषाओं के ग़ज़लकारों को इस संबंध में संयम बरतना होगा उन्हें यह रहस्य भी जान लेना चाहिए कि नवीनता या नयापन शब्दों में नहीं होता, विचार और शैली में होता है।''

यह भी सत्य है कि ग़ज़ल ग़ज़ल है इसे लिखने के लिए इसके तमाम मापदंड, गहराइयाँ, बारीकियाँ, व इतिहास की जानकारी अति आवश्यक है, बिना जानकारी के या थोड़ी बहुत जानकारी के साथ लिखी गयी ग़ज़ल मात्र खानापूर्ति कहलाएगी और छंद तोड़कर कही गयी ग़ज़ल को फ़िलहाल ग़ज़ल नहीं कहा जायेगा। हो सकता है भविष्य में कविता की तरह हिंदी ग़ज़ल में भी छंद तोड़कर बात कहने की परम्परा विकसित हो।

अंत में अपने एक शेर से अपनी बात अगले आलेख तक के लिए समाप्त करता हूँ।

इन आंसुओं से लहजे को सींचा करो 'मिज़ाज'
जिंदा वही है पेड़ जो पानी के पास है।

परिचय

23 जून 1957 को सागर म0प्र0 में जन्में शाइर अशोक 'मिजाज' उर्दू-हिन्दी शाइरी में मील का पत्थर बन के उभरे हैं। अपने आसान, और असरदार लहजे को उन्होंने ऐसी भाषा दी है कि उनकी ग़ज़ल उर्दू में छपे तो उर्दू ग़ज़ल कहलाती है व हिन्दी में छपे तो हिन्दी ग़ज़ल की पहचान बन जाती है।

उनके दो ग़ज़ल संग्रह क्रमश: 'समन्दरों का मिज़ाज' 1995 और ग़ज़ल नामा- सन् 2000 में उर्दू लिपि में साया हुये जिस पर बड़े बड़े शाइरों में अपनी सकारात्मक राय दी और अशोक मिज़ाज उर्दू शाइरी में अपना स्थान बनाने में कामयाब रहे।

वाणी प्रकाशन दिल्ली द्वारा सन् 2006 में प्रकाशित हिन्दी ग़ज़ल और नई ग़ज़ल का संग्रह 'आवाज़' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसके कई संस्करण बाज़ार में आ चुके हैं।

ग़ज़ल

अशोक मिज़ाज

हम लोग अपनी राह की दीवार हो गये
इक दूसरे के वास्ते तलवार हो गये

घर को गिराने वाले सियासी मिज़ाज थे
ग़म में शरीक होके वो ग़मख़्वार हो गये

अब तो बुलंद और ज़रा हौसला करो
पत्थर जो मील के थे वो दीवार हो गये

तूफाँ में हमको छोड़ के जाने का शुक्रिया
अब अपने हाथ पाँव ही पतवार हो गये

परदे की बात परदे पे खुलकर जो आ गई
बच्चे समय से पहले समझदार हो गये

कलयुग का दौर सच है मशीनों का दौर है
इन्सान जिनके सामने बेकार हो गये

इतनी ज़रा सी बात पे हैरान है 'मिज़ाज'
काग़ज़ के फूल कैसे महकदार हो गये

ऐसा लगता है कि ये उम्र पहन आया है
अब मेरे सर पे भी कुछ रंगे-कफन आया है।

उम्र मर मर के गुज़ारी है, अभी तक हमने
अब कहीं जा के हमें जीने का फ़न आया है।

लोग क्यूँ चाहते हैं उम्र से भी कम दिखना
कैसी तहज़ीब है ये, कैसा चलन आया है।

ऐसा लगता है कि मैं तुझसे बिछड़ जाऊँगा
तेरी आँखों में भी सोने का हिरन आया है।

यूँ तो दुनिया तेरी अच्छी है, बहुत अच्छी है
एक ही शख़्स है, जिस शख़्स पे मन आया है।

रंगे - कफ़न = सफ़ेद रंग

नफ़रतों पे वार करना है

ज़िंदगी वीरान है गुलज़ार करना है
उम्र भर इक बेवफ़ा से प्यार करना है

कागज़ों के भी कलेजे फट गये आख़िर
अब कलम में और कितनी धार करना है

ये ग़जल इक लम्बी दूरी की मिसाइल है
इसका मक़सद नफ़रतों पे वार करना है

एक दुल्हन जिस तरह सजती सँवरती है
हर ग़ज़ल का इस तरह श्रृंगार करना है

इस नगर के आदमी भी पत्थरों से हैं
और हमें ज़ज्बात का इज़हार करना है

• •

क्या ख़बर थी रंजिशें ही दर्मियाँ रह जायेंगी
हम गले मिलते रहेंगे दूरियाँ रह जायेंगीं

ये नगर भी कारख़ानों का नगर हो जायेगा
इन दरख़्तों की जगह कुछ चिमनियाँ रह जायेंगी

धीरे धीरे शोर सन्नाटों में गुम हो जायेगा
और सड़कों पर चमकती बत्तियाँ रह जायेंगी

रात जब अपने लिहाफ़ों में छुपा लेगी हमें
हाथ मलती और ठिठुरती सर्दियाँ रह जायेंगी

हमने सोचा था कि उनका हाथ होगा हाथ में
क्या ख़बर थी हाथ में बस चिट्ठियाँ रह जायेंगी

ये तमाशा और थोड़ी देर तक होगा अभी
फिर यहाँ बस ख़ाली ख़ाली कुर्सियाँ रह जायेंगी

आग थोड़ी देर को बुझ जायेगी लेकिन 'मिज़ाज'
राख के नीचे दबी चिंगारियाँ रह जायेंगी

• •

कब कहा मँहगी सुरा वाली सुराही चहिए
हमको पानी से भरा बस इक घड़ा ही चाहिए

ज़ख्म खुद सारी कहानी कह रहे हैं जुल्म की
क्या करें फिर भरी अदालत को गवाही चाहिये

वो शिकायत दर्ज कर लें तो गनीमत है बहुत
और तुम्हारी अर्ज है कि कार्यवाही चाहिये

वो हमारी क्या हिफाजत कर सकेंगे बोलिये?
उनको खुद अपनी हिफाज़त को सिपाही चाहिये

हमने जो देखा सुना उस पर गजल कह दी 'मिजाज़'
हमको तमगा चाहिये न वाहवाही चाहिये

रचना तिवारी

(1)

जाने वो किस तरह जिया होगा
जब मेरे नाम को लिया होगा।

अब नहीं दर्द से कराहे वो,
हादसा घाव सी दिया होगा।

उसने दुश्वासियों से लड़ लड़के,
जुर्म का फैसला किया होगा।

उसके दरियादिली की चर्चा है।
उसको सागर ने पी लिया होगा।

हाल लेने कोई नहीं आता,
उसने सच सच बता दिया होगा।

(2)

क्या कहें, क्या न कहें, सब जानकार अनजान हैं,
आदमी अब रंग बदलने, में यहां परेशान है।

मुफलिसी के दौर में गिरती हुई हालत मेरी
ऐसे में तुम साथ हो, दिल सोचकर हैरान है।

आग का दरिया है ग़र तेरी ज़िन्दगी का ये सफर,
मेरे भी जीवन में बसे, तूफान ही तूफान है।

है जहां तेरा न मेरा, चैन है, आराम भी
बस्तियों से आजकल बेहतर यहां शमशान है।

खून रिश्ते का सहज ही अब चलन है बन गया
खून का रिश्ता यहां, दो दिन का बस मेहमान है।

ए.के. मिश्र

तुम्हारी रात रोशन है हमारी रात वीरानी।
तुम्हारी आँख है मदहोश मेरी आँख में पानी।

किसी का नाश्ता भी फाइव स्टारों में होता है
किसी के पेट भूखे हैं किसी के पास बिरयानी।

कहीं पर कार, बंगले, ए0सी0, पी0ए0सी0 सभी कुछ हैं,
कहीं टूटी है मड़ैया भरा है बाढ़ का पानी।

मैं भीगा बारिशों में, बाढ़ में डूबा, मरा लू से,
बड़ी शिद्दत से लेकिन की, हवाई तुमने निगरानी।

तुम्हीं ने की पहलवानी हमारा खून पी करके,
ये जो हम अब कलन्दर हैं तुम्हारी ही मेहरबानी।

लड़े 'अमरेश' तुम कब भूख, खूँरेजी, गरीबी से,
महज फिरकापरस्ती पर करा दी कितनी कुर्बानी।

दो ग़ज़लें

चन्द्रभाल 'सुकुमार'

(1)

कहीं तो कुछ खराबी है हमारे सोचने में भी,
न केवल पत्तियों में, है लगे दीमक तने में भी।

गणित है प्रेम का जितना सरल उतना कठिन भी है,
बहुत कुछ छूट जाता है बहुत कुछ बांधने में भी।

कई सागर छलकते हैं गगन के मौन नयनों में,
कई आकाश मिलते हैं समुन्दर लांघने में भी।

हृदय की म्लान यमुना का प्रदूषण दूर हो कैसे
समय के सर्प डसते हैं कहानी बांचने में भी।

ग़जल के रजत प्याले में ढली है प्रेम की मदिरा
बहुत 'सुकुमार' हाथों ने छुआ है बांटने में भी।

(2)

जिन्दगी ऐसे जिया मैंने कहानी की तरह,
उम्रभर मैंने बहाये अश्रु पानी की तरह।

है चलन अखबार का इस दौर में इतना बढ़ा,
हर शहर लगने लगा है राजधानी की तरह।

आ गयी है रास इसको शुद्ध हिन्दी की हवा,
अब गजल खिलने लगी है रातरानी की तरह।

दे नहीं पाता भटकती भीड़ को कोई दिशा,
आज का चिन्तन खड़ा है चौमुहानी की तरह।

दर्द का इतिहास बनकर रह गया आना सृजन,
है कलम 'सुकुमार' की सूखी मथानी की तरह।

ज्योत्सना मिलन

1. चेंगलूर स्टेशन

हरे मैदान पर टँकी
गोट की तरह थे
नारियल के पेड़,
मैदान में
पेड़ों के कई झुरमुट
हरे समुद्र से उतरा आए
हरे द्वीपों की तरह

घास पर छितरे
बुगले
धरती से उगे से
धरती पर ही उड़ते, फिरते
अपनी चोंच से चुग लेते
दानें और कीड़े
थोड़ी सी धरती को भी
चुग लेते
दानों के साथ-साथ।

2. क

कमल शब्द से
खिल सकता है एक फूल दृश्य में
या
हो सकता है यह
एक नाम
अड़ोस-पड़ोस की किसी लड़की या लड़के का
इसके लिए
उनका कमल की तरह खिले होना
ज़रूरी नहीं
कमल के कमल होने में
उसका,
लक्ष्मीजी का आसन होना शामिल था
इसके अलावा राष्ट्रीय फूल होना भी।

इस बात पर सब सहमत हैं

कि शुरू के 'क' कमल का रहा है
किसी को
नीलकमल, रक्तकमल, अष्टदल, सहस्रदल या ब्रह्मकमल की
शक्ल में याद आ सकता है कमल
इन सबमें
किस कमल का था 'क'।
हो सकता है
एक दिन
वर्ण माला का 'क'
कमल का होना बंद हो जाए
कुछ और का होने लगे
हो सकता है
क कवेलू का हो जाए
या कमीने का।

3. निकलते हुए

थामा था उसने
माँ का हाथ
अपने हाथों में
घर से निकलते हुए
माँ के साथ
गले मिलने या
हाथ मिलाने जैसा कुछ नहीं था
अभी तब तक,
इसी तरह
माँ से लिपटने,
उस पर झूल या लद जाने जैसा भी
कुछ नहीं था
उसके और माँ के बीच।
उस दिन
इतनी असहाय सी लगी थी
सामने खड़ी माँ
कि
पैर छूने के बजाय
लिपट गई थी उनसे

वह पहली बार था
माँ के इतने निकट होना
उनके कंधे पर
सिर टिकाए होने की
कोई स्मृति
नहीं थी उसके सिर के पास
सिमट आई थी माँ
एक बच्ची की तरह
उसके पास।

हाथ छुड़ाते समय
कसकर पकड़ ली थी
माँ ने
उसकी सबसे लंबी उंगली
जैसे वह
उसका विस्तार हो
उससे हिलगा हुआ।

4. उस वक़्त

कितने सालों से
होता आ रहा था यह
जैसे हमेशा से हो रहा हो
कि उठकर
सबसे पहले टोहती थी
उसकी सांस को,
दाएं कंधे के उठने-गिरने में
दिख जाता
सांस का चलना हर बार

उस वक़्त
तेज़ तेज़ चल रही थीं
उसकी सांसें
धौंकनी की तरह
चलना कहा जा सकता था
उनके चलने को।

खाने के पेट में जाने के बजाय
मुँह में वापस लौट आने से पहले भी
चलती थीं

तेज़ तेज़ साँसें।

तय नहीं कर पा रही थी
कौन सी सांसें थीं वे?
उल्टी या सीधी?
सहलाती रही सीने को
कि सांस आ-जा सके
आसानी से,
अगर उल्टी हो तो सीधी हो जाए।

धीमी जब पड़ीं
सहज होती लगीं कुछ देर,
सहलाना छोड़
धरे रही अपनी हथेली को
सीने पर
कि मूँदें रहूँ उसकी साँस को

हथेली को बरकाती हुई
कब छूट निकली वह
पता नहीं चला
हथेली को

साँस भर ही तो बची थी
माँ
हमारे पास!

5. उतनी देर

बीच रात
नींद जब टूटी
नीम अँधेरा घर
भरा था
उसकी कुनमुनाहट से
हो सकता है
नींद उसी से टूटी हो
सांस साधे किया इन्तज़ार
उसके बंद होने का
वह चलती रही
जैसे शाश्वत हो
पहुँची उसके पास
सटकर खड़ी रही पलंग से

वह बाईं करवट सोई थी
हमेशा की तरह

दाईं करवट सोना छोड़ दिया था उसने
पिता के जाने के बाद
दाईं बाजू खाली थी
बाकी दुनिया
अभी भी बाईं तरफ थी

हालांकि माँ को पता नहीं था
कि बाईं करवट सोना
फायदेमंद है सेहत के लिए

एक लम्बी कविता

होम वर्क

विजय गौड़

गणित के एक सवाल को हल करते हुए
न जाने कितने ही
सवालों को कर रहे होते हैं हल,
हाशिये में छुट जा रहे होते हैं
जोड़ घटाव गुणा और भागफल

भागफल का मतलब
भाग्यफल तो होता ही नहीं मेरी बेटी,
बेशक कर्मफल

कर्मफल गीता में भी पढ़ सकती हो,
पर गीता की तरह,
कर्म किये जा फल की चिन्ता न कर
नहीं पढ़ा सकता हूं मैं
और न ही पढ़ना है तुम्हें

तुम्हारी मां का, याकि मेरा
भाग्य नहीं, एक स्वर था
जिसके सहारे रचा हमने जीवन
तुम हो वो

पदार्थ मात्र के यांत्रिक एकीकरण से नहीं
प्रकृति के संश्लेषण से घटा है
रहस्य नहीं, न ही दैवीय चमत्कार
अंश-अंश जीवन, बस ऐसे ही जुटा है

तने की अनुप्रस्थ काट में
दिखती मांस-मज्जा है
कोशिकाओं का छत्ता है
वलयाकार
खाद पानी और उसमें घुली
नाईट्रोजन को सोखकर
हुआ जाता था
चौड़ा और चौड़ा

मोटा और मोटा
गोल-गोल तना
धूप सेंक कर
दुर्गंध खींचती पत्तियों ने भी तो रचा है

देखो काँच के पार
अंधेरा नहीं उजाला है

कोशिकाओं के भीतर बैठे
नाभिक के सिर पर

जो खिंचता हुआ धागा है
उन युग्मकों के निषेचन पर ही है
निर्भर जीवन
नर और मादा भी
उसके संतुलन के हैं प्रकार
एक हो विशिष्ट तो दूजे पर फिर क्यों अत्याचार

विज्ञान भाषा से नहीं
भाषा-विज्ञान में भी प्रयोग
और प्राप्त परिणामों से है

लिपियां तो बस माध्यम है बेटी
जीवन के कार्यव्यापार से ही
ध्वनित होता है समय और
शब्द देते हैं अर्थ

आधुनिक तकनीक की बाइनरी भाषा
अनंत काल तक सुरक्षित रख सकती हैं
अपने पास
घटती हुई घटनाओं को,
सांख्यिकी, तस्वीर
और टंकित होता
चिट्ठा-चिट्ठा इतिहास

सोवियत संघ के विघटन के कारणों को
जाने ठीक-ठीक
क्यों लगाये कयास

आतंक के देवता से पूछें
क्या सुरक्षित है उसकी सी डी में,

बहस करने की कोई जरूरत नहीं
अब बची ही नहीं है बहस
महान बहसें
भविष्य में चीन के विघटन के कारण की भी
कर सकती हैं पड़ताल

महान रचनाएं भी
जन्म लेतीं हैं बहसों के बाद ही

गिरोहगर्दी के दौर में
संभव ही नहीं एक स्वस्थ बहस
आड़े आ सकती है शास्त्रीयता,
तोड़ने की छूट है तो सिर्फ रचना को
आलोचना को नहीं,

आलोचना का मतलब
सिर्फ रचना के सौन्दर्य की व्याख्या है,
सर्जक के भीतर से उद्वेग बनकर बही है जिसकी सरिता

ये जो तीन पंक्तियां हैं
शुद्धतावादी गायेंगे
मैंने तो व्यंग्य में कही है

व्यंग्य पर भी करना है तुम्हें
अपना पाठ तैयार
व्यंग्य का ही स्थायी भाव है हास्य
याकी हास्य का है व्यंग्य
ठीक-ठीक जानने के लिए मुझे भी
सौन्दर्य शास्त्र तो पलटना ही होगा,
तुम खुद ही देख लेना
कितने होते हैं संचारी भाव,
वो भी जान जाओगी

बहस में हिस्सेदार लोगों के नाम कैसे कह दूं, बेटी
उनकी तलाश में जुटा अमला
पहचान सकता है तो पहचान ले-

वे हर वक्त मुस्कराते रहते हैं
कई रातों की जाग से

थके होते हैं उनके शरीर

पर जब मिल रहे होते हैं तो तरोताजा
जिंदादिल

वर्षों से बिछुड़े अपने किसी प्रेमी से मिलने के लिए
उन्हें चाहिए ही होती है
एक सुरक्षित और संदेहों से परे आड़

जन के बीच ही
गच्चा खाता है उनके दुश्मनों का विजन, वरना
जंगल, पहाड़, नदी, नालों, खालों की
सुरक्षित कही जा सकने वाली
किसी भी जगह पर
बाईनरी भाषा में घूमता ग्लोब चौकीदार है,
धरती से नभ तक
उसकी निगाहों से बच नहीं सकता है कोई

घने जंगल के बीच बहती
नदी को पार करने के लिए डोंगी में बैठकर भी
गहराई का खौफ डरा नहीं सकता उन्हें,
रोमांचक कार्रवाइयों का तमगा लूटने में नहीं
दुश्मन से बच निकलने में ही
डूबे हैं कई, डोंगी के डोल जाने पर

जनता का इतिहास
दुश्मन से बचने
और बच-बच कर वार करने से ही बनता है

राज्यों के विस्तार की सनक से लड़ने वाले
राजाओं का इतिहास पाठ्य पुस्तकों में जगह पाता
जन श्रुतियों को देखो तो
जान जाओगी सच्चा-झूठा इतिहास

साहित्य को भी कह सकती हो इतिहास
रचनाओं में देखें
हाशिये के लोगों का जीवन
आंकड़े भर नहीं, उनका अक्श भी दिख जाएगा

हाशिये पर लिखे को पाओ तो छोड़ देना

रचना प्रक्रिया के दौरान भी

कितनी ही रचनायें और चली आ रही होती हैं,
हाशिये पर इधर-उधर
लिख देने पर जिनको
हाशिये की रचना,
और प्रवृत्ति के चलते
हाशिये का रचनाकार
सिर्फ एक जुमला ही होगा
महाकाय लेखकों की
दिल फरेब दुनिया*
महानता के ऐसे ही न जाने कितने
तराने रचती हैं,
रख देना उनको एक तरफ

हाशिये के लोगों पर लिखने के लिए
जरूरी नहीं हाशिये पर भी लिखा ही जाए

समय को जानने के लिए
रिश्तों को जानना बेहद जरूरी है मेरी बेटी
जिन्हें गढ़ता है अर्थतंत्र

पृथ्वी की सतह पर्पटी
है बेहद पतली
खोद-खोदकर बोते हैं बीज
भूमिजीवी
काले-काले गम बूट
लोहे के टोप वाले मजदूर
उतर जाते हैं गहरी खाईयों में
निकालते हैं लोहा, ताँबा
सोना अपार
खोद-खोदकर सुरंग
पहुँच ही जाओगी तुम उस पार,

पृथ्वी से नभ तक
जितने हैं प्राकृतिक स्रोत,
चौधराहट अपनी दिखा रहा है
अनाधिकृत
फैला रहा है बाजार
फिर देता है रुपया उधार
हाँ, हाँ वही अमेरिका है उस पार

उसके झूठे [illegible] से बचना मुश्किल है
पर बचके चलना बेहद जरूरी है

कुमंत्रणाओं का लयबद्ध संगीत
निरंकुश राजसत्ताओं का
एक मात्र लक्ष्य बनकर
गूंज रहा है चारों ओर
बांहों में बांहे डाले
अठखेलियां करते राजनयिक
नये से नये समझौते कर रहे हैं

कितना तो बचेगा देश
और कितनी बची होगी शेष
उनके भीतर राष्ट्रीय भावना,
पूंजी की चकाचौंध ने उकसाया है जिन्हें उड़ जाने को

कब तो लौटेंगे
कब तक करें इंतजार
सिर्फ फैल रहा है व्यापार

देश भी है एक बाजार
अप्रवासी मन के भीतर

आकाश की ऊंचाईयों के पार
दूसरी दुनिया को खोजने की कोशिश
प्रकृति के रहस्य से पर्दा उठाना होगा
पर उसे संभव बनाने के लिए
शिखा, रेहाना और माधुरी को छोड़कर
उड़ जाओ
यह कतई जरूरी नहीं,

खराब महत्वाकांक्षा होगी

धुएं और गर्द का गुबार उड़ाती उड़ान भरकर
बेशक चौंका दोगी अपने मित्रों को
पर बचा नहीं पाओगी स्मृतियों भरा
निकटता का कोई निजी कोना

छुपन-छुपाई, स्टापुल, गिट्टी
उनके संग ही तो सीखा तुमने
गूंथना मिट्टी

मित्रों के साथ, मित्रों के लिए
रचना एक खेल, दुनिया के लिए

जानो ठीक ठीक,
सूचना क्रांति का तनता वितान
कैसे रच रहा है खबरों के बंध
इतिहास से उसका क्या है संबंध

भूगोल, विज्ञान और नागरिक शास्त्र
जो तुम्हारी पढ़ाई के विषय हैं बेटी
उनमें तुम खुद ही ढूंढ सकती हो
अपना पाठ
अध्यापिका ने जो कहा
वो गलत नहीं, पर सम्पूर्ण नहीं

सम्पूर्ण को खोजने के लिए
तुम्हें खुद ही करनी है मेहनत
मूर्त को अमूर्त

और अमूर्त को मूर्त में बदलने की
अपनी क्षमताओं को
तुम्हें खुद ही करना है समृद्ध
मैं या तुम्हारी अध्यापिका
तो होते जा रहे हैं वृद्ध

बस समझ लो सिर्फ इतना और हमशा ध्यान रखो,
कितना टकराते हैं खुद से
लिखते हैं जब एक पुराना राग
मुँह में कितना होती है आग

(कथाकार योगेन्द्र अहूजा की कहानी मर्सिया से उधार)*

कुछ छोटी कविताएँ

स्नेहमयी चौधरी

लुकाछिपी

कविता कहीं गहरे अन्दर जाकर छुप गई....
अब बुलाने पर लुकाछिपी खेलती है। 00

अपनेआप

पहले स्टूल लाना चाहिए,
फिर चाय की ट्रे...
वरना चाय की ट्रे पकड़े-पकड़े
स्टूल अपनेआप आ जाएगा क्या? 00

पहुँच

हर चीज़
हाथों की पहुँच के हिसाब से
अपने दोनों तरफ रखना-
यह जीवन है
या ? 00

हड़बड़ी

कविता लिखने की हड़बड़ी में
गड़बड़ी हो गई-
सारी की सारी छोटी-से-छोटी
होती गईं। 00

खोल

उसे लगा वह
एक खोल में छुपी बैठी है
जहाँ से वह सर
निकालती है
बाहर खुली हवा में
साँस लेकर-
अंदर फिर छुप जाती है। 00

तानाशाह

'मैं चाय बनाऊँ?'
'क्यों, नौकर को जगाओ'
'मैं ही बना लाता हूँ'
कह कर वह तानाशाह
विनम्रता की प्रतिमूर्ति बन गया। 00

कमरा

इस कमरे में
क्या नहीं?
सब कुछ
टी0वी0, थ्री-इन-वन, पुस्तकें, मैगजीनें,
दवाईयाँ
अखबार
लोगों का आना जाना
मिलना जुलना,
पर कविता है कि
लुकाछुपी खेलती है
कभी तो-
वह घबरा जाती है
थोड़ी देर के लिए
बाहर चली जाती है
पर लौटती है-हारकर
इसी कमरे में-
सब कुछ पाने के लिए,
कागज़-कलम भी तो यहीं हैं। 00

टेक

अखबार बड़े ध्यान से पढ़ा-
मारपीट, आगज़नी, बलात्कार
और क्या?
अधिक-से-अधिक खेलकूद, फिल्म की ख़बरें
थककर-
वह माथे की टेक लगा
बैठ गई। 00

किताब के रूपक में

सविता भार्गव

इन ख़ाली दिनों में
'वे दिन' पढ़ रही हूँ

सालों साल पहले
मैं इसे किसी से मांगकर लाई थी
'वे दिन' निर्मल वर्मा की है
और उसकी है
मांग कर जिससे लाई थी

पढ़ते हुए इसे
उसकी याद को भी पढ़ रही हूँ
मांग कर जिससे लाई थी

यह एक किताब है
और वो आदमी है
मांगकर जिससे लाई थी
ऐसी कई किताबें हैं मेरे पास
मांग कर लाई गईं
और कुछ चुरा कर लाई गईं
मैं कोई दर्शन नहीं बोल रही हूँ
मैं तो सिर्फ सोच रही हूँ
किताब के रूपक में
होती हूँ जब तुम्हारे बिस्तर पर
तुम क्या सोचते हो
मेरे स्त्री होने के बारे में
चुरा कर लाई गई किताब!

तुम क्या सोचते हो
सच बताना
मैं ही होती हूँ तुम्हारे बिस्तर पर
या वह भी होता है
चुराकर मुझे जिससे लाते हो!

देर हो रही है

तुम अहमदाबाद में हो
मैं भोपाल में

काम से जब लोग लौट रहे होते हैं
बैग टिफिन उठाकर
कहते हुए कि देर हो रही है
घर पहुँचना है

सबसे सही समय
यही है
भोपाल से अहमदाबाद पहुँचने का

नेपथ्य में
आवाज़ गूँजती है

देर हो रही है
देर हो रही है

अहमदाबाद और भोपाल के बीच की दूरी
इस एक वाक्य के बराबर है
देर हो रही है।

(1)

तेरे रूप

पूनम शर्मा

तू हर मन में मेरे साथ है।
मेरे चलने में,
मेरे हाथ हिलाने में,
मुझे खिलाने में,
मैं कैसे खुश रहूँ?
किस बात का शोक करूँ!
तू चुपचाप मेरे साथ हैं।
आदि से अनन्त तक,
तू हर धर्म निभाता है।
किस रूप में आयेगा, 'तू'
ऐ! मेरे महबूब!
बस! यही कह देने में
दग़ा दे जाता है।

(2)

महबूब 'तस्वीर'

जब अकेले में जी घबराने की बात होती है
तस्वीरों से बोलना अच्छा है
कोई साथ दे या न दे
मेरी महबूब तस्वीर खड़ी होती है।

1. कहते हैं तस्वीर गिरने से हादसा होता है
धक! से दिल का चटकना अच्छा है
शीशे का भ्रम रहे या न रहे
महबूब से नज़दीक की दीदार घड़ी होती है

2. तस्वीर न हो जीवन में कोई जान न हो,
उम्र का बढ़ना चहकना, बहकना अच्छा है
रिश्ते दरों-दीवार में रहे या न रहें
आह! भरने का इंतजाम बनी रहती है

3. कोई तस्वीर सामने पड़े तो ऐसे देखो,
खनिज-कीमती मिल जाएं तो अच्छा है
हँसी-दर्द-शोक मन में रहे या न रहे
'तस्वीर' एक जिस्म-जान से भी बड़ी होती है।
जब अकेले में जी घबराने की बात होती है
तस्वीरों से बोलना अच्छा है
कोई साथ दे या न दे
मेरी महबूब तस्वीर खड़ी होती है।

(1)

"मैं बूढ़ी हो गयी"

कुन्दन लाल कलूचा

देह पर चढ़ते साल बोलते हैं
पर मैं नहीं चाहती वे बोलें
दीवार पर लगा कैलेन्डर
मेरे बीते साल बताएँ
सत्तर में जन्मी मैं
बाला सी रहना चाहती
पर,
बढ़ता वक्ष का भार
कटि के आस पास
बिखरता आकार
छुपा नहीं पाता कोई पर्दा
कोई श्रृंगार
बालों पर दिखती
सफेद लकीर-पर्वतपर
श्वेत वर्फधार
क्यों बनती मेरे
वय का द्योतक
मैं नहीं लगाऊँगी
इक्कीसवीं सदी का
कोई कैलेन्डर अपनी दीवार पर
ताकि देख न पाऊँ
उम्र तीस के पार
ट्रेड मिलकर भाग भागकर
कम करती देह का भार
बालों पर डाई लगाकर

लौटा हूँ सकती कालिमा
तंग पैराहन में
सिमट सकता शरीर
घट सकता हाव भाव में
बूढ़ापन
लौटा सकती वाक् चपलता
दिख सकती थोड़ी स्मार्ट
पर जब देखती
अपनी 12-13 वर्षीय
किशोरी बेटी को
निकलता हहरहरा बदन
मुख पर लोनाई
एक दिन अनजाने भय से
सिहर उठती
मेरी किशोरी बेटी
रजस्वला हो गयी
और मैं बूढ़ी हो गयी
माथे की लकीर गहरी हो गई

(2)

"लंहगा और चुनरी"

तुम लाये थे मुझे,
सोने चाँदी की ज़री कढ़ी
लंहगा और चुनर ओढ़ा कर
बस
एक रात में उधड़ गये
सोने के बाने, चान्दी के ताने
तार तार हो गयी
सोने ज़री की ओढ़नी
उसके बाद सिर्फ देखी
बिस्तर चादर की सल्वटें
जिस में समा जाती मैं
दर्द से कराहती देह की
पोर पोर होती परतें
देखती पथराई आँखों से
लहंगा और चुनरी
रह गयी फटी चद्दर
की सल्वटें

मन के आँगन में

पूजा येरपुड़े

मन के आँगन में,
आशाओं के वृक्ष,
स्वप्नों की पुरवाईयाँ,
जीवन के हैं सुख।

प्रेम झरोखा खोल दे,
आने दे प्रीत समीर,
दुख दूर बह जायेंगे,
न नयन बहायें नीर।

भ्रम टूटे सो टूटे,
न बिखरे मन के तार,
कैसे सह पाये ये मन,
कटु वचन की मार।

अनुभवों की परतों में,
जीवन संध्या उतरी,
उतरे जितनी नीचे वो,
हो उतनी ज्यादा गहरी।

एक अकेला चन्द्रमा,
चहूँ ओर सितारे,
रात गगन में खेल रमे,
कोई जीते, कोई हारे।

घर के आँगन बैठी,
दोपहर फुर्सत होकर,
बुननी संध्या के लिए,
सतरंगी ऊन का स्वेटर।

अमराई के बौर संग,
ग्रीष्मऋतु का आगमन,
ठंडे झोंके भोर के,
धरती करती आचमन।

साँसों की है रागिनी,
ये नेहभरा संगीत,
मन को उजियारा करे,
सूर्यकिरण सम प्रीत।

स्वप्न जब टूटे थे

स्वप्न जब टूटे थे
इन आँखों में मेरी
आवाज सुनी किसने
उनके बिखरने की
बस......
एक टूटी थी मैं
एक टूटा था दिल
शेष सभी चेहरें
यहाँ-वहाँ फैले थे

सन्नाटा एक कोने में
और एक खुली खिड़की
इन सूनी आंखों में
विस्तार ले रही थी
बस......

एक बिखरी थी मैं
एक बिखरा था पल
शेष समय सारा
यहाँ-वहाँ पसरा था

थक गई दिनभर में
भागते हुए जिन्दगी
बेसुध सो रही वो
रात की गहराई में
बस......

एक खोई थी मैं
एक खोया था चाँद
शेष बची खामोशी
यहाँ-वहाँ सिमटी थी

गुजरे दिल से होकर
वो रास्तें, गलियाँ
कुछ भटके अंधेरों में
कुछ कोलाहल में लीन
बस......

एक गुम हुई मैं
एक गुम हुई खुशी
शेष सभी हसरतें
यहाँ-वहाँ बिखरी थी



परिचय : 8 फरवरी 1947 ई0 को जन्मे हरीश नवल की रचनाएं 1962 से प्रकाशित हो रही हैं। ''मि0 कमेंट्रीदास'' आपकी प्रथम प्रकाशित रचना है जो 1965 में 'नोंक झोंक' में छपी थी। डॉ0 हरीशनवल की 6 व्यंग्य पुस्तकें, 6 अन्य विधाओं की पुस्तकें, 52 पुस्तकों में सहयोगी लेखक के रूप में आ चुकी है। हरीश नवल जी बल्गारिया के सोफिया विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर तथा मारीशस विश्वविद्यालय के 'मुख्य परीक्षक रह चुके हैं। हरीश नवल को 1987 में व्यंग्य रचना ''बागपत के खरबूजे'' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिल चुका है। संप्रति आप दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रख्यात हिन्दू कालेज में हिन्दी के वरिष्ठतम रीडर, भारत सरकार के तीन मंत्रालयों की हिन्दी समितियों के सदस्य तथा हिन्दी अकादमी (दिल्ली सरकार) के संचालक सदस्य भी हैं।

वर्ष 2011 में व्यंग्य विधा की शीर्ष पत्रिका ''व्यंग्य यात्रा'' ने हरीश नवल पर अपना अंक भी केंद्रित किया था।

द्रवित होने का सुख

हरीश नवल

रोना सच्चे भारतीय की पहचान है। रोने के लिए द्रवित होना आवश्यक है। हम भारतवासी बहुत जल्दी द्रवित हो जाते हैं। एक युग था जब महावीर और बुद्ध के प्रभाव से पत्थर हृदय भी पिघलने लगे थे। यह द्रवित आन्दोलन निरन्तर जारी है। इस अधुनातन युग में द्रवित होना अत्याधुनिक प्रवृत्ति है। मनुष्य की प्रगति इसके बिना कठिन और असंभव है। द्रवित होने का रूप बदल गया है। जो मनुष्य पहले किसी के रोने पर द्रवित होता था अब किसी के हंसने पर द्रवित होने की शक्ति रखता है। पहले करुणा की धारा अजस्र बहा करती थी, जातक किसी के दुःख को देखकर, किसी निर्धन की आह सुनकर करुणा के सागर में गोते लगाने लगाता था अब करुणा की वह धारा वेगवती और बलवती होकर अब कल-कल कर फूट पड़ती है जब जातक किसी के पास सम्पन्नता देखकर या किसी को हर्ष की हिलोरे पाते देखता है।.........जातक अब अत्यन्त उदार हृदय हो चुका है। वह युग बीत गया जब वह अपने दुख से दुखी होता था अब वह दूसरे के सुख में दुखी होता है। पड़ौसी का मकान एक मंजिल से दुमंजिले में परिवर्तित होता है तो द्रवित होकर पहली मंजिल वाला पड़ोसी दहाड़े मारने लगता है।

बाबा ईसा मसीह ने कहा था- पड़ौसी से प्यार करो। कईयों के पड़ौस में रहने वाली कन्याओं ने इसका भरपूर प्रयोग किया जिससे अन्य पड़ौसी द्रवित हुए। सफल हुए या असफल प्रयास अवश्य किया। ये मार्मिक विचार अबाध गति से चलते रहते हैं। इस प्रगतिशील युग में द्रवित होने और द्रवित करने में विलम्ब नहीं होता। एक की सरकार बनती है दूसरा अत्यन्त द्रवित हो जाता है। जिस धर्म और कर्म को वह वर्षों वर्ष अपनाता रहा अब पहले को अपनाते देख करुणा से कवलित होकर उद्वेलित हो उठता है और अत्यन्त द्रवित होने लगता है। पहले का कर्म और धर्म उसे नापसन्द हो जाता है। 'हम भोगें तो ठीक दूसरा भोगे तो हम द्रवित।' जब कोई विवाहित पुरुष विचित्र किन्तु सत्य अट्टहास लगा रहा होता है- परिवेश के अनेक प्राणी

अनायास द्रवित होते देखे जा सकते हैं।

द्रवित होना हमारा संस्कार है, हमारा अधिकार है। दूसरे की सफलता प्राय: अनैतिक होती है और अपना साफल्य शुद्ध श्रमसिंचित और नैतिक। हम उदारमना हैं- दूसरे के पास अतिशय धन होगा, बल होगा हम कांप उठते हैं कि वह इसे संभालेगा कैसे? कोई प्रगति की सीढ़ियां लांघता चढ़ता है, हम द्रवित हो उठते हैं कहीं बेचारा गिर न जाये, हम सीढ़ी हटाने लग जाते हैं। हम चढ़ पायें या न चढ़ पायें, पर दूसरा सीढ़ी का प्रयोग कर सके हम इस उदारवादी चेतना से सम्पन्न हो जाते हैं। हम परजीवी हैं, परोपकारी हैं, परकार्यों में ही सुख की अनुभूति लेते हैं चाहे वह परनिन्दा जैसा अमूर्त तत्व हो अथवा परस्त्री अथवा पर पुरुष जैसा मानवीय औदार्य, हम परहित में जीते हैं। परहित तभी हो पाता है जब व्यक्ति द्रवित होता है।

द्रवित का संबंध द्रव्य से भी है। असंभव कार्य भी द्रव्य से संभव हो जाता है। जितना द्रव्य दिखाया जाये उतना ही दूसरा द्रवित होता जाता है। द्रव्य से मोह न लगाने की बात हमारे टी0वी0 के स्टार धार्मिक उपदेशक अपने प्रवचनों में बारम्बार कहते हैं। वे हमें द्रव्य के मोह से दूर करते हैं- उनका सुभाषित हमें मथता है कि 'हमारे होते तुम द्रव्य में लिप्त होने की चेष्टाएं क्यों करते हो?' 'तुम हमें द्रव्य दो हम तुम्हें स्वर्ग देंगे। उनके उपदेश से द्रवित जातक उन्हें घर बुलाते हैं, बुलाने की भरीपूरी फीस अदा करते हैं- वे द्रव्य लेते हैं जातक द्रवित होता जाता है और संसार से आसक्ति हटाने का उपक्रम पाता है।

हमारे राष्ट्र के कर्मवीर नेता जनता के दुख देख देख कातर होते हैं-द्रवित भी होते हैं, जनता के लिए वे जनार्दन बनते हैं- अपने द्रवित बल से उनसे वोटों की सुभिक्षा लेते हैं। जनता को समीप पा जब कर्मवीर अत्यधिक द्रवित होने लगते हैं, ऊँचे उठने लगते हैं- ज़मीन से उठ जाते हैं और जनता की पहुँच के बाहर हो जाते हैं क्योंकि निरन्तर दु:ख देखना कोई भली बात नहीं। वे आकाश में उड़ते हैं, वृत्ति भी आकाशमार्गीय हो जाती है- द्रव्य चेतना के उभरने से वे भी द्रवित होते रहते हैं और द्रव्य-हरण के नए नए उपायों की खोज में वास्कोडिगामा हो जाते हैं।

खेल का मैदान हो या विधान सभा का कक्ष, विश्वविद्यालय का प्रांगण हो या सहकारी आवास का गलियारा-यत्र तत्र सर्वत्र द्रवित होने या करने के उपक्रम चलते रहते हैं। 'द्रवित करो या द्रवित होकर मरो'- यही सिद्धांत अनवरत् जारी है। समर्थ कर्मवीर इस द्रविताशी यज्ञ में समिधा दे रहे हैं और जीवन के साफल्य का लाभ ले रहे हैं। जातिगत, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, अपराधिक आदि सभी प्रकार के कर्मों में लिप्त होकर जातक को द्रवित करने में अनथक परिश्रम रात-दिन कर रहे हैं। पानी रुक रहा है- रक्त बह रहा है कर्मवीर अपना कर्म कर रहा है। जातक अपना द्रवित कार्यक्रम जारी रखने के लिए अभिशप्त है। यही उसकी नियति है। यही उसका धर्म है।

सिनेमा

सुरीली संगीत सल्तनत के बादशाह फिल्म संगीतकार मदन मोहन

डॉ0 कीर्ति श्रीवास्तव

यूँ तो भारतीय फिल्मों के मुक्ताकाश में संगीत से जुड़ी अनेकों महत्वपूर्ण हस्तियों ने अपनी सच्ची और सफलतम उड़ान भरी, परंतु कुछ ऐसे हस्ताक्षर भी थे जिनकी बेमिसाल कृतियों ने लोगों के दिलों मे अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

संगीतकार मदन मोहन भी ऐसे हस्ताक्षरों में गिने जाते हैं, जिन्होंने संगीत के सात सुरों को एक लय में पिरोकर आत्मा की गहराई तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त की। फिल्म संसार के सबसे प्रयोगधर्मी संगीतकारों में से एक थे, मदन मोहन। इन्होंने अपनी रचनात्मकता के साथ किसी भी शर्त पर कोई समझौता नहीं किया इसलिए इनकी अभूतपूर्व रचनाएं हर वर्ग के श्रोताओं के दिलों दिमाग पर गहरा असर डालने में सफल रही।

फिल्मिस्तान कंपनी के मालिक श्री रायबहादुर चुन्नी लाल जी के सुपुत्र मदन कोहली को पिता की इच्छा के कारण सेना में नौकरी करनी पड़ी, परंतु संगीत कहीं न कहीं उनके मन मस्तिष्क पर दस्तक देने लग गया था। कुछ ही वर्षों में नौकरी त्याग कर मदन जी संगीत की अनवरत् सेवा करने का संकल्प लिये लखनऊ के आकाशवाणी केन्द्र से जुड़ गये। वहां उन्हें संगीत जगत के दैदीप्यमान नक्षत्र फैय्याज खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ, अली अकबर खाँ, बेग अख्तर आदि का सानिध्य प्राप्त हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि ग़जलों से मुहब्बत का ऐसा रिश्ता कायम हुआ कि फिल्मी संगीत में मदन जी ग़ज़लों का पर्याय माने जाने लगे। ग़ज़लों का जिक्र हो और मोहन जी का नाम न लिया जाए ऐसा हो ही नहीं सकता।

संगीत की दीवानगी मदन जी को मुम्बई खींच लाई। शुरूआत में उन्होंने फिल्म 'शहीद' और 'मुनीम जी' में छोटी-छोटी भूमिकाऐं भी निभाईं एवं फिल्म 'शहनाई' और 'दो भाई' में संगीतकार सी0 रामचन्द्र और एस0डी0 बर्मन के सहायक के रूप में कार्य कर मदन जी ने संगीत क्षेत्र से जुड़ने का सार्थक प्रयास किया। फिल्म 'शहीद' में उन्होंने सुर साम्राज्ञी लता मंगेश्कर के साथ एक युगल गीत भी गाया, परन्तु वो गीत फिल्म में शामिल नहीं किया गया। इसी गीत की रिकार्डिंग के समय मदन जी ने लता जी से वादा किया था कि उनकी पहली फिल्म में वे गायेंगी। 1950 वो वर्ष था जब मदन जी को पहली फिल्म में संगीत निर्देशन का अवसर मिला, फिल्म थी-'आँखें। जिसके निर्माता-निर्देशक थे देवेन्द्र गोयल। फिल्म का संगीत खूब लोकप्रिय रहा। लेकिन उनकी पहली फिल्म में लता जी की आवाज सुनाई नहीं दी। दरअसल, लता जी का विचार था कि फिल्मिस्तान स्टूडियों के मालिक के बेटे का संगीत से क्या वास्ता। अमीर बाप का बेटा शायद शौकिया ही संगीत क्षेत्र में उतरा है, उन्हें गंभीरता से नहीं लिया। इस सोच के तहत लता जी ने मदन जी की फिल्म 'आँखें' में नहीं गाया। फिल्म के हिट गीतों को सुनकर लता जी ने स्वयं उनकी अगली फिल्म में गाने की पेशकश की। एक गुणी संगीतकार और भावों को अपनी मधुर आवाज देने वाली पार्श्व गायिका का यह जुड़ाव संभवतः फिल्म जगत का सबसे सुनहरा और सुरीला जुड़ाव रहा जिसने एक से बढ़कर एक

कालजयी रचनाओं को श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया। आगे चलकर यह संबन्ध प्रगाढ़ हुआ और मदन-लता का भाई-बहन का रिश्ता जिन्दगी भर तक रहा।

ऐसे वृत्तांत हर व्यक्ति का ध्यान बाँटने का सामर्थ्य रखते हैं जिसमें कुछ अलग हट कर बात हो। शायद इसी वजह से संगीतकार मदन मोहन का फौजी व्यक्तित्व संगीत की स्वर लहरियों से तालमेल बैठाता हर एक का ध्यान अपनी तरफ खींचने में काफी हद तक सफल रहा। फौजी का आकर्षक रौब-दौब वाला व्यक्तित्व, वर्दी, चालढाल और यहाँ तक कि बोलचाल सब कुछ कहीं न कहीं संगीत से उनके जुड़ाव की बात सहज विश्वसनीय नहीं बना पाता।

फिल्माकाश में ग़ज़लों के बादशाह कहे जाने वाले मदन मोहन अपनी ग़ज़लों के माध्यम से परम्परागत और आधुनिक सम्मिश्रण कर एक ऐसा स्वर संसार रचते हैं, जिसमें राग-रागिनियों की चपलता है, लोक गीतों की सुवास है और दूर क्षितिज से उभरकर आते सात स्वरों इंद्रधनुष है। एक ओर जहाँ सितार के तरब और बाज का मिला जुला स्पंदन है, तो वहीं दूसरी तरफ सारंगी, वायलिन, इलेक्ट्रानिक आर्गन, गिटार और सैक्साफोन की नैपथ्य से आती असाधारण ध्वनि तरंगे हैं। फिल्म संगीत में जब भी ग़ज़लों की बात होती है तो सबसे बहुचर्चित नाम के रूप में मदन मोहन को याद किया जाता है लेकिन मदन जी के पूरे फिल्मी सफर में एक नज़र डालें तो पाएंगे कि उन्होंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय रागों पर आधारित गीत, लोक शैली पर आधारित गीत, नवरसों के गीत, पाश्चात्य शैली पर आधारित गीत, मौज मस्ती से भरे गीतों के सृजन में भी अपनी मेहनत का लोहा मनवा लिया है। मदन मोहन की शास्त्रीय रागों की समझ का परिदर्शन उनकी प्रारंभिक फिल्मों से ही श्रोताओं तक पहुँचाता रहा। फिल्म 'भाई-भाई' का गीत 'कदर जाने ना' राग भैरवी में एक ऐसी रचना है जिसकी प्रशंसा सार्वजनिक तौर पर करते हुये बड़े गुलाम अली खाँ साहब ने कहा था- 'राग का दर्शन करवाने में हम उस्तादों को जितना समय लगता है मदन मोहन ने उसके दसवें हिस्से में भैरवी की भव्यता सामने रख दी और वह भी इतने मधुर रूप में'। फिल्म 'अदालत' का गीत 'उनको ये शिकायत है' वाद्यों के सम्मिश्रण से प्रारंभ होता है परन्तु अन्तरे के संगीत पर आभास होता है कि यह राग 'मालागूंजी' है, फिल्म 'अनपढ़' का गीत 'जिया ले गयों जी मोरा सांवरिया' फिल्म 'दस्तक' का गीत 'बैंया न धरो' और 'माई री मैं कासे कहूँ' फिल्म 'मेरा साया' का गीत 'तू जहाँ जहाँ चलेगा', फिल्म दिल की राहें' का गीत 'रस्में उल्फत को निभायें' और 'आपकी बातें करें' फिल्म 'दुल्हन एक रात की' का गीत 'मैंने रंग ली चुनरिया' आदि ऐसी रचनाऐं हैं जिसमें मदन जी ने रागों का इतना सबल और भावानुकूल प्रयोग किया है कि गीत आसानी से सुनने वालों के मन मस्तिष्क पर अपना खास असर डालने में कामयाब रहे हैं।

हल्के फुल्के मस्ती भरे गीतों में भी मदन जी ने अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं को श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया है। फिल्म 'मनमौज' का किशोर कुमार का गाया गीत 'जरूरत है जरूरत है एक श्रीमती की' और 'मुर्गे ने झूठ बोला', फिल्म 'अनपढ़' का गीत 'सिकंदर ने पोरस की थी लड़ाई', फिल्म 'भाई-भाई' का गीत 'मेरा नाम अब्दुल रहमान' और 'इस दुनिया में सब चोर-चोर'। ये सभी मशहूर गीत हैं और ऐसे गीतों की फेहरिस्त काफी लम्बी है।

मदन जी का नाम उन प्रतिभाशाली संगीतकारों में से एक रहा है जिन्होंने पश्चिमी स्वर लहरियों को भारतीय रंग से सराबोर कर एक नई शैली का सृजन करने में सफलता प्राप्त की। फिल्म

'सेनापति' का गीत 'आज की रात फिर न आयेगी' फिल्म 'दुल्हन एक रात की' का रफी साहब का गाया गीत 'इक हसीं शाम को दिल मेरा खो गया' फिल्म 'महाराजा' का गीत 'तुमसे बिछड़के चैन कहाँ हम पाऐंगे' फिल्म 'परवाना' का गीत 'सिमटी सी शरमाई सी', फिल्म 'हँसते जख्म' का गीत 'तुम जो मिल गये', फिल्म 'चालबाज' का गीत 'शोख नजर की बिजलियाँ' आदि अनेक गीतों में पश्चिमी संगीत का ऐसा इन्द्रधनुषीय स्वर संसार दिखाई देता है जिसके सम्मोहन से हर श्रोता बंधा नजर आता है।

मदन मोहन अपने रचना संसार में लोकगीतों की सुवास समेटे अपने विशेष शैली के साथ नजर आते हैं। मोरी अटरिया में कागा बोले' गोरी की अँखिया मटक गैनी रे', 'दुपट्टा मेरा मल-मल का', 'कदम बहके जिया धड़क-धड़क जायें', 'ओ राजा जी हमार कहा मानो', 'झुमका गिरा रे', 'नैनो वाली ने हाय मेरा दिल लूटा', 'नाचे अंगवे छलके रंगवे', पिया से मिलन हाइ गया रे' ऐसे अनेक गीत हैं जिनकी मिठास लम्बे अरसे तक आज भी विराजमान है।

मदन जी अपने गीतों में अपने संगीत की विभिन्न शैलियों को बखूबी पेश किया ही, उन्होंने मुजरों, कव्वालियों व कैबरे की गीतों में चलताऊपन नहीं रखा है। फिल्म 'दुल्हन एक रात की' की कव्वाली 'कभी ऐ-हकीकत-ए मुंजर', उन लोगों को भी पसंद है जो कव्वाली से उसके सस्तेपन और स्तरहीनता के कारण घृणा करते हैं। फिल्म 'जहांआरा' का मुजरा 'जब-जब तुम्हे भुलाया' और फिल्म 'चालबाज' का कैबरे 'रात उजियारी दिल अंधेरा है' की तुलना आज की संगीत से करके देखें तो हम ही खुद ही निर्णय कर लेते हैं कि कौन सा संगीत हमें संतुष्ट कर सकता है।

मदन जी के संगीत में वाद्यों का प्रयोग भी अनूठा नजर आता है। सुगम शास्त्रीयता से रचा बसा उनका संगीत भारतीय वाद्यों के संगम से और भी निखरता प्रतीत होता है।

मनमोहक धुनों के सर्जक गुणी संगीतकार मदन मोहन को धुन बनाने हेतु किसी विशेष वातावरण की आवश्यकता नहीं होती थी। उनकी धुनें कभी लिफ्ट में ऊपर-नीचे, आते-जाते, मोटर चलाते हुये, बगीचे में विचरण करते हुये, तैराकी करते हुये, सहज रूप से बन जाया करती थी। एक बार मदन जी अपने व्यक्तिगत अनुभवों को व्यक्त करते हुये कहा था- 'अगर संगीतकार की मनःस्थति वही हो जो दृश्य की आवश्यकता है तो उस धुन को बनाने में ज्यादा समय नहीं लगता, मगर हाँ! कभी-कभी किसी धुन को बनाने हेतु कई-कई दिन मरना और जीना पड़ता है।

मदन जी प्रत्येक रचना उनकी दिल लगाकर तल्लीनता से की गई मेहनत और लगन का फल है। उन्होंने कभी विकाऊ संगीत देना पसंद नहीं किया। वे बड़े खुद्दार और आत्मसम्मानी थे। लगभग 100 फिल्मों में संगीत देने वाले इस श्रेष्ठ सर्जक के फिल्मी सफर में केवल एक सुपर हिट और चार हिट फिल्में ही रहीं। यह उनकी असाधारण प्रतिभा का कड़वा सच माना जा सकता है। अनगिनत अप्रत्याशित धुनों को देने वाले इस फनकार की किस्मत ने कद्र नहीं की। जिन फिल्मों के गीत खूब चले, व फिल्में नहीं चली क्योंकि उनमें बेहतर संगीत के अलावा कुछ था ही नहीं।

मदन मोहन निःसंदेह भीड़ में रहकर भी अलग, अकेले और विलक्षण संगीतकार रहे हैं। सफलता की उम्र बहुत लंबी नही होती। वे लोग जो संघर्ष कर अपनी मंजिल तक पहुँच जाते हैं,

बुलंदियों को पाकर आश्वस्त नहीं होते बल्कि कुछ कदम और चलने की कोशिश करते हैं। मदन मोहन भी शायद ढेर सारे कदम और चलते, किन्तु बदलते दौर की आपा-धापी और एक-दूसरे से आगे आने की प्रतिस्पर्धा उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं थी। शायद इसी दर्द की टूटन और चुभन ने उनका साथ कुछ कदम और नहीं दिया। 14 जुलाई 1975 को लीवर ने उनका साथ छोड़ दिया और उन्होंने इस दुनिया को अलविदा किया। सितारा टूट गया, आसमान में अंधेरा तो नहीं हुआ। मगर सैकड़ों, हजारों के बीच अपनी अलग चमक, अपनी अलग आन-बान रखने वाले इस सितारे की भरपाई अब तक न हो पाई है और न हो पायेगी।

"हरि तुम हरो जन की पीर"

डॉ. निष्ठा शर्मा

विहग सम एक स्वर से दूसरे स्वर पर उड़ता हुआ जीवन से भरपूर, स्वर सरिता में प्रवाहित भिन्न रसों एवं भावों से ओत-प्रोत, बांसुरी के समान सौम्य एवं मधुर स्वर। इसी स्वर में 'विल्लयै तमाराइ'' गीत को सुनकर तमिल कवि सुब्रमण्यम भारती ने कहा था कि - ''माँ सरस्वती कहीं और भी बसती है।'' ऐसा पवित्र कण्ठ था - प्रख्यात गायिका मदुरई षणमुखावदिवु सुब्बुलक्ष्मी का।

जन्म-16 सितम्बर सन् 1916, पिता-सुब्रहमण्या अय्यर पेशे से वकील, माता-षण्मुखावदिवु अम्माल कुशल वीणावादिका। मदुरई के सुप्रसिद्ध मीनाक्षी मंदिर के निकटस्थ, धूल-धरसित संकरी गली में साधारण मकान। वायुमंडल में लहराते देवालय के 'नादस्वरम्' के स्वरों को गुनगुनाती शिशु बालिका-कुंजु अथवा कुंजम्मा अपने जीवन के कोरे कागज पर रचने जा रही थी एक महान सांगीतिक यात्रा कथा - संगीत जगत में लोकप्रिय एम0एस0 और समस्त भारत को अपने पारलौकिक स्वर से मुग्ध कर देने वाली - सुब्बुलक्ष्मी। भारतीय नीति परम्परा के अनुसार कहा जाता है कि माता ही प्रथम गुरू होती है सो अपनी पुत्री के संगीत के प्रति रूझान और शीघ्र ग्रहण करने की उसकी क्षमता को देख माँ बहुत प्रभावित हुई और गायन और वीणावादन की शिक्षा प्रारम्भ हो गयी। माँ के आंचल में बेटी की प्रतिभा निखरने लगी। मात्र दस वर्ष की वय में एच0एम0वी0 रिकार्डिंग कम्पनी ने इनका 78 आर0पी0एम0 प्लेट रिकार्ड बनाया जिसमें एक तरफ 'चेनचुरूट्टी' में 'मारागाटावादिवु' तथा दूसरी तरफ सपेरा गीत 'ऊथीकुझाइयेले' था। कड़े प्रशिक्षण और परिश्रम से प्रतिभा संवरती गयी और तेरह वर्ष की वयसन्धि तक आते-आते कुंजम्मा अपनी माँ के एकल वीणावादन प्रदर्शनों में संगत करने लगी। अपनी पुत्री को उसकी योग्यता के अनुरूप विस्तृत मंच प्रदान करने की इच्छा षण्मुखावादिवु अम्माल को कुंजम्मा के साथ मद्रास ले आयी और 17 वर्ष की आयु में मद्रास म्यूजिक एकेडमी के प्रतिष्ठित मंच पर कुंजम्मा को प्रथम अवसर प्राप्त हो गया। अपने प्रारम्भिक एकल प्रदर्शनियों में ही कुंजम्मा ने संगीत रसिको को मन्जित कर दिया। उनकी पूंजी थी-मनमोहिनी खनकदार आवाज, अल्पवय में सांगीतिक प्रौढ़ता और आकर्षक व्यक्तित्व। बहुत कम समय में वे 'स्टार' बन गयी थी और प्रशंसकों की विशाल संख्या उनके पीछे थी।

सुन्दर मुखाकृति और आकर्षक देहयष्टि के कारण रजतपट का विशाल धरातल भी उन्हें शीघ्र ही उपलब्ध हो गया। सन् 1938 में प्रदर्शित 'सेवा-सदनम्' उनकी पहली फिल्म थी जो स्वतन्त्रता-संघर्ष और सामाजिक सुधार की पृष्ठभूमि पर आधारित थी। इस फिल्म के द्वारा सुब्बुलक्ष्मी का सरोकार राष्ट्रीय विचारधारा से हो गया।

एम0एस0 के जीवन का स्वर्णयुग प्रारम्भ हुआ सन् 1936 से, जब तमिल पत्रिका 'आनन्द-विकतन' के एडर्वटाजिंग मैनेजर त्यागराज सदाशिवम् उनके जीवन में आये। एम0एस0 से लगभग 14 वर्ष बड़े टी0 सदाशिवम् प्रारम्भ में क्रांतिकारी विचारधारा से सम्बद्ध थे किन्तु चक्रवर्ती राजा गोपालाचारी के सम्पर्क में आने के पश्चात् उनकी विचारधारा में परिवर्तन हुआ। सदाशिवम् संगीतज्ञ थे तथा वे सुब्रमण्यम भारती तथा अन्य कवियों द्वारा रचित देशभक्ति गीतों

को तन्मयता के साथ गाते थे। असहयोग आन्दोलन काल में गाँव-गाँव में घूमकर उन्होनें अपने गीतों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। ऐसी ही सभा में एम0एस0 की भेंट सदाशिवम् से हुई। शरीर भिन्न थे किन्तु विचार एक थे। सन् 1940 ई0 में दोनों परिणय-सूत्र में बंध गये और मान-प्राण भी एक हो गये। सदाशिवम् ने एम0एस0 के लिए गायन से सन्यास ले लिया और जीवन भर अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन किया। उन्होनें अपना समस्त जीवन एम0एस0 के सांगीतिक भविष्य के निर्माण में लगा दिया। सदाशिवम् ने एम0एस0 को लेकर कई फिल्मों का भी निर्माण किया। ''शकुन्तलाई'' फिल्म में एम0एस0 ने शकुन्तला का अभिनय किया तथा 'सावित्री' में नारद की भूमिका अभिनीत की। इन सभी फिल्मों में उनके अभिनय एवं उनके गाये गीतों की बड़ी प्रशंसा हुई और एम0एस0 सफलता की सीढ़ियों पर अबाध गति से बढ़ती चली गयी। सदाशिवम् के द्वारा निर्मित तमिल फिल्म 'मीरा' में एम0एस0 ने ऐसा सजीव अभिनय किया कि लोग उन्हें मीरा ही कह कर पुकारने लगे। इस फिल्म में उनके द्वारा गाये गये मीरा के 52 भजनों को अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई और जब यह फिल्म हिन्दी में प्रदर्शित हुई तब तो भारत का घर-घर उनके नाम से परिचित हो गया। अब वे लोकप्रियता के शिखर पर थी।

फिल्म मीरा के प्रदर्शन के पश्चात् सदाशिवम् के कहने पर एम0एस0 ने फिल्मों से सन्यास ले लिया और अपना सम्पूर्ण ध्यान गायन पर केन्द्रित कर लिया। सदाशिवम् एम0एस0 के प्रति पूर्णतया: प्रतिबद्ध थे किन्तु अपनी पत्नी की कला के सर्वाधिक कड़े समालोचक भी वही थे। एम0एस0 के गायन में सूक्ष्म सा दोष भी उन्हें असहनीय था। वही एम0एस0 के लिए सदाशिवम् की इच्छा ही आज्ञा थी। माथे पर बिन्दिया और नासिका में बड़ी सी लौंग व भारतीय नारी के मूल्यों सहित वे भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति थी। वास्तव में दोनों भारतीय दाम्पत्य मूल्यों के सजीव उदाहरण थे। सन् 1998 ई0 में जब एम0एस0 को देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारतरत्न' से सम्मानित किया गया, सदाशिवम् गोालेकवासी हो चुके थे। प्रसन्नता के इस अवसर पर सदाशिवम् की अनुपस्थिति उनके लिए असहनीय थी। समस्त दाम्पत्य जीवन ऑखों में तैर गया और हृदय की करूणा यों शब्दों में फूट पड़ी - 'जो कुछ भी मैंने अपने जीवन और संगीत में किया, वह सब कुछ उन्हीं का मार्गदर्शन था। दुनिया जिसे मेरी उपलब्धियॉ मानती है, वे सब वास्तव में मुझे उन्हीं के द्वारा दी गयीं भेंट हैं।' यह था पति के प्रति एम0एस0 का समर्पण। एम0एस0 प्रारम्भ से ही नारी स्वतन्त्रता की समर्थक थी किन्तु वे रूढ़ियों और परम्पराओं के भेद से पूर्णतया परिचित थी। उन्होनें रूढ़ियों का सदैव विरोध किया किन्तु देश की संस्तति और परम्पराओं से उन्हें अगाध प्रेम था। अपने सिद्धांतों पर वे सदैव अडिग रही। देश में आपातकाल की वे विरोधी थी किन्तु नेहरू परिवार के साथ तीन पीढ़ियों का उनका सम्बन्ध इस विरोध पर कोई प्रभाव न डाल सका था। संयम, धैर्य, गम्भीरता, सात्विक एवं आडम्बरहीन जीवन शैली उनका आभूषण थी। सस्ती लोकप्रियता हेतु शब्दों की डुगडुगी बजाना उनका स्वभाव न था। एम0एस0 जीवन भर कर्मशील रही। वास्तव में जल से भरी गगरी कभी हुचुक-हुचुक नहीं करती और फलों से लदा वृक्ष आंधी भी आती है तो फल ही बिखेरता है।

सन् 1941 ई0 में एम0एस0 और सदाशिवम् ने नागपुर में गांधी जी से भेंट की और जब एम0एस0 ने उनके सामने 'वैष्णव जन तो तैने रे कहिये, जे पीर पराई जाणी रे।'' गीत की प्रस्तुति की तो गांधी जी अपनी आंखों के आंसुओं को न रोक सके। भावविह्ल हो गांधी जी ने अपने उद्‌गार प्रकट किये - ''एक भजन को गाना एक बात है किन्तु परमात्मा से एकाकार होकर गाना अलग अनुभव है।'' गांधी जी ने एम0एस0 से अपने प्रिय भजन 'हरि तुम हरो जन

की पीर' सुनाने की इच्छा प्रकट की। एम0एस0 ने इस भजन को कभी पढ़ा नहीं था एवं अपने उच्चारण से वे सन्तुष्ट नहीं थीं। किन्तु गांधी जी का उत्तर था - 'वे एम0एस0 के मुख से 'हरि थुमा हरो जन की पीर' सुनना अधिक पसन्द करेंगे।' इस भजन की रिकार्डिंग का भी प्रस्ताव था किन्तु एक लम्बे समय तक यह कार्य सम्पादित न हो सका और यह 30 सितम्बर, 1948 को रात्रि 2 बजें ही संभव हो सका। इस रिकार्ड को तुरन्त विमान द्वारा दिल्ली भेजा गया था क्योंकि 1 अक्टूबर को गांधी जी का जन्मदिन था। दुर्योग से यह गांधी जी के जीवन की अंतिम वर्षगॉंठ थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वार्थी राजनीतिज्ञों द्वारा गांधी जी के नाम की रोटियॉं खायी गयी हैं। गांधीवाद आज के युग में अनुपयोगी है, गांधी प्रश्नातीत हो चुके है - बहसें जारी हैं। भ्रष्टतन्त्र द्वारा अदृश्य रूप से निरन्तर राष्ट्रपिता का अवमूल्यन किया जाता रहा है। गांधी जी के विचारों को 'वाद' की संकुचित सीमाओं में नहीं बॉंधा जा सकता, वह तो वस्तुतः सम्पूर्ण भारतीयता है। यही कारण है कि जब भी अन्याय होता है, अत्याचार-भ्रष्टाचार होता है, आज भी हर भारतीय के हृदय के किसी विस्मृत अन्धकारमय कोनें में सोया हुआ गांधी जाग-जाग उठता है। तब 'जिधर चल पड़े दो डग-मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर ....तब उस युग में बापू की आभा, उनके सम्मोहन से कौन बच सकता था ? ये दम्पत्ति भी उन्हीं पगों के पगानुगामी हो गये। स्वयं एम0एस0 ने कहा - 'साबरमती आश्रम में सन्ध्या प्रार्थना के समय उनके 'रामधुन' का गायन उनके जीवन का स्वर्णिम अवसर था।' सम्मोहित एम0एस0 मद्रास वापस लौट आयी। 'अब जन-जन की पीर' उनके भी मन की पीर हो गयी थी।

अपार यश कीर्ति के अतिरिक्त एम0एस0 ने अपने जीवन में जिन सम्मानों और पुरस्कारों को प्राप्त किया, उनकी एक लम्बी फेहरिस्त है। सन् 1966 में मद्रास संगीत अकादमी से 'संगीत-कलानिधि ा' का सम्मान पाने वाली वह पहली महिला थीं। रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कलकत्ता ने सन् 1967 में, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरूपति ने 1971 में, दिल्ली विश्वविद्यालय ने 1973, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ ने 1979 में, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने 1980 में उन्हें डी0 लिट0 की मानद उपाधि से सम्मानित किया। विश्व भारती यूनिवर्सिटी शान्ति-निकेतन ने 1981 में उन्हें 'देसी कोट्टम' उपाधि से सम्मानित किया। सन् 1974 में उन्हें मैगसेसे पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 1943 में उदयपुर के तत्कालीन नरेश ने उनके भावपूर्ण गायन से प्रभावित होकर कहा कि ''यदि पुराना जमाना होता तो अपनी रियासत न्यौछावर कर देता।'' गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टाकुर ने इनके गायन से अभिभूत होकर कहा कि 'महत्वपूर्ण यह है कि इनके आनन्दपूर्ण संगीत की भावाभिव्यक्ति में श्रोता भी बह जाता है और फिर उसकी यह क्षमता खत्म हो जाती है कि वह कोई गलत कार्य करे।'' भारतकोकिला सरोजनी नायडू ने तो आपके गायन से प्रभावित होकर अपनी उपाधि 'भारतकोकिला' ही भेंट कर दी थी। सन् 1954 में एम0एस0 को पद्मभूषण तथा 1975 में 'पद्मविभूषण से विभूषित किया गया। सन् 1998 में एम0एस0 को भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत-रत्न' प्रदान किया गया। वास्तव में उनको दिये गये सभी पुरस्कारों और सम्मान का उल्लेख एक लेख की सीमा में नहीं समा सकता। स्व0 रूकमणी देवी अरूण्डेल ने एक बार उनसे स्नेहपूर्ण परिहास किया था - 'कुंजम्मा! कुछ पुरस्कार तुम दूसरों के लिए भी छोड़ दो।''

एम0एस0 को मिलने वाले कार्यक्रम आमंत्रण वास्तव में उनके प्रति व्यक्त सम्मान ही थे। उनकी गायकी और आकर्षक व्यक्ति का जादू ऐसा था कि जीवनपर्यन्त लोगों ने महसूस किया। उनका क्रेज इतना बढ़ गया था कि उनके कन्सर्ट्स में जाना लोगों में स्टेट्स-सिम्बल बन गया था।

अपनी भावपूर्ण, अलौकिक प्रस्तुतियों द्वारा उन्होनें अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत को गरिमा प्रदान की।

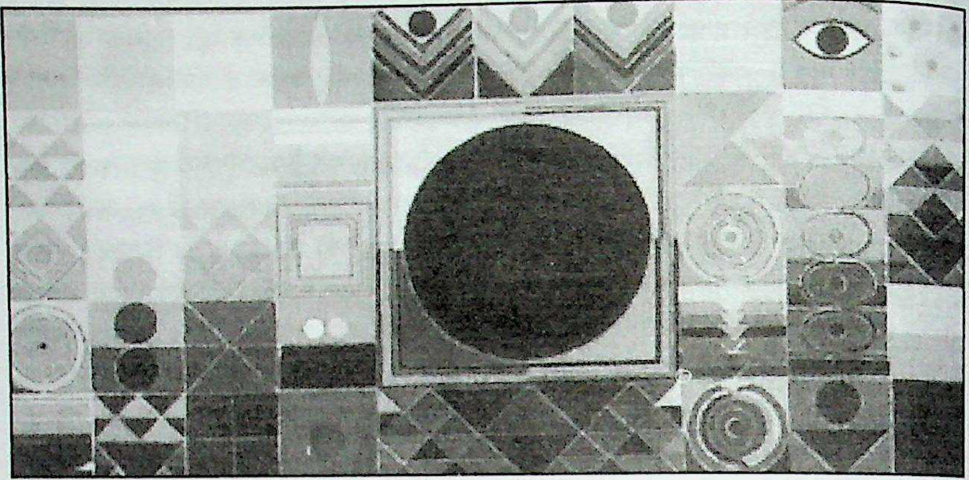
1963 में इन्टरनेशनल फेस्टिवल ऑफ आर्ट्स के तहत एडिनबर्ग में कार्यक्रम दिये जिसमे इनको इतनी प्रशंसा और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई कि फेस्टिवल के पश्चात् उन्हें लन्दन, फ्रैंकफर्ट, जेनेवा तथा कायरों में भी कार्यक्रमों के आमंत्रण स्वीकार करने पड़े। सन् 1966 में इन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के जनरल असेम्बली हाल में कन्सर्ट के लिए आमंत्रित किया गया। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों हेतु उन्होने विश्व भर में अनेक यात्राएं एवं कार्यक्रम किये। दरअसल उनके कार्यक्रमों में बड़ी मात्रा में धन संग्रह होता था जिसे वे योग्य संस्थाओं को दान कर देती थीं। उनके अनेक रिकॉर्डों की रायल्टी भी भी शेष न बचती थी, वह परमार्थ हेतु ही प्रयुक्त हो जाती थी। रैमन मैंगसेसे पुरस्कार से प्राप्त राशि भी एम0एस0 ने भारतीय विद्या भवन अस्पताल चेन्नई तथा कुम्भकोणम् के वैदिक अध्ययन केन्द्र को प्रदान कर दी थी। वास्तव में जिसका हृदय 'नादब्रह्म' से साक्षात्कार को विकल रहता है, उसे मणि-कांचन का लोभ नहीं रहता और करूणा सागर उसी को मिलते है जिसका हृदय जन की पीर से दग्ध रहता है।

घर के आंगन में गुनगुनाती चंचल बालिका से नादब्रह्म से साक्षात्कार तक एम0एस0 सुब्बुलक्ष्मी ने लम्बी यात्रा की। ऊपर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उनके लिए सब कुछ पहले से ही निश्चित था और वे बस सरलता से उसे प्राप्त करती चली गयी। किन्तु उनका लम्बा अभ्यास, भारत की विभिन्न भाषाओं के शब्दों के उच्चारण, गीत के विशेष शब्दों पर विशेष स्वरों का प्रयोग, संगीत के गूढ़ ज्ञान के विस्तार हेतु उनका कष्टसाध्य परिश्रम उनका चिंतन और मनन पृष्ठभूमि में ही रहता है। खंजन की गति खंजन जाने और न जाने कोय। एक कलाकार के अर्न्तमुखी संघर्ष को उकेरना निरी कलात्मकता मात्र है। एम0एस0 सुब्बुलक्ष्मी ने कर्नाटक एवं उत्तर भारतीय संगीत दोनों के ही सुर लगाव के तरीके पर अधिकार प्राप्त किया। उन्होनें भारतीय संगीत की इन दोनों ही धाराओं की विभिन्न विधाओं तथा उनकी सूक्ष्मताओं का गहन अध्ययन कर अपनी विशेष शैली का विकास किया था। उन्होनें भक्ति मार्ग का अवलम्बन लिया और यह प्रतिस्थापित किया कि भारतीय संगीत मात्र भौतिक मनोरंजन का साधन नहीं अपितु वह तो मुख्यत: आनन्दानुभूति तथा परमात्मा से आत्मा के साक्षात्कार का माध्यम है। उन्होनें दक्षिण व उत्तर भारतीय कवियों के पदों को कुशलता के साथ गाया और इस प्रकार अपरोक्ष रूप से राष्ट्रीय एकता को सदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उत्तर भारतीय भक्त कवियों में मीरा से तो एम0एस0 का परिचय फिल्म मीरा के निर्माण काल में ही हो गया था और उनके पद आजीवन एम0एस0 के कार्यक्रमों के अनिवार्य अंग बनें रहे। इसके अतिरिक्त सूर, तुलसी, कबीर, नानक आदि के पदों और संत तुकाराम के अभंगों को भी उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ गाया। बहुत कम लोगों ने उनके द्वारा गाये गये छोटे ख्यालों और ठुमरियों को सुना होगा। 'ना मानूंगी' - मिश्र ख़माज, 'नीर भरन कैसे जाऊ' 'तिलक कामोद, 'मानो मानों कन्हैया' - जौनपुरी जैसी उनकी बन्दिशें उनकी विशेष शैली को प्रतिबिम्बित करते हुऐ एक अलग ही रंग प्रस्तुत करती हैं।

11 दिसम्बर, 2004 को एम0एस0 सुब्बुलक्ष्मी का स्वर सदैव के लिए नादब्रह्म में विलीन हो गया। जिस प्रकार षड्ज से गान्धार स्वर स्वयंभू रूप में उत्पन्न होता है, उसी प्रकार एम0एस0 सुब्बुलक्ष्मी के गायन में सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रार्थना विद्यमान रहती थी - 'हरि तुम हरो जन की पीर।'

बिन्दु से बिन्दु तक-रजा

डॉ. इन्दिरा अग्रवाल



सैयद हैदर रजा यानि कि एस.एच. रजा। रजा जी जब आठ वर्ष के ही थे कि ध्यान करते हुए उनका परिचय बिन्दु की अवधारणा से हुआ। यही बिन्दु कलाकार रजा के दिमाग पर एक लम्बे अरसे तक छाया रहा और उनकी कृतियों का अनिवार्य भाग बन गया।

रजा का भारत प्रेम हम सबको भारत के प्रति नई निष्ठा से प्यार करने और अपने-अपने दायित्वों को ईमानदारी से निभाने की प्रेरणा देता है। उनके रंग काले शून्य से जन्म लेकर दीप्तिमान होते चले जाने की कामना करते रहते हैं। वे कहते हैं-

''इस तम-शून्य में

तैरती है जगत समीक्षा

बिन्दु की केन्द्रीय अवधारणा के कारण रजा की कृतियों की व्याख्या अब तांत्रिक कृतियों के रूप में की जाती है। लेकिन वृत्त या वर्गाकार को केन्द्रीय बिम्ब के रूप में अपनाने मात्र से उनकी कृतियाँ तांत्रिक नहीं बन जाती हैं। भले ही वे उन्हें बिन्दु, सूर्य या जमीन कहते रहें, उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि तंत्र दर्शन बहुत जटिल है। वे इसके विश्वासों या कर्मकाण्डों के बारे में बेहद कम जानते हैं। अपने काम में उनकी दिलचस्पी बुनियादी तौर पर जीवन के रूपाकारों में है और उनके सभी प्रयास एक सार्थक चित्रमय तर्क की दिशा में किये गये हैं। इसके परिणामस्वरूप उनकी कलाकृतियाँ विचार और कर्म में उन कृतियों से तात्विक स्तर पर एकदम भिन्न हैं जिन्हें भारत या विदेशों में तांत्रिक कला के पुनर्जागरण के रूप में जाना जा रहा है।

रजा सन् 1950 (28 वर्ष उम्र) में भारत छोड़कर फ्रांस जा बसे थे और आज 89 वर्ष की उम्र में फ्रांस की सरहद में भारतीय बिन्दु का विश्लेषण कर रहे हैं। लेकिन उनकी कृतियाँ अतीत की स्मृतियों से ओतप्रोत है क्योंकि उन्होंने भारतीय संवेदना और रंग योजना की सहायता से कैनवास पर उन्हें सजीवता प्रदान की है। रजा के शब्दों में, ''मैं चाहता हूँ कि जिस चीज पर भी बोलूँ साफ-साफ अपनी बात कह सकूँ। क्लियर थिंकिग को मैं पसन्द करता हूँ।

कलाकार के काम करने की अपनी शर्तें होती हैं। वह इसलिये तो अपनी कला को तोड़ता मरोड़ता नहीं है कि समाज उसे मान ही ले। मैं सोचता हूँ कि अगर किसी समाज को लगता है कि कोई कलाकार है तो उसके लिये वह स्वयं उसे ढूंढ़ेगा।''

उनका मानना है कि, ''मेरी धारणा है कि चित्र बनाने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। कला कर्म समय मांगता है, संयम चाहता है। मानवीय अनुभव सिर्फ आँख से प्रकृति को देखना ही नहीं है बल्कि वह महसूस करना भी है जो आँख की पुतली की परिधि से परे भी दिखाई देता है। हम ऊष्णता महसूस कर सकते हैं, आँधी का झोंका झेल सकते हैं। ताजी हवा की गंध, जंगल का संगीत, चिड़ियों की चहचाहट सुन सकते हैं। नंगी आँखों से देखने की क्षमता से आगे बढ़कर हम इन तमाम अनुभवों को मन के भीतर तक महसूस कर सकते हैं। यही सम्पूर्ण अनुभूति है किसी संवेदनशील व्यक्ति के लिए परन्तु चित्रकार, कवि कलाकार की क्षमता सामान्य से थोड़ी अधिक होती है।''

रजा प्रभावों को बुरा नहीं समझते, अच्छा तो यह है कि हम खुलकर स्वीकार करें कि हमारे ऊपर कौन से प्रभाव पड़ें। जहाँ तक यंत्रविधि का सवाल है वे नहीं मानते कि कला को उससे कोई बड़ा खतरा है। यंत्रविधि की दी हुई तमाम चीजों को अपनाना भी पड़ेगा।

वे कहते हैं, ''चाक्षुष यथार्थ का बड़ा सम्मोहन है। कोई इसमें सन्देह नहीं कर सकता क्योंकि पुतलियाँ अपना पहले पाठ दर्ज करती हैं लेकिन जल्द ही हमें आभास होता है कि कला के लिये यह वास्तविकता ही बहुत कुछ नहीं है। संवेदनाओं में सारे हुजूम के संग मस्तिष्क को कला की माँगों की गहरी समझ के लिये दृष्टि के केन्द्र में चाक्षुष यथार्थ को रखना होगा।''

'बिन्दु' एक शक्ति एकाग्रता का लघु प्रतीक है। जिस बिन्दु से हर एक वस्तु प्रकट होती है और जिसमें हर एक वस्तु विसर्जित होती है। चित्रकला एक सजीव वस्तु है जो सांस लेती है। एक चित्रकार के पास दृष्टि होनी चाहिये क्योंकि एक सजीव अवधारण और छिपे हुए यथार्थ का अन्वेषण इस दृष्टि से ही सम्भव है। चित्र के पीछे का विचार हरेक के पास होता है और काम के लिये स्वत: स्फूर्त तात्कालिक ऊर्जा का काम करती है। कला रचना के लिये बड़े धर्म की आवश्यकता है। मन और जीवन के बीच, दैनिक कार्य के साथ एक निरन्तर संवाद होना चाहिये, प्रकृति बड़ी विराट है, हमारी समझ बहुत कम। ज्ञान हमें किसी दूरी तक ले जा सकता है। फिर एक क्षण आता है। मन: आकाश में प्रकृति के दृश्य नहीं, प्रकृति ही दिखाई देती है। ऐसा रजा जी का सोचना है।

वे मानते हैं कि चित्रकला सीखी नहीं जाती है। पढ़ाई नहीं जाती है। फिर भी कला केन्द्र और कला विद्यालय आवश्यक हैं। पुस्तकों में, इतिहास में, शिक्षकों, मित्रों या चित्रकारों के साथ, सृष्टि और कला का सहारा लेते हुए अपनी निजी दृष्टि को पाना है। इसमें मुख्य आवश्यकता है पीड़ा और कठोर कार्य संकल्प की।

रेखाओं और रंगों की श्रेष्ठता हमें नहीं भूलनी चाहिये। आधुनिक भारतीय कला ने फिर से इन्हें अपनाया है। इनके अस्तित्व को, इनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को तत्वों के संयोग के बिना चित्र नहीं बनते। इनका खुद का भीतरी तर्क है। इनकी समझ जरूरी है। केवल बुद्धि या विचार से नहीं हमारी तमाम मानवीय और आत्मिक शक्तियों से क्रान्ति, आन्दोलन रोके नहीं जा सकते। कलात्मक सीमाओं पर वही तमाम क्रियाएँ पाई जाती हैं, जो प्राकृतिक समस्याओं में प्रत्यक्ष हैं। वही अंकुरण हैं। वही गर्भ धारण, वही गर्भाविधि और जन्म है। चित्रकार जीवन या कलाकृतियों

के आस-पास ही बात कर पाता है। स्वाद, सुगन्ध, पीड़ा, आनन्द समझाये नहीं जाते हैं, इनका अनुभव होना चाहिये।

रजा के शब्दों में, ''चित्र बनाना मेरे लिये धर्म है। मैं वैसी ही आस्था से काम करता हूँ, जैसे धार्मिक आचार्य करता है। मनुष्य और ब्राह्मण का आन्तरिक संबंध होता है। और बहुत बड़ी बात है इसे चित्रकला में लाना। मैं चाहता हूँ चित्र बने, काले रंग से शुरू होकर सारे रंग की ओर जाय। फिर सफेद कैनवास की तरफ जाये। चित्रकार रूप का ख्याल करें और उसके बारे में सोचें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुछ मौलिक ज्यामितीय रूपाकार हैं, जैसे रेखा, वृत्त, त्रिभुज, वर्ण, षट्भुज आदि। ये सभी रूपाकार सीधे हो सकते हैं या त्रिआयामी भी हो सकते हैं। दैहिक और आत्मिक तत्वों के मिलने से एक किस्म की ऊर्जा पैदा होती है। इस ऊर्जा से रंग दिखाई देते हैं। ये रंग पाँच हैं। हिन्दू धर्म में इन्हें पंच तत्व कहते हैं। ''क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा।'' अब इन पांच तत्वों को केन्द्रीकृत संगठित किया जाये तो वही बात होती है जो पंचभूत शैली में होती है। आकृति चित्र के लिहाज से ऐसी सुन्दर रहे कि चित्र लगे। वरना चित्र, चित्र नहीं होंगे। चित्र में चित्रता आनी ही चाहिये।''

रजा भावी कलाकारों के लिये एक संदेश भी देना चाहते हैं कि, ''आँखें बन्द करके चित्र बनाये नहीं जा सकते हैं। आप आँख बन्द करके संगीत सुन सकते हैं। सिर्फ आँखों से नहीं, मन से, हृदय से भी और तमाम सोचने की शक्ति से भी चित्र बनने चाहिये। हम प्रेम को समझते हैं उसके मर्म को छूते हैं। भाषा को, शब्दों को समझते हैं, तब जाकर प्रेम के ऊपर अच्छी कविता लिखी जा सकती है और यही बात चित्रों के लिये है।''

रजा अपने स्टूडियों में हर रोज दोपहर एक बजे पहुँच जाते हैं, पहुँचकर ही काम शुरू कर दें ऐसा नहीं है। कई बार स्टूडियों पहुँचकर अधूरे काम को देखते हैं और यदि कोई नया कैनवास शुरू करना हो तो कैनवास के सामने आधा या एक घंटा बैठकर रजा मनन करते रहते हैं। फर्श पर बैठकर वे काम करते हैं। सफेद कैनवास पर अक्सर रजा हल्के पीले रंग को इस्तेमाल करते हैं- उसी से कुछ करने की शुरूआत होती है, इमेज की शुरूआत बाद में अपेक्षित रंग आते हैं। रजा ब्रुश से सीधे काम करते हैं। कैनवास पर पेन्सिल से कभी-कुछ नहीं बनाते। रेखांकन या ड्राइंग रजा करते जरूर हैं लेकिन वे उन्हें दिखाते नहीं हैं। रजा मानते हैं कि रेखा एक महत्वपूर्ण साधन हैं कला के लिये और रेखायें चित्र की बुनियाद हैं जो एक फार्म को परिष्कृत करती है। उसे आगे बढ़ा सकती है। लेकिन रेखायें बनाकर उन पर रंग लगा दिये जायें यह कोई कलात्मक बात नहीं होगी। रजा के पास चित्र बनाने के पहले एक सामान्य विचार होता है, जो रंगों के प्रभुत्व के रूप में सामने आता है। इस पर सोचना पड़ता है विकसित करना पड़ता है। केवल मन ही मन या पेंसिल से उसे वे विकसित नहीं करते। यह इमेज वे कभी-कभी स्केच कर लेते हैं। या कैनवास के ऊपर अधिकतर कुछ लाइनें खींच लेते हैं, यह इमेज धीरे-धीरे बढ़ती है। एक ढाँचा सा चित्र का तैयार हो जाता है, कुछ समय बाद बढ़ती है फिर इमेज। जिस पर रजा रंग लगाना शुरू करते हैं। इसमें जो दूसरे डीटेल्स या आकार आते हैं- उनमें बहुत इंप्रोवाइजेशन करते हैं। चित्र धीरे-धीरे बढ़ता है। कहीं-कहीं वे परिवर्तन भी करते हैं। लेकिन मुख्य भाव से रचना को कहीं क्षति नहीं पहुँचती। भाव रचना नहीं बदलते। और फिर वह भक्त भी आ जाता है कि जो बात करनी है वह कैनवास में आ गई है, ब्रश नीचे रख दिया जाता है और

चित्र हस्ताक्षर के साथ पूर्ण हो जाता है।

रजा के चित्र अपने विधान में इतने संश्लिष्ट हैं और उसमें रंग और स्पेस इस तरह गुंफित होते हैं कि वे किसी भी स्थल पर पूर्ण माने जा सकते हैं। रजा को अच्छी पेंटिंग में दिलचस्पी नहीं है उसका अच्छा होना भर काफ़ी नहीं है बल्कि चित्र को चित्र होना चाहिये जैसे कविता को कविता होना चाहिये। रंग तत्व रजा के चित्रों का जीवन है जिसका संबंध बुद्धि से नहीं बल्कि पूरी प्रक्रिया से है। सूर्य की किरणों से रंगों के विधान यानि स्पेक्ट्रम के बारे में रजा ने उन्हें खुद एलिमेंट बना रखा है। रजा के यहाँ ये पाँच तत्व सफेद, काला, पीला, नीला और लाल रंग विज्ञान सम्मत महत्व रखते हैं।

'बिन्दू' को लेकर रजा ने एक पोस्टर यूनेस्कों के लिये बनाया था जो शांति के लिये था। उसमें व्हाइट येलो ऑफ बेस है। रंगों में भी प्रतीकात्मक अर्थ को रजा मानते हैं। कभी गुथे हुए कभी-सीधे अलग भागते ये रंग विचारों के विविध आयाम हैं इन जगमग रंगों तले एक बेहद सरल और मूल सत्य छिपा है। ऊर्जा से ओतप्रोत नगीनों से ये रंग जादू भरे रहस्यमय आकारों के स्पर्श मात्र से बोल उठते हैं रजा के रंग आक्रामक हैं। इनमें चीख का सा आवेग है। रंगों में रोशनी के अंगार हैं। रजा के यहाँ सबसे पहले और सबसे अन्त में थे रंग। यहाँ ये रंगकृतियाँ रंग स्मृतियाँ भी हैं। उनके रंग बोलते हैं। अपनी सादगी में अपनी चकाचौंध में वे धधकते हैं। रजा के रंग बज उठते हैं जो रजा से हर बार पहचान कराते हैं। रजा की रूचि तो रंगाकारों की ऊर्जा को व्यवस्थित करने में है और ये रंग उत्तेजक मनोहारी होते हुए न तो सिर्फ भारतीय हैं और न सिर्फ फ्राँसीसी, न वे मध्य प्रदेश के हैं न गोरबियो (स्टूडियो का नाम) के बल्कि उनके रंग अर्थमय गरिमा के साथ वैयक्तिक प्रतिमा की बेजोड़ लपकभरी कौंध भी है। रजा चाहते हैं कि चित्र बने काले रंग से शुरू होकर सारे रंगों की ओर जायें सिर्फ सफेद कैनवास की तरफ न जायें।

रजा आधुनिक भारतीय चित्रकला के उस मुकाम पर हैं जहाँ पहुँचना अनेकों की चाह होती है और हजारों के लिये सपना। रजा ने भारतीय चित्रकला के इतिहास का निर्माण किया है। अपनी जिन्दगी का बेहतरी हिस्सा चित्रों को लगातार और ताजगी से रचने में बिताया है। निश्चय ही उनकी अपनी पहचान उनके चित्रों से ही है। यही पहचान उनकी विशिष्ट कलावृत्ति है।

रजा के लैंडस्केप में प्रारम्भ में प्रकृति से संवाद के लिये भाषा नहीं थी। कुछ भय भी था। आज जब हम उनके लैंडस्केप देखते हैं तो हमें चमचमाते रंगों में दिपदिपाता सूर्य दिखाई देता है। जीवन से भरा बीज है, उसमें प्रस्फुटन है, अंकुरण है, सजीली लहलहाती बालियाँ हैं जहाँ बिन्दु से परमबिन्दु तक की अनोखी रंग यात्रा का वैभव है।

रजा के रंगों की तीव्रता के हर प्रसंग में रैखिक ज्यामितीकरण बच्चे की जिद सी घुसपैठ की हद तक चित्रों को घेरे रहते हैं।

बिन्दु एक निरीह बिन्दु नहीं है, बल्कि समूचे दृश्य का आरम्भिक क्षण है और जरूरी ऊर्जा और शक्ति के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु भी है। रजा के चित्रों में रंग वैभव की अनूठी परम्परा है जो उनके हर चित्र की राजसी सम्पन्नता का चाक्षुष विलास किये हुये है। एक मादक सम्मोहन से विभोर करते हुए से ये चित्र दर्शकों से संवाद करते हैं। जिस पर एक संगीतज्ञ रियाज

के दौरान बारम्बार राग को मुख्य बिन्दु पर लौट-लौट आता है और रागों की इस पुनरावृत्ति में वह हर बार एक नया उन्मेष भी प्रस्तुत करता है। उसी प्रकार रजा भी अपनी कला में वैचारिक चाक्षुष चमक के साथ हर बार नये अंदाज में आगे बढ़ते हैं और पुनः बिन्दु पर पहुँचकर आगे बढ़ने की चेष्टा हर बार करते हैं।

रजा ने अपने यहाँ बिन्दु का प्रयोग बीज तत्व के रूप में काफी लम्बे समय तक किया है फिर जमीन, अंकुरण, परागण, जन जलबिन्दु, सूर्य, सूर्य प्रकाश, रश्मियाँ आदि से मिलकर बने हुए कालियाँ, पौधे के पल्लवन का रूप चित्रों को दिया है। बाद के चित्रों (1990) में तो लहलहाती छोटी-छोटी पौध को एक कतार में चौखानी क्यारियों या खेत के प्रतीक रूप में रंगाकिंत किया है। यह तमाम प्रक्रिया जीवन की खोज, तत्वों का स्पन्दन और शान्ति के लिये रजा के चित्रों में देखी जा सकती है। बिन्दु वह वृहत काल बिन्दु है जिसे शून्यता, बूँद, बीज या जीवाणु जैसा कुछ उत्पतित ही है। ज्योति से बाहर की ओर फूटती हुई प्ररूणों, रंगों, धड़कनों, ऊर्जा, शब्द प्रयोग और समय में गतिमान होती हुई है। बिन्दु श्रृंखला में जिनमें स्रोत रंग ही है और रजा ने इन मूल परिकल्पनाओं को लेकर ही कला के क्षेत्र में पदार्पण नहीं किया। बल्कि वे अपनी कला के माध्यम से इन तक पहुँचे हैं।

अन्त में, रजा का संदेश है कि चित्र में चित्रता हमेशा होनी चाहिये, वे केवल इलस्ट्रेटिव न हों। केवल रंग रेखा से चित्र, चित्र नहीं बनाते। इनमें तत्वों का समावेश होना चाहिये। संगीत की तरह इनमें रंगों को मिलाना होता है। यह ऐसे में एक तरह का रंग संगीत वृन्द बन जाता है- नये तरीके से देखने के ढंग की मानिन्द। रजा के चित्रों में काल्पनिक भव्यता है, संगीत संवेदन भारतीय चित्रकला का अविभाज्य बिन्दु है, लेकिन यह भारत का एकाधिकार नहीं है। रजा की दृष्टि में संगीत, कविता और चित्रकला सहादर है। यदि एक संस्कृत कविता उनके किसी चित्र का हिस्सा है तो 'हीगेल' भी सौन्दर्यशास्त्र पर अपने व्याख्यानों में ध्वनियों, शब्दों और रंगों के मेल और संवादों पर बोलते हैं ऐसे में चित्रकला दृश्य संगीत है, उनका जादू रंगों के ऐसे प्रयोग में है, जो रंग प्रयोग का चरम बिन्दु निर्मित करता है।

कंट्टिगेरी कृष्ण हैब्बार का लयात्मकतापूर्ण चित्रण

पूनम रानी

के.के. हैब्बार ने समकालीन कला के विकास में बम्बई क्षेत्र में अत्यधिक योगदान दिया। उन्होंने ऐसे रूपों या आकारों को चित्रित किया जिनका चरित्र भारतीय था और भारतीय सांस्कृति परम्परा की क्रमबद्धता का एक हिस्सा है और साथ ही उनमें एक समकालीन तत्व है। हैब्बार का आरम्भिक रेखांकन लयात्मकता पूर्ण तथा रोमांटिक भावना उत्पन्न करने वाला है। प्रगतिशील भारत का चित्रण तथा लोगों के गतिपूर्ण रेखांकन वाले इस कलाकार का जन्म दक्षिणी कन्नड़ के एक छोटे से गांव कंट्टिगेरी में 1 जून 1912 को हुआ था बचपन में ही उन्होंने ग्रामीण दृश्यों तथा मेलों तमाशों के चित्रण में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था।

हैब्बार की आरम्भिक शिक्षा बम्बई में हुई सन् 1938 में सर जेजे स्कूल ऑफ आर्टस से चित्रकला में डिप्लोमा परीक्षा उत्तीर्ण की। 1940 के पश्चात हैब्बार पश्चिमी प्रभाववाद तथा मुगल राजपूत आदि शैलियों से मुक्त होकर नये प्रयोगों में जुट गये 1948-50 में उन्होंने पेरिस अकादमी जूलिया में भी शिक्षा प्राप्त की वह पुन: भारत लौट कर जेजे स्कूल ऑफ आर्टस में शिक्षण कार्य करने लगे। कुछ समय बाद यह एक व्यवसायिक चित्रकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इनकी देश-विदेश में अनेक प्रदर्शनियां हुई तथा पद्मश्री से सुशोभित किया गया तथा 1976 में वे ललित कला अकादमी के सदस्य मनोनीत किये गये 1980 से 1984 तक वे अकादमी के अध्यक्ष पद पर भी रहे।

हैब्बार उस पीढ़ी के कलाकार हैं जब एक ओर टैगोर शैली का प्रभाव था। दूसरी ओर बम्बई की पाश्चात्य प्रणाली का परन्तु वह उन सब से मुक्त होकर स्वत: प्रयोगों में प्रयासरत रहे उनकी कृतियों में उज्जवल वर्ण, उष्णता, छाया प्रकाश, बालकों जैसी सरलता तथा जीवन की परिपूर्णता है। उनके दृश्यचित्र ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कलाकार उस मौसम में स्वयं खो गया हो, सूरज की गर्मी तथा वर्षा का आनन्द जैसे रंग संयोजनों का उत्तम उदाहरण है उनकी रेखाओं में असीमित व्यंजना शक्ति है। आपके रेखांकन ऐसे प्रतीत होते है जैसे बिना कलम उठाये पूर्ण किये गये हैं। उनकी कला में एक प्रकार की सौम्यता है जिससे हम उसे सहज ही स्वीकार कर लेते हैं। उन्होंने लय की अनुभूति को आत्मसात् करने के लिये कत्थक नृत्य के सुप्रसिद्ध आचार्य पंडित सुन्दरलाल से नृत्य कला की शिक्षा भी ली।

हैब्बार अम्रता शेरगिल से प्रभावित थे। बम्बई आर्ट-सोसाइटी की प्रर्दशनी में हैब्बार ने अम्रताशेरगिल की तीन युवतियों वाला चित्र देख जिसमें शेरगिल की चित्रांकन सरलता, तूलिका की तलस्पर्शी भावव्यंजना, भारतीयता की मनोभूमि तथा नारकीयता सभी कुछ स्पष्ट है।

हैब्बार को रेखा की संवेदनशीलता ने अधिक प्रभावित किया। उन्होंने ग्रामीण दृश्यों नर्तकियों आदि का रेखा के माध्यम से बड़ा ही मनमोहक चित्रण किया है। उनके प्रभावपूर्ण रेखांकन में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। पिकासों उनके प्रिय कलाकार थे। जीवन का प्रत्येक रचनात्मक पहलू पिकासो के कृतित्व से प्रभावित था।

पेरिस की अकादमी में अध्ययन के परिणाम स्वरूप उनकी कला में रेख तथा रूप का आधुनिक ढंग से सामंजस्य हुआ। 1940-50 के मध्य विकसित इस शैली में पूर्वी तथ पश्चिमी कला का समन्वय है। इसमें छाया-प्रकाश की विधि को छोड़ दिया गया है और कठोर से लेकर कोमल की ओर रंगो की संगतियों का प्रयोग मातिस तथा ब्राक की तरह किया गया है। 1960 के पश्चात् अमूर्तिकरण की पद्धति का भी उन्होंने अपनी आकृति मूलक शैली में समाहार कर लिया।

हैब्बार ने हजारों रेखांकनों के साथ-साथ भित्ती चित्रण, व्यक्ति चित्रण, तथा सृजनात्मक दृष्टांत चित्रण भी किये है। उनकी रूप योजना समन्वयात्मक होते हुए भी मूलत: भारतीय है। उनकी रेखायें शास्त्रीय होते हुए भी रूढ़ नहीं हैं अलंकारिक होते हुए भी किसी की अनुकृति नहीं है। उनमें भारतीय मूर्ति-शिल्प की लयात्मकता समृद्धि और प्रवाह है। तथा वे सरल और सहज हैं। मयूर, नर्तकी, दीपावली, होली, ढोल वादक तथा मुर्गों की लड़ाई आदि उनके कुछ प्रमुख चित्र हैं।

वह भारतीय पद्धति में चित्रांकन के साथ-साथ भारतीय संगीत की ओर भी मुड़ गये। वे भारतीय शास्त्रीय तथा लोक संगीत से अधिक प्रभवित थे। इसी नृत्य-संगीत की अमिट छाप ने उन्हें गायकों, वादकों तथा नृत्यांगनाओं के लयात्मक रेखांकन के लिये विवश किया। उनके रेखांकन में ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई गायक सुरों को बांध रहा हो। हैब्बार किसी एक वाद में बंधकर नहीं चले वे सदैव स्वतंत्र कला अजीविका के पक्षधर रहे हैं। उनकी कला में उनका अन्त:करण, रंग व रेखाओं में निबद्ध हो साकार हो उठता है। उनके चित्र माँ पावों में झूलता लड़का रंग संयोजन का उत्तम उदाहरण है।

अपनी प्रौढ़ावस्था में आध्यात्मिकता की ओर मुड़ गये जिससे उन्हें धार्मिक भावनाओं से कला में उत्पन्न होने वाली गहराई का अनुभव हुआ और उन्होंने जीवन के दुखों से छुटकारे के रूप में कला के माध्यम को टटोलने का प्रयत्न किया। उनकी इस प्रवृति का विकास हमें उनके अधिकाधिक अमूर्त होते हुए दृश्यांकनों एवं रंगों के धनीभूत प्रयोगों में दिखाई देता है। इस समय के इनके प्रयोग ब्रह्मांड सम्बन्धी विषय वस्तु वाले चित्रों में है। जिनमें सपाट धरातल पर तीव्र रंगों का प्रयोग किया है। अन्त समय में शारीरिक रूप से अधिक दुर्बलता का सामना करना पड़ा, फिर भी वह कला सृजन करते रहे। बम्बई में बांद्रा उपनगर की कला नगर कालोनी में रहने वाले हैब्बार के चित्रों में ग्रामीण परिवेश की झलक देखकर मैं हमेशा यह सोचती हूं कि देश-विदेश में भ्रमण कर ख्याति अर्जित करने वाले इस प्रतिभाशाली कलाकार ने अपनी भारतीयता को नहीं भुलाया और समकालीन चित्रकला के विकास में अपनी कला द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1991 में उनका 80वां जन्मदिन मनाया गया और 26 मार्च, 1996 में मुम्बई में भारत ने इस वरिष्ठ कलाकार को नम आखों से विदा किया।

यथार्थ सत्यों की क्रांत पंथी : 'अमृता शेरगिल'

-डॉ0 इन्दु शर्मा

कला कलाकार की मानसिक भावनाओं की प्राञ्जल व्यंजना है। कलाकार के अन्तर्मन की तरंगें उसकी कृतियों में अनायास ही झिलमिलाती दृष्टिगोचर होती हैं। एक सच्चा कलाकार वही है; जो ठहरी हुई परम्पराओं का पुनरुद्धार करके उदात्त कला का दिग्दर्शन कराता है तथा कला के प्रमुख उद्देश्य सत्यं शिवं सुन्दरं की समष्टि करके समाज में एक नयी क्रान्ति उत्पन्न करता है। भारतीय आधुनिक चित्रकला के इतिहास में 'अमृता शेरगिल' एक ऐसी ही महान नारी चित्रकार हैं; जिन्होंने भारतीय जनजीवन की आत्मा की अमरता खोज कर स्वस्थ सामाजिक यथार्थ के चित्र प्रस्तुत करके कला जगत को मौलिक एवं संवर्धनशील तत्व प्रदान किये। अमृता जी ने कला विध ाानों को निरन्तर स्वतंत्र रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर करते हुए कला के क्षेत्र में अनुकरणीय तथा आकर्षक भूमिका का निर्माण किया। उन्होंने परम्परागत भारतीय चित्र शैलियों, भित्ति चित्रों एवं योरोप की आधुनिक कला प्रवृत्तियों के समन्वय से जिसे नये युग का सूत्रपात किया तथा कला के क्षेत्र में जो नूतन प्रयोग किये; उनकी इन सभी गतिविधियों ने भारतीय आधुनिक कला के क्षेत्र में नयी क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

दलित वर्ग को क्षुधा, पिपासा, दुःख व वेदना की मौन वाणी से झंकृत एवं नारी स्वभाव की कोमलता, दया, ममता तथा एकाकीपन के सरल सपाट रूपों से विभूषित अमृता जी की कृतियों ने युग परिवर्तन का महान कार्य किया। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जो अद्भुत कार्य मुंशी प्रेमचंद जी ने किया; चित्रकला के क्षेत्र में वही अनूठी देन अमृता जी की है। उनकी कृतियों का मूल्यांकन करते समय तुरंत यह विचार मस्तिष्क में कौंधता है कि किस प्रकार चित्रकला भी यथार्थोन्मुख होकर स्वस्थ समाज की स्थापना करने के लिए बेचैन हो उठी है। इन्होंने अपने युग की विपरीत परिस्थितियों का सामना कर भारतीय चित्रकला को ऐसे नूतन तत्व प्रदान किये; जिससे आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में उनका विशिष्ट स्थान बन गया। आरम्भ में रुढ़िवादी कलाविद्वों ने अमृता जी पर आरोप लगाये कि उनके चित्रों में भारतीय आदर्श को सटीक स्थापना नहीं है; वे मात्र निर्जीव, उदास, बुझे हुये, कुरूप एवं भद्दे मॉडल्स के आधार पर चित्र रचना करती हैं; परन्तु ईर्ष्या-द्वेष की इन भावनाओं को इतिहास ने मिथ्या सिद्ध किया और आगे चलकर इन्हीं चित्रों ने भारतीय चित्रकला में युग प्रवर्तनकारी स्थान प्राप्त किया; जिससे वे आधुनिक भारतीय चित्रकला की जन्मदात्री कहलायीं। उनके इस रूप का के0के0 हैब्बर, नारायण श्रीधर बेन्द्रे, मकबूल फिदा हुसैन, रामकुमार आदि कलाकारों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

कला के क्षेत्र में सदैव से ही नारी कलाकार अल्प संख्या में रहे हैं। एक पाश्चात्य कलाविद् ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'विश्व में जितने भी महान चित्रकार हुए हैं; वे सब पुरुष ही हैं।' यह कथन आंशिक रूप से सत्य होते हुए भी अमृता जी के दृष्टान्त से इस तथ्य की प्रत्यक्ष पुष्टि होती है कि यदि सुविधाएं एवं अवसर प्रदान की जायें तो नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से आगे बढ़ सकती हैं। अतः अनूठी सुख सुविधाओं से पूर्ण अमृता जी का जन्म 30 जनवरी 1913 को हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में हुआ था। इनकी माँ हंगेरियन एवं पिता सरदार उमरावसिंह अमृतसर के धनाढ्य परिवार के थे। बाल्यावस्था से ही चित्रकला के प्रति उनकी विशेष रुचि थी; उन्होंने स्वयं कहा है कि- ''मुझे ऐसा लगता है मानों मैंने किसी एक घड़ी में चित्रांकन का श्री गणेश न किया

हो, बल्कि मैं सदा से ही चित्र आँकती रही हूँ, और यह विचित्र विश्वास भी मेरे हृदय में बद्धमूल रहा है कि मेरे जीवन का ध्येय केवल चित्रकार बनना ही था और कुछ नहीं.......।'' सन् 1924 में ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही वे अपनी माँ के साथ इटली चली गई और फ्लोरेंस की एक चित्रशाला में प्रवेश ले लिया। यहाँ इन्होंने मॉडल पद्धति पर विशेष अभ्यास किया और अपनी विलक्षण प्रतिभा, लगन, कठोर श्रम और दृढ़ इच्छा शक्ति से अल्पायु में ही कुशल चित्रकार बनने की दिशा में कदम बढ़ा लिये। इसके पश्चात् कुछ अवकाश के लिए ये भारत आई और पुनः पेरिस चली गईं। वहाँ जाकर चित्रकार 'पिएर वैयां' के निर्देशन में कुछ समय तक कला का अभ्यास किया। तत्पश्चात् 'प्रोफेसर लूसियां सीमों' एवं 'गोग्याँ' की शिष्या बनी।

सन् 1931 में पेरिस के 'ग्रांद सलो' में अमृता जी ने अपने चित्रों की प्रथम प्रदर्शिनी आयोजित की। इस प्रदर्शिनी में प्रदर्शित 'धड़' नामक चित्र में एक नारी की अनावृत पीठ के चित्रण में छाया प्रकाश का संयोजन इतना अद्‌भुत था कि कला समीक्षकों ने उनकी अत्यधिक प्रशंसा की। इसके पश्चात 'युवतियाँ' नामक चित्र प्रदर्शित करके अमृता जी ने अनूठी प्रसिद्धि अर्जित की। उनके ये सभी चित्र 'मॉडल-पद्धति' तथा 'एकेडेमिक शैली' से विभूषित थे। शनैः शनैः प्रतिभा के क्रमिक विकास के साथ ही साथ वे इन शैलियों से मुक्त होकर मौलिक दिशा की ओर उन्मुख हो गई।

सन् 1934 में पेरिस की चित्रशालाओं से चित्रकला का गहन अध्ययन प्रशिक्षण एवं अभ्यास प्राप्त करके अमृता शेरगिल भारत आकर 'शिमला' में रहने लगी। लगभग 20 वर्ष की अल्पायु में उनकी चित्रशाला में 'गोग्याँ', 'सेजाँ' एवं 'मातीश' जैसे यूरोपीय कलाकारों की तल स्पर्शिनी कला परम्परा एशियाई अंकुरो में पनपने लगी। भारत आते ही 'कुछ भारतीय लड़कियाँ' नामक चित्र पर दिल्ली की 'All India Fine Arts and Crafts Society' द्वारा 'स्वर्ण-पदक' प्राप्त किया। यहाँ से अमृता जी की महान कला-यात्रा आरम्भ हुई। सन् 1936-37 में उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और उनके स्थानों पर आपके चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित की गई। भारत दर्शन के समय अजन्ता की कला देखकर वे अत्यधिक प्रभावित हुयीं और उन्होंने इसके बाद के निर्मित चित्रों में अजंता के अंतरतम् के स्तर का स्पर्श किया।

अजंता दर्शन के पश्चात् उनके बड़े-बड़े चित्रपटों में भित्ति चित्रण शैली के गुणों का समावेश हुआ; मुख मुद्राओं में आत्मा की अमरता मुखरित हुई और अभिप्रायों में जीवन के विविध पक्ष परिलक्षित हुये। अजंता का उनके मन मस्तिष्क पर अकल्पनीय प्रभाव पड़ा किन्तु उन्होंने अजन्ता की कमी भी अनुकरण नहीं किया। इतना अवश्य है कि चित्रकार गोग्याँ की शिष्या होने के नाते उन्होंने Forms को सरल बनाया और बुझी हुयी रेखाओं से आवृत्त किया। कला-गुरू गोग्याँ के विषय कल्पनाशील दिवा-स्वप्नों की मादकता में प्रवाहित होते गये और अमृता जी के विषय 'सामाजिक यथार्थवादिता' में लीन होने लगे। दक्षिण भारतीय विषयों के चित्रांकनों में हमें वे अजंता के प्रभावों एवं गोग्याँ के अभिप्रायों के मध्य द्वंद्वरत; सृजन के नवल मार्ग की ओर अग्रसर दृष्टिगोचर होती हैं। 'त्रावनकोर के बच्चे एवं स्त्रियाँ' नामक चित्र में यह विशेषता स्पष्ट परिलक्षित होती है। अमृता जी ने अनुकरण की प्रवृत्ति से स्वयं को दूर रखने का सफल प्रयास किया। एक स्थान पर उन्होंने स्वयं कहा है कि- ''प्रभाव और अनुकरण भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ हैं........।''

कुषाण कालीन यक्षिणी-मूर्तिकला ने अमृता जी को लोककला की सरलता व सहजता की ओर आकर्षित किया और वे लोक जीवन एवं जाती परंपराओं की ओर उन्मुख हुईं। उत्सव, मंगल-कार्य, पर्व-त्यौहार जीवन के विविध दृश्य उनके चित्रों में अंकित हुए। ये दोनों प्रकार के

विषय चयन अमृता जी की भारत के प्रति अनुरक्ति व आत्मीयता को प्रकट करते हैं। 'गणेश पूजा' एवं 'ब्रह्मचारी' आदि चित्र इस भावना के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इन्होंने अपने चित्रों में पहाड़ी दृश्यों का बहुत सुन्दर चित्रांकन किया है। साधारण जीवन दशा, आशा-निराशा, सुख-दुःख के आकुल-विह्वल भावों को उन्होंने अपने आकर्षक वर्णों एवं रेखाओं द्वारा अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया है। 'नव-युवतियाँ', 'कहानी-वक्ता', 'नारी' आदि चित्रों में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति के सफल समन्वय की अद्वितीय झांकी दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त उनकी कला में ऐसी निर्भीकता, शक्ति-सामर्थ्य व यथार्थता थी कि वे अपनी तूलिका के सूक्ष्म रेखांकनों एवं पूर्व और पश्चिम के मिश्रित अलौकिक कला समन्वय से दर्शकों को मुग्ध कर देती थी। 'तीन बहनें पनिहारिन' 'वधू-श्रृंगार', 'पहाड़ी स्त्रियाँ' और 'याचक' जैसे चित्रों को देखने पर हमें -'पॉल सेजा' का स्मरण हो जाता है; क्योंकि उनकी ही तरह अमृता जी ने भी, इनमें कोणों में वर्तुल घुमावों तथा घनत्व का उपयोग करके अद्वितीय शक्ति और प्रभाव उत्पन्न किया है। उनका 'प्रोफेशलन मॉडल' एक अमर चित्र है; जिसमें मार्मिक भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

उपरोक्त सभी चित्रों को देखने के बाद ज्ञात होता है कि अमृता जी में रंग-भराव की प्रतिभा अद्‌भुत थी। अधिकांश चित्रकार इस तथ्य से अवगत हैं कि चित्रों में लाल रंग का प्रयोग कितना कठिन एवं विचित्र होता है; उन्होंने चित्रों में सर्वत्र ही लाल रंग के विभिन्न 'शेडों' का इतनी अधि ाकता से प्रयोग किया है; जितना अन्य कोई चित्रकार जल्दी नहीं कर पाता है। ये रंग अमृता जी के जीवन की प्रणयाकुल प्यास, नारी सुलभ कोमलता और जीवन के संघर्ष का अच्छा मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। उनके रंगों में सदैव ही एक अनूठी चमक पाई जाती है जो भराव की दृष्टि से उचटती नहीं; किन्तु विशेष स्थल पर, या विशेष आकृति को विशेष महत्व प्रदान कर देती है। उनके चित्रपटों में Sweeping. Brushes के प्रयोग के साथ साथ Mass को भरने के लिए रंगों के चौड़े-तल भी प्राप्त होते हैं सरलता और स्वल्पतम् साधनों द्वारा सर्वाधिक अभिव्यंजना की उपलब्धि प्राप्त करने में वे यूरोप के प्रभावशाली चित्रकारों के समकक्ष खड़ी प्रतीत होती है।

कलात्मक सजगता के साथ-साथ वे एक संवेदनशील नारी और आदर्श पत्नी भी थी। सन् 1938 में अमृता जो बुडापेस्ट गयीं और 'डाक्टर विक्टर ईगान' से विवाह करने के उपरान्त; उन्हीं के साथ 1939 में भारत लौट आयीं। किन्तु दुर्भाग्यवश अपने वैवाहिक जीवन का आंशिक सुख प्राप्त किये बिना ही 05 सिदम्बर 1941 में लाहौर में अमृता शेरगिल का देहावसान हो गया। अल्पवय की सृजनिका का जीवन निरंतर जिज्ञासाओं से परिपूर्ण रहा था। उन्तीस वर्ष के यौवन की उन्तीस शमाएँ प्रज्जवलित कर वे बुझ गईं; लेकिन 29 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने इतनी ख्याति प्राप्त कर ली थी कि वे विश्व-प्रख्यात कलाकार मानीं जाने लगी थीं।

अन्त में हम कह सकते हैं कि अमृता जी आज हमारे मध्य नहीं हैं; किन्तु फिर भी सामने महान कृतित्व के द्वारा वे सदैव कला जगत में विद्यमान रहेंगी; क्योंकि उन्होंने अत्यन्त दृश्यात्मक (Too Visual) कला के प्रति क्रांतिकारी विद्रोह करके अपनी कला द्वारा वह पथ प्रशस्त किया जो आज भी भारतीय चित्रकला का अपना है। जिसमें शुद्ध भारतीयता है और जन जीवन की आत्मा है।

कला-4 दृश्य कला में सृजनात्मकता

–मनीषा शर्मा

दृश्य कला की अपनी एक स्वतन्त्र भाषा है, जो मौखिक और लिखित भाषा के व्याकरणीय नियमों से परे है। यह भाषा सृजनात्मकता है जो दृश्य परम्परा के विकास में एक सहायक तत्व है। सृजनात्मकता एक मानसिक और शारीरिक क्रिया है। कला और सृजनात्मकता साथ-साथ रहती है। कला की प्रत्येक मौलिक कृति सृजनात्मक होती है और उसमें विद्यमान सृजनात्मकता की मात्रा उसकी कलात्मक समृद्धि का निर्धारण करती है। किसी कला कृति की सृजनात्मकता चार अवस्थाओं के तालमेल पर निर्भर करती है- परम्परा, पैना अवलोकन, मौलिक प्रस्तुतिकरण और तकनीक व कौशल।

सृजनात्मकता परम्परा से प्रेरणा लेकर ही विकसित होती है। प्रागैतिहासिक काल से अब तक की कला प्रक्रिया इसका उदाहरण है। सृजनात्मक ऊर्जा का भण्डार यह परम्परा ही है जिससे कला को बिम्ब और प्रतीक मिलते हैं इसलिए हर सार्थक और सृजनात्मक कला में परम्परा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। सृजनात्मकता पूरी परम्परा को नहीं तोड़ती बल्कि, कुछ बिन्दुओं पर नये आयाम जोड़कर, देखने के दायरे को विकसित करती है या देखने का तरीका बदल देती है। उदाहरण के लिए ज्यार्जेस स्यूरा ने प्रभाववाद और नव प्रभाववाद की परम्परा के अन्तर्गत ही सृजनात्मकता को विकसित किया। उसकी मौलिकता उसकी तकनीक के साथ जुड़ी थी जिसने बिन्दुओं के द्वारा आकृतियों को ठोस ढांचा दिया।

अपने सृजनात्मक विचार को प्रस्तुत करने के लिए, वस्तुओं को अपने दृष्टिकोण से देखना पड़ता है। प्रत्येक वास्तविक सृजनात्मक प्रयास हमारे अन्तर से ही निकलता है। दूसरे शब्दों में सृजन का अर्थ अपने अन्दर की व्यक्तिगत अनुभूति को अभिव्यक्त करना ही है।

आधुनिक कला के सबसे प्रतिभावान और सृजनात्मक कलाकार पिकासो ने भी अपने सृजन में विभिन्न परम्पराओं से प्रेरणा ली। अफ्रीकी नीग्रो कला और मैक्सिको की कला उसके सृजन के आधार थे। सृजनात्मकता 2 धाराओं में चलती है- एक सामूहिक सृजनात्मकता जो संस्कार मूलक, धार्मिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय अनुभूतियों से उत्पन्न होती है और दूसरी व्यक्तिगत सृजनात्मकता जो आत्म-अन्वेषण व साहस से पैदा होती है और जो जाति, सांस्कृतिक व अन्य सीमाओं को नहीं मानती। यह एक कठिन और अज्ञात प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में दृश्यात्मक समस्याएं जैसे- डिजायन, अन्तराल, माध्यम आदि सुलझानी पड़ती हैं। सृजनात्मकता एक जटिल प्रक्रिया है, जिसके लिय व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

यूरोपीय कला के आधुनिक होने की प्रक्रिया सृजनात्मकता का ही परिणाम है। आधुनिक कलाकारों ने यथार्थ की समस्या को विषयों, रूप, आकार, तकनीक आदि की विभिन्नता के द्वारा ही सुलझाया और आत्म अभिव्यंजना, रूपों का सरलीकरण, स्वप्न, शुद्ध रंगों के प्रयोग आदि के द्वारा कला में सृजनात्मकता को विकसित किया। जैसे सेंजाँ ने प्राकृतिक रूपों को ठोस ज्यामितीय रूपों में परिवर्तित किया। सेजाँ की कला भी प्रभाववादिय रंग विधान की परम्परा में ही विकसित में ही विकसित हुई लेकिन उसकी कला की मौलिकता वस्तुओं को रंगों की जगह, अधिक से अधिक ठोस आकार में प्रस्तुत करने में थी। उसके अनुसार कला को प्रकृति की अनुकृति करने की

आवश्यकता नहीं है। कलाकृतियों का एक स्वतंत्र और अलग अस्तित्व है जो प्रकृति की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं।

भारतीय कलाकारों में यामिनी राय और रवीन्द्रनाथ टैगोर की कला में सृजनात्मक तत्व दिखायी देते है। यामिनी राय ने पटुआ कला से प्रेरणा लेकर, आकारों और रंगों के सपाट तलों द्वारा कला में नवीनता का अनुभव कराया। रवीन्द्रनाथ की चित्रकला का प्रारम्भ उनकी कविताओं की काट-छाँट से हुआ जो कविताओं में संशोधन के लिए की जाती थी लेकिन इससे सृजनात्मकता का एक अलग ही रूप विकसित हुआ। कविता को अन्तिम चरण तक पहुँचाने के क्रम में एक स्वतंत्र चित्र का सृजन भी हुआ।

वर्तमान कला में सृजनात्मकता, वैचारिक रूप से और अधिक हावी है और उसका मूल आधार माध्यम और तकनीक है।

''मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ काँधे पे अपना हल लिये''

डॉ0 अनुराधा तिवारी

हंगामा मच रहा है ख्यालों की बज़्म में, तूने दबी ज़बान में जाने कहा है क्या?

अहमद नदीम कासमी की ये पंक्तियाँ बरबस याद आ जाती हैं जया के इस संग्रह से गुजरते हुए। 'शब्द' शक्ति का एक अद्भुत दस्तावेज है इस संग्रह की कहानियाँ। भावों के गुच्छे शब्दों की चादर में ऐसे बिछे हैं कि क्या ओढ़ू, क्या बिछाऊँ, क्या तहाऊँ और क्या ले जाऊँ। सूत्र-वाक्यों की ताकत ऐसी कि वाह-वाह किए बिना आगे बढ़ा न जाए। न जाने कितने अबूझे सवालों को यथास्थिति में जवाब बना दिया है जया ने। इस दुनिया से उस दुनिया के मध्य खिंचा हुआ एक तार जो कहीं रूपहला है कीं सुनहला और कहीं धूसर जया के सांसारिक पात्रों को एक ऐसे स्पार्क या कौंध से भरता जाता है जिसकी चमक और तीखापन अपने प्रभाव में पाठक की चेतना ढक लेता है। उनकी स्त्रियां लगातार यात्रा करती हैं। मन की वीणा के कोमल और पुरूष स्वर उनके रचे हुए व्यक्तित्वों को संगीत का अहलाद, ऊँचाई, सच्चाई, जीवन्तता, रागात्मकता, आरोह-अवरोह, मंद्र, मध्य, तार, गुप्त, लुप्त, विलुप्त, सशब्द, अशब्द, वेग, आवेग में लपेट कर ऐसी यात्रा करवाते हैं कि लगता है ये रास्ता खत्म न हो चलते रहें चलते रहें।

जया के पात्र बहुत सारे प्रश्नों से जूझते रहते हैं। शरीर, समाज, धर्म, परिवार, रिश्ते एवं परिणाम। इनके उत्तर देते समय वे रूढ़ियों एवं रूकावट के पत्थरों को फूंक मार कर उड़ा देते हैं। किसी भी झूठे, बनावटी-दिखावटी सामाजिक ताने-बाने को लगातार तोड़ते रहते हैं। इसके साथ ही प्रश्न के आलोक में रहस्य की परछाइयों पर प्रकाश की किरणें विकीर्ण होती चलती हैं। रहस्य अंधेरे और उजाले दोनों रूपों में मुग्ध एवं स्तम्भि कर देता है। 'तिश्नगी' में रूमी कहती है ''मैंने अपने भीतर झांका हजारों रास्ते ऐसे हैं, जिन पर मैं नहीं चली। हजारों द्वीप-महाद्वीपों हिमखंडों के नीचे दबे हैं, जिन्हें मैंने नहीं देखा। संसार उतना ही तो नहीं है, जितना मैंने देखा है- अगर यह कोई रहस्य है तो इसे जरूर जानना चाहिए। (पेज 40) रूमी इस रहस्य को जानने के रास्ते पर पाती है कि ''क्या हमने अपनी दुनिया स्वयं इस कदर नरक बना ली है कि अब उसी का सामना करने से कतराते हैं? और उस दूसरी दुनिया की ओर भाग जाना चाहते हैं जो दिखाई तो देती है वह समझ नहीं आती है।'' (पेज 49) इस बेबाकी के दर्शन एवं प्रसार जया की कहानियों को अनेकों स्थानों पर रूक कर पुनः पुनः पढ़ने की ओर प्रेरित करता है। शायद यह पात्र एवं पाठकों का ऐसा साझा है जिसके लिए लेखक की लेखनी सदैव व्यग्र रहती है। जया के पात्र अंदर-बाहर की यात्रा में शब्दों की शक्ति को भी बताते चलते हैं। ''हर शब्द एक कंपन है। समूचे खाली स्पेस में वह एक आकार की रचना करता है। एक ऐसा आकार जो बाहरी और भीतरी सत्ता के मध्य एक पुल का काम करता है। शब्दों के बिना यह आवागमन असंभव होता।' (पेज 51) जया ने 'जो सदियों से चुप हैं' कहानी में भी इसी प्रश्न को आगे बढ़ाया है। सावधान करने के अंदाज में एक तिरस्कार का भाव व्यक्त किया है ''क्या हाल बना लिया है हमने अपनी दुनिया का कि जहाँ हम खुद अपनी तरह से नहीं रह पा रहे हैं।...... कितनी अजीब बात है हमारी आवाज दूसरों को तो सुनाई देती है, खुद हमें नहीं।.........लड़कियों की चीखों के जवाब जिनके पास हैं वे सदियों से चुप हैं'' भाषा की कोमलता यहाँ मन को छूती है क्योंकि भाव भी धीरे-धीरे कोमल से पुरूष की

ओर जाते हैं स्त्री तत्व की भाँति।

जया धर्म को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मनुष्य की स्थिति एवं जरूरत के अनुसार लगातार टटोलती है ''आखिर मनुष्य को धर्म की जरूरत है ही क्यों? वह अपनी रची हुई सृष्टि से इतना डरा हुआ क्यों है? नष्ट होने से डरता है और नष्ट हो जाता है। बंधने से डरता है और बंध जाता है। मरने से डरता है और मर जाता है।'' (पेज 91) 'मैं एक पत्ता हूँ शाख से टूटा हुआ' में धर्म एवं बाजार के मेल के संदर्भ में बेचैनी का चित्रण करती है। एक ऐसी बेचैनी जो टोकती है कि ''हम अपने भीतर की खामोशी से इतना घबराते क्यों हैं?'' जया निरंतर सवालों की फुलझड़ियों से प्रकाश की वलय तक ले जाने के उपक्रम में लगी रहती है। 'ये रास्ता कहाँ तक जाता है।' का रेवा इसी का विस्तार है। रेवा के माध्यम से जया सूत्र शैली में अपनी निपुणता का प्रदर्शन करती है। यहाँ पुनः द्वन्द्व है। द्वन्द्व कोरा आंतरिक नहीं सामाजिक एवं बाह्य भी। जया के पात्र पंलायन नहीं करते, डर कर मुकाबला करते हैं कहते हैं- ''मुझे पहली बार लगा कि सिर्फ संसारी ही संयासियों के मोहताज नहीं हैं, संयासी भी सांसारियों के मोहताज हैं।'' रेवा अपने अन्तर्द्वन्द्व से कुछ सूत्र वाक्य लगातार ध्यान आकर्षित करते हैं यथा ''मुस्कान से बड़ा भ्रम कोई नहीं होता,'' ''ये चट्टाने और क्या है? धरती के आँसू ही तो'', ''सिर्फ एक आदमी नहीं होता है और सारे रास्तों के अर्थ बदल जाते हैं।''

''कुछ किस्से कभी खत्म नहीं होते'' में लगता है कुछ छूट गया। यह कहानी खत्म नहीं होनी चाहिए। या यूँ कहे इस कहानी के पात्रों को जया की जरूरत है। पात्र और घटनाएं भी लेखक से उसको मांगते हैं कि वह उनके पास से इतनी जल्दी क्यों चला गया? रूकता-थमता तो बातें और होतीं, धड़कने और होती। किंतु सृजनकर्ता से कभी भी सवाल नहीं पूछा जा सकता। क्योंकि उसकी मर्जी।

'शुक्रिया' की स्त्रियाँ जानती हैं कि ''जब आपके भीतर दृष्टा मौजूद न हो तो सारे दृश्य भी आम हो जाते हैं।' इसीलिए वे दोनों सहेलियाँ समझती हैं कि ''इंडिया की औरतें पचास साल बाद भी वैसी ही हिचकिचाती हैं जैसे अपने बीसवें वर्ष में। भारत में तो तीस साल के बाद औरतें बूढ़ी हो जाती है। समय का इतना फासला क्यूं। ''किन्तु जया शिखर पर जा पहुँचों की अपेक्षा राह के राहगीरों को रास्तों पर बढ़ने वालों के कथा-विस्तार को ग्रहण करना चाहती हैं। इसीलिए कब परमेश्वर गोदरेज चमकीली पत्रिका के पन्नों से निकाल कर एक माँ के नीचे आ जाती है, अद्भुत है चौंकाता है।

'नीतो का मरना तय है', अक्षरों के संसार में (यह शुक्रिया का विस्तार प्रतीत होती है।), ऐंटी पार्टिकल, में जया ने अवरूद्ध वेगों को आकार देने प्रयास किया है। ये कहानियां कम बोलकर ज्याद अवाक् करती हैं। इनमें पाठक के लिए रचनाकार द्वारा स्पेस दिया गया है। करिए आप यात्रा। इस संग्रह की सभी कहानियां अपने तेवर में जया की लेखनी के अनेकों रंगों को छिटकाती है। रंगों के अलग-अलग स्वभाव की ही भांति लाल, नीली, पीली, सफेद-उग्र, स्नेहिल, समृद्ध, शांत तथा सतरंगी हैं।

पुस्तक का नाम : मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ, कांधे पर अपना हल लिये
लेखिका : जया जादवानी
प्रकाशक : मेधा बुक्स, दिल्ली
मूल्य : 200 रूपये

पाखी मन की पंखभर उड़ान

प्रेरणा पाण्डेय

अपनी कविता-संग्रह 'मन-पाखी' में श्री ओम प्रकाश जी अपने यायावर मन की यायावरी लिखते हैं। वे उड़ते फिरते हैं, जहां जहां उनके मन ने थोड़ी ठाँव ली, थोड़ी साँस ली, वहाँ से उन्होंने कुछ शब्द चुने, कविता बुनी और अगली दिशा का रुख किया। ओम प्रकाश जी अपने साथ-साथ अपना सारा समाज लेकर चलते हैं। अपना मन, अपना आस-पास, वर्तमान-भविष्य, देस-परदेस, समसामयिक चिंतन, बचपन, प्रकृति और जीवन के आस-पास बिखरी बहुत सारी संवेदनाएँ भी।

बचपन में खेले गए खेल, साथी, रिश्ते-नाते, पिता-सभी की उनकी कविताओं में शब्द-मूर्त उपस्थिति है। यह उपस्थिति उनके संवेदनाओं की स्पंदित अभिव्यक्ति हैं वे कुछ भी नहीं भूले, यहाँ तक कि अपने आँगन के कौवों को भी-

'कहाँ गए मेरे बचपन के

कौए सारे उनका शोर

मेरी यादों के मंजर में

अब भी रहता उनका शोर'

बचपन के इन कौवों के माध्यम से श्री पारीक जी पर्यावरण-क्षरण के इस दौर में विलुप्त हो रहे कौवों की तरफ अनायास ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। हमारी आने वाली पीढ़ियाँ कौए देख पाएंगी, अब यह संदेह-प्रश्न है।

इस कविता-संग्रह के विषय विविध हैं। संवेदनाओं से टकराता, निकलता कई रंगों का शीर्षक विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करता है। इस इंन्द्रधनुषी पट्टी में कुछ रंग आकर्षक और चटकीले हैं, तो कुछ रूखे और अनाकर्षक भी पर महत्वपूर्ण सभी हैं। अलग-अगल शीर्षकों के अन्तर्गत अलग-अलग कविताएँ रखी गई हैं। 'मन-पारखी' में उनकी कविताएं उनके चेतन-अवचेतन के गूँज-अनुगूँज से अनुप्राणित हैं। 'एहसास' की कविताएं उनके प्रणयी मन, भटकाव और उलझनों को चित्रित कर सकने में पूर्णतः सक्षम हैं। 'जीवन और जगत्' तथा 'घर-बाहर' की कविताएँ कवि के मन के अंदर की उस दार्शनिकता को चित्रित करती हैं, जो जीवन के उतार-चढ़ाव में अनुभवों से अर्जित की जाती हैं। 'देश-परदेश', एवं 'प्रकृति संत्रास' की कविताएं कवि की संवेदनशीलता को वर्तमान के धरातल पर रखती हैं। इन कविताओं में रोज घटने वाली वे घटनाएँ हैं जो हमें विचलित करती हैं पर हम उन्हें भुला देते हैं। श्री पारीक इन्हें भूलते नहीं और शब्द-बद्ध करते हैं। पर्यावरण का संकट विकराल है, वे जानते हैं और यह भी कि जीवन इसी से जुड़ा है-

'सूख रही हैं दूषित होकर ये सब नदियाँ

मानव की करणी के फल से

इनका बहना जो रोकोगे

जगती में तुम जी न सकोगे।'

'देश-परदेश' की

कविताएँ देश के हालात के प्रति चिंतन का दस्तावेज हैं। इसमें नेता, सरकार, भ्रष्टाचार आदि सभी स्थान पाते हैं-

'आड़ मजहब की, होली खून की खेले हैं

अभी ठहरो कि इंतक़ाम अभी बाकी है।

देश के हाकिम-हुक्कान ही देश की बदहाली के लिए जिम्मेदार हैं, ऐसा कहने में कवि को कोई संकोच, कोई हिचक नहीं है। कई कविताओं में कवि का तनाव और आक्रोश भी स्पष्टत: जाहिर जो जाता है-

लेकिन अब तो मत दोहराओ

वो जो कुछ हमने झेला है

झूठी सरहद खूनी चेहरे

इनको तोड़ो, मार गिराओ

जोर-जुल्म, दुख-त्रासदी, कश्मीर, पाकिस्तान, कॉमनवेल्थ, कलमाड़ी, सांप्रदायिक-हिंसा, सिपाही, आम-आदमी, मजदूर, स्त्री सभी उनकी कविताओं में संवेदन-संप्रेषण के लिए उपस्थित हैं। 'हाईकू' में सधे हुए शब्दों द्वारा श्री पारीक अपनी भावनाओं को अत्यंत संक्षिप्त एवं सटीक तरीके से व्यक्त करते हैं। 'सच' में लिखते हैं-

सच देखा तो आँखें मुँद गई

जो खोली बरबाद हुए तुम

अंधा हरदम खुश रहता है

एक दूसरी कविता 'पागल' के द्वारा जीवन-दर्शन को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं-

'वह पागल जिसपर हँसते हो

तुम सब पर हँसता रहता है

कौन धतूरा खा बैठा है।

अपनी कविता संग्रह के अंत में श्री पारीक 'गद्य-गीत लिखते हैं। बेशक ये संख्या में कम हैं, परन्तु अत्यंत प्रवाहपूर्ण सरस एवं सुरूचिपूर्ण हैं। गद्य-गीतों में 'कॉमनवेल्थ गेम', 'आई0पी0एल0', 'शादी' एवं 'कोहरा' सभी एक-दूसरे से रोचक एवं बेहतरीन प्रस्तुति का नमूना हैं। गद्य में ध्वनित पद्यमय प्रवाह गद्यगीत के विषय एवं चिंतन के अनुरूप हैं।

कवि ने अपने संग्रह के शीर्षक के अनुसार ही अपने विचारों की भी यायावरी प्रस्तुत की है। विषय-विविधता के साथ उपस्थित कविताएँ पठनीय हैं। व्यक्तिगत अनुभवजन्य कविताएँ अनुभूतियों की प्रस्तुति संवेदनशील ढंग से कर पाती हैं। सबसे खास बात यह है कि कविता

लिखने के लिए उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया, सब उनके भाव शब्द बद्ध होकर अनायास ही कविता के रूप में ज्यों के त्यों उतर आए हैं। वे सहज ही लिख जाते हैं, बनावट लाने का प्रयास नहीं करते।

भाषा में सहजता, सुगम्यता और प्रवाह है। हिन्दी, उर्दू और राजस्थानी के शब्दों का घुला-मिला प्रयास सराहनीय है। भाषायी चमत्कार से अछूती श्री ओम प्रकाश जी की कविताएँ बेबाक और समसामयिक हैं।

पुस्तक का नाम : मन पाखी

रचनाकार : ओ.पी. पारीक

प्रकाशक : रामा पब्लिकेशन्स, दिल्ली

वर्ष : 2010



हिन्दी अकादमी, दिल्ली

(राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार)
समुदाय भवन, पदम् नगर, किशनगंज, दिल्ली-7
दूरभाष : 23690274, 23693118, 23694562 फैक्स : 23696897
E-mail : hindiacademydelhi@gmail.com.hindiacademy_delhi@vsnl.net

अकादमी के प्रकाशन

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक	मूल्य (रूपये में)
1.	दिल्ली जो एक शहर है	महेश्वर दयाल	325
2.	यादगारे गालिगब	मो0 अल्ताफ हुसैन 'हाली'	125
3.	जिक्रे मीर	अनुवादक : अब्दुल बिस्मिल्लाह भाषातरकार : अजमल अजमली संपादक : श्रीकृष्णदास	100
4.	भारतीय संस्कृति मुगल विरासत औरंगजेब के फरमान	डॉ0 विश्वंभरनाथ पांडे	45
5.	राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्वरूप विकास और समस्यायें	डॉ0 विजयेंद्र स्नातक	12
6.	मंझधार और किनारा	सुहेल एजाज सिद्दिकी	100
7.	महाप्राण गांधी	उमेश सहगल अनुवादक : डॉ0 रामप्रकाश	125
8.	डॉ0 जाकिर हुसैन	जियाउल हसन फारूकी	50
9.	कविता-दशक	संपादक-डॉ0 केदारनाथ सिंह	75
10.	समीक्षा-दशक	संपादक-प्रो0 निर्मला जैन	75
11.	भाषा-विमर्श	संपादक-डॉ0 मुकुंद द्विवेदी	75
12.	भारतीय भाषाएं और राष्ट्रीय अस्मिता	संपादक-डॉ0 मुकुंद द्विवेदी	160
13.	दिल्ली और हिन्दी साहित्य	संपादक-सचिव हिन्दी अकादमी, दिल्ली	300
14.	अस मानस मानस चख चाही	संपादक-सचिव हिन्दी अकादमी, दिल्ली	50
15.	सुभाष प्रश्नावली	संपादक-सचिव हिन्दी अकादमी, दिल्ली	20
16.	संभावना	संपादक-सचिव हिन्दी अकादमी, दिल्ली	150
17.	क्रांतिमूर्ति दुर्गा भाभी	संपादक-डॉ0 वचनेश त्रिपाठी	50
18.	शताब्दी का निबन्ध	संपादक-डॉ0 मुकुन्द द्विवेदी	550
19.	हिन्दी गद्य एवं अन्य विधाएं	संपादक-डॉ0 मुजीब रिजवी डॉ0 हीरालाल बाछोतिया	450
20.	सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा	लेखक-मोहनदास करमचन्द गांधी अनुवादक-काशिनाथ त्रिवेदी	140
21.	हिन्द स्वराज	लेखक-मोहनदास करमचन्द गांधी अनुवादक : अमतलाल ठाकोरदास नाणावटी	45
22.	नमक के स्वाद जैसा कुछ (कविता संग्रह)	कवि-ऋतुकुमार 'ऋतु'	100
23.	परंपरा और प्रतिरोध (आलोचनात्मक निबंध संग्रह)	लेखक-सदानंद शाही	125
24.	हिन्दी काव्य चिंतन की परंपरा (आलोचनात्मक निबंध संग्रह)	लेखक-दीपक प्रकाश त्यागी	1000

श्रृंखला संपादक-
प्रो0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास'

उपर्युक्त सभी पुस्तकें अकादमी के हिन्दी प्रसार केन्द्रों से या अग्रिम धनराशि (मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम भेजकर मँगवायी जा सकती है। कृपया अधिक जानकारी के लिए पत्रिका अनुभाग, हिन्दी अकादमी, दिल्ली (मुख्यालय), पद्म नगर, किशनगंज, दिल्ली-7 से सम्पर्क करें।

इन्द्रप्रस्थ भारती (त्रैमासिक पत्रिका)
(मूल्य एक प्रति 25/- रू. वार्षिक शुल्क-100/- रू.
त्रैवार्षिक शुल्क-300/- रू.)

प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास'
सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली
एवं संपादक, इंद्रप्रस्थ भारती



मुरादाबाद विकास प्राधिकरण की उपलब्धियां एक नजर में

मुरादाबाद महानगर के सुनियोजित विकास हेतु मुरादाबाद विकास प्राधिकरण ने कई योजनाएं बनाई हैं और पूर्व में आवासीय समस्या को दूर करते हुए कई बड़ी आवासीय योजनाएं विकसित की हैं। प्राधिकरण मुख्यमन्त्री की प्राथमिकता वाली योजनाएं प्राथमिकता के आधार पर कियान्वयन कर रहा है।

- **मा0 श्री कांशीराम जी नगर योजना :** प्राधिकरण द्वारा वर्ष 2007 में 102.86 एकड़ भूमि पर मा0 मुख्यमंत्री जी की नवीन प्राथमिकताओं के अन्तर्गत भोगपुर मिठौनी में सीलिंग से प्राप्त भूमि पर मा0 श्री कांशराम जी नगर योजना, विकसित की जा रही है।
- **मऊ आवासीय योजना :** प्राधिकरण द्वारा वर्ष 2007 में कांठ रोडपर राजकीय पॉलीटेक्निक के पीछे 3.14 एकड़ भूमि पर मऊ आवासीय योजना विकसित की गयी है, जिसके अन्तर्गत 123 दुर्वल आय वर्ग श्रेणी के भवन निर्मित किये गये हैं।
- **सोनकपुर आवासीय योजना :** प्राधिकरण द्वारा लगभग 55.00 हे0 भूमि पर सोनकपुर योजना परिकल्पित की गयी है। योजना में विभिन्न श्रेणीके भूखण्ड एवं भवनों के निर्माण एवं विकास कार्य प्रस्तावित हैं। इस योजना में शासन की अतिमहत्वाकांक्षी मा0 श्री कांशीराम जी शहरी गरीब आवास योजना द्वितीय चरण के अन्तर्गत 1384 भवनों का निर्माण कार्य प्रगति पर है।
- **शाहपुर तिगरी मे सामुदायिक केन्द्र एवं पार्क का निर्माण :** यह क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ा क्षेत्र है एवं गरीब जनता के उत्थान के लिए मा0 श्री कांशीराम जी शहरी समग्र विकास योजना के अन्तर्गत चयनित वार्ड संख्या-01 शाहपुर तिगरी में सामुदायिक केन्द्र एवं पार्क का निर्माण कार्य कराया गया है। उक्त सामुदायिक केन्द्र का निर्माण 2655.31 वर्गमी0 क्षेत्रफल में कराया यगा है।
- **सीतापुरी दससराय में सामुदायिक केन्द्र एवं पार्क का निर्माण :** सीतापुरी दससराय में सामुदायिक केन्द्र एवं पार्क का निर्माण 2655.31 वर्ग मी0 क्षेत्रफल में कराया गया है। इस सामुदायिक केन्द्र के निर्माण पर कुल 31.22 लाख एवं पार्क के निर्माण पर 14.02 लाख का व्यय हुआ है।
- **मा0 श्री कांशीराम जी शहरी गरीब आवास योजना :** उ0प्र0 शासन की अति महत्वाकांक्षी मा0 श्री कांशीराम जी शहरी गरीब आवास योजना के अन्तर्गत मुरादाबाद शहर में मुरादाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा प्रथम चरण में 1500 तीन मंजिले निर्बल वर्ग के भवनों का निर्माण सीलिंग की कब्जा प्राप्त 61920 वर्ग मी0 भूमि पर 7 पॉकेट्स में जी+2 के आधार पर कराया गया है। समस्त 1500 भवनों का निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है। इसके अतिरिक्त मा. श्री कांशीराम जी शहरी गरीब आवास योजना के द्वितीय चरण के अन्तर्गत सम्भल में 132, ठाकुर द्वारा में 204, भोगपुर मिठौनी में 672 तथा सोनकपुर में 1384 अर्थात् कुल 2392 भवनों का निर्माण कार्य प्रगति पर है।
- **मा0 श्री कांशीराम जी नगर में महामाया सामुदायिक केन्द्र व गौतम बुद्ध पार्क का निर्माण :** मा0 श्री कांशीराम जी नगर में 1169.00 वर्ग मी0 के भूखण्ड पर सामुदायिक केन्द्र का निर्माण कराया गया है, जिसकी निर्माण लागत 101.79 लाख है। इस सामुदायिक केन्द्र के निर्माण से मा0 श्री कांशीराम जी नगर व आस-पास के नागरिक लाभान्वित होंगे। ग्राम भोगपुर मिठौनी में गौतम बुद्ध पार्क का निर्माण किया गया है। पार्क का क्षेत्रफल लगभग 4.00 एकड़ है।
- **मुरादाबाद दिल्ली मार्ग गांगन नपदी पर सेतु का निर्माण :** मुरादाबाद-दिल्ली मार्ग के किमी0 151 में गांगन नदी पर नय सेतु का निर्माण किया गया है। सेतु की लम्बाई 94.28 मी0 है तथा सेतु की चौड़ाई 10.50 मी0 है, जिसमें 7.50 मी0 का कैरिजवे तथा इसके दोनों और 1.50-1.50 मी0 चोड़ी फुटपाथ का निर्माण किया गया।
- **नया मुरादाबाद :** प्राधिकरण द्वारा वर्ष 2003 में दिल्ली-मुरादाबाद राष्ट्रीय राजमार्ग-24 एवं लखनऊ वाईपास जंक्शन के निकट ग्राम मंगूपुरा, मनोहरपुर एवं पाकबड़ा की लगभग 890.61 एकड़ अर्जित भूमि पर समस्त सुविधाओं एवं उपयोगिताओं से युक्त नया मुरादाबाद आवासीय योजना विकसित की गयी है।

प्रदीप कुमार	**अनिल कुमार**	**ज्ञानेश कुमार**
संयुक्त सचिव	सचिव	उपाध्यक्ष

साहित्य अकादेमी द्वारा रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर प्रकाशित महत्वपूर्ण कृतियाँ

उपन्यास/कहानी

आँख की किरकिरी (चोखेर बाली)
अनुवादक : हंसकुमार तिवारी
पृष्ठ: 230, पुनर्मुद्रण: 2009
ISBN: 81-7201-661-1 75 रूपये

गोरा (बाङ्ला)
अनुवादक : सच्चिदानन्द वात्स्यायन
पृष्ठ: 456, पुनर्मुद्रण: 2009
ISBN: 81-7201-627-1 125 रूपये

योगायोग (जोगाजोग)
अनुवादक : इलाचन्द्र जोशी
पृष्ठ: 252, पुनर्मुद्रण: 2009
ISBN: 81-2607-0889-X 60 रूपये

रवीन्द्रनाथ की कहानियाँ (भाग-एक)
अनुवादक : रामसिंह तोमर
पृष्ठ: 364, संशोधित संस्करण: 2009
ISBN: 81-260-0325-5 125 रूपये

रवीन्द्रनाथ की कहानियाँ (भाग-दो)
अनुवादक : कणिका तोमर
पृष्ठ: 272364, संशोधित संस्करण: 2008
ISBN: 81-260-1409-1 100 रूपये

कविता

रवीन्द्रनाथ की कहानियाँ
(चुनी हुई 101 बाङ्ला कविताओं का संकलन)
अनु0: हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिनकर, हंसकुमार तिवारी व भवानीप्रसाद मिश्र
पृष्ठ: 336, पुनर्मुद्रणा: 2008 पेपरबैक 90 रूपये,
ISBN: 81-260-1216-1 साजिल्द 125 रूपये

विविध

रवीन्द्र रचना संचयन
(रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ)
संपादक: असित कुमार बंधोपाध्याय
पृष्ठ: XX+820, पुनर्मुद्रण: 2009 200 रूपये

निबन्ध

रवीन्द्रनाथ के निबन्ध (भाग-1)
(दार्शनिक, शैक्षणिक, सामाजिक और राजनीतिक निबन्ध)
अनुवादक: विश्वनाथ नरवणे
पृष्ठ: 566, पुनर्मुद्रण: 2009
ISBN: 978-81-260-2429-2 150 रूपये

रवीन्द्रनाथ के निबन्ध (भाग-2)
अनुवादक: अमृत राय
पृष्ठ: 510, पुनर्मुद्रण: 2009
ISBN:978-81-260-2430-8 150 रूपये

रवीन्द्रनाथ के निबन्ध (भाग-3)
(साहित्य समालोचना, साहित्य तत्व और व्यक्तिगत निबंध)
अनुवादक: चंद्रकिरण राठी
पृष्ठ: 220, पुनर्मुद्रण: 1996
ISBN: 81-7201-976-9 85 रूपये

नाटक

ताश का देश (ताशोर देश)
अनुवादक: रणजीत साहा
पृष्ठ: 64, पुनर्मुद्रण: 2008
ISBN:978-81-260-0317-0 50 रूपये

रवीन्द्रनाथ के नाटक (प्रथम खण्ड)
अनुवादक: प्रफुल्लचन्द्र ओझा, हंसकुमार तिवारी व भारतभूषण अग्रवाल
पृष्ठ: 308, पुनर्मुद्रण: 2005
ISBN: 81-260-1401-6 150 रूपये

रवीन्द्रनाथ के नाटक (द्वितीय खण्ड)
अनुवादक: स.ही. वात्सयायन, प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त',
भारतभूषणअग्रवाल तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी
पृष्ठ: 96, पुनर्मुद्रण: 2005
ISBN:978-81-260-1407-5 140 रूपये

बाल साहित्य

रवीन्द्रनाथ का बाल साहित्य (दो भाग में)
सम्पादक: लीला मजूमदार तथा क्षितीज राय
अनुवादक: युगजीत नवलपुरी
पृष्ठ: 160 एवं 176, पुनर्मुद्रण: 2009
ISBN:81-260-0009-0 (भाग-1) 35 रूपये
ISBN:81-260-0008-2 (भाग-2) (प्रत्येक भाग)

(गुरूदेव अकादमी द्वारा प्रकाशित रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तकों पर 40 प्रतिशत की छूट, 9 मई 2012 तक)

कृपया अपने आदेश सचिव, साहित्य अकादेमी, विक्रय विभाग, 'स्वाति', मंदिर मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 23745297, 23364204
फैक्स : 23364207
ईमेल : sahityaakademisales@vsnl.net
वैबसाइट : www.sahitya-akademi.gov.in

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, लखनऊ।

क्रियाकलाप एवं उपलब्धियां

क्रियाकलाप

- बी0टी0सी प्रशिक्षण हेतु अभ्यर्थियों का **चयन** एवं निजी प्रशिक्षण संस्थाओं को **आवंटन**।
- भारत सरकार द्वारा संचालित सर्व शिक्षा अभियान एवं राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत संचालित गतिविधियों में सहयोग।

सेवा पूर्व प्रशिक्षण

- बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित विद्यालयों में शिक्षक के रूप में कार्य करने हेतु चयनित अभ्यर्थियों का प्रशिक्षण।

सेवारत प्रशिक्षण

- प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के लिए क्षमता संवर्द्धन प्रशिक्षण।

मकतब एवं मदरसों के अनुदेशकों एवं शिक्षकों का प्रशिक्षण

- सरकारी (सरकार द्वारा संचालित)
- निजी (निजी संस्था द्वारा संचालित)
- दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षामित्रों का प्रशिक्षण।

उपलब्धियां

- शिक्षकों को स्पोकेन अंग्रेजी में दक्षता प्रदान करने हेतु 'English Language Lab' संचालन।
- जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन छात्र/छात्राओं को 'स्पोकेन अंग्रेजी' सिखाने हेतु ''रेडियों कार्यक्रम'' का संचालन।

''कस्टमाईज शिक्षक प्रशिक्षण पैकेज'' के अन्तर्गत आयोजित प्रशिक्षण

- छावनी परिषद द्वारा संचालित प्राथमिक/उच्च प्राथमिक/हाईस्कूल के शिक्षकों का प्रशिक्षण।
- 'बेटी' संस्था के अन्तर्गत कार्यरत अनुदेशकों का प्रशिक्षण।

अनुवाद कार्य

- निर्वाचन आयोग द्वारा बूथ स्तरीय अधिकारियों के लिए निर्मित प्रशिक्षण माड्यूल एवं हस्त पुस्तिका का हिन्दी रूपान्तरण।
- महिला कल्याण निगम विभाग हेतु राज्य स्तर पर डेस्क अप्रेजल
- शैक्षिक सी0डी0 निर्माण में सहयोग

कुल प्रशिक्षित शिक्षक

- विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत लगभग 10 हजार शिक्षकों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया जिसमें छावनी परिषद द्वारा संचालित विद्यालयों के 60 शिक्षक, मकतब मदरसों के 34 अनुदेशक तथा लखनऊ एवं उन्नाव जनपद से क्रमशः 73 एवं 17 शिक्षक भी लाभान्वित हुए।

लखनऊ विकास प्राधिकरण की दो नयी आवासीय योजनाएं

पारिजात के समान बुजुर्गों का आशीर्वाद पाएं



सुरक्षित एवं समृद्ध जीवन का अहसास

पंचशील

बहुमंजिली आवासीय योजना

विकल्प खण्ड-3, गोमती नगर, लखनऊ

पंजीकरण
19. 10. 2011 से
18. 11. 2011 तक

पारिजात हाऊसिंग की विवरण तालिका

फ्लैट के प्रकार	फ्लैटों की अनुमानित संख्या	अनुमानित सुपर एरिया (व.मी.)	अनुमानित विक्रय मूल्य रू. लाख में	पंजीकरण धनराशि रू. लाख में	आवंटन के उपरान्त 30 दिनों में देय धनराशि (लाख में)	अवशेष भुगतान
3 BHK	122	144.37	44.50	2.25	4.50	शेष धनराशि 18 माह में छः तिमाही किश्तों में ब्याज सहित जमा करना होगा।
3 BHK+ स्टडी	180	158.52	49.50	2.48	4.96	
Penthouse	08	260.41 +107.90 (ओपन टैरेस)	84.50	4.25	8.45	

पंचशील बहुमंजिली आवासीय योजना की विवरण तालिका

योजना का नाम	फ्लैटों का प्रकार		अनुमानित फ्लैटों की संख्या	सुपर एरिया (व.मी.में)	अनुमानित विक्रय मूल्य (रू. लाख में)	पंजीकरण धनराशि (रू. लाख में)	चयन के पश्चात एक माह में देय धनराशि (रू. लाख में)	अवशेष भुगतान
गोमतीनगर योजना फेज-2	2BHK	पंचशील-4	108	85.35	22.50	1.13	2.25	शेष धनराशि 18 माह में छः तिमाही किश्तों में ब्याज सहित जमा करना होगा।
गोमतीनगर योजना फेज-2	2BHK + स्टडी	पंचशील-5	108	99.03	25.70	1.29	2.57	

योजनाओं की पंजीकरण हेतु विवरण पुस्तिकाएं (रू. 500/-प्रति पुस्तिका) में दिये गये निम्न बैंकों से प्राप्त एवं जमा किये जा सकते हैं:- ● यूको बैंक : ● ल.वि.प्रा. विस्तार पटल गोमती नगर, लखनऊ ● लालबाग शाखा (प्राधिकरण परिसर), लखनऊ।
● पंजाब नेशनल बैंक: ● हजरतगंज ● विभूति खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ।
● ओरियन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स : ● तेज कृष्ण प्लाजा, खुन-खुन जी रोड, चौक ● गन्ना संस्थान, डालीबाग, लखनऊ।

आनन्द कुमार सिंह
सचिव

अन्य जानकारियाँ एवं शर्तें पंजीकरण पुस्तिका एवं प्राधिकरण की वेबसाइट www.ldalucknow.co.in पर उपलब्ध हैं

राजीव अग्रवाल
उपाध्यक्ष



लखनऊ विकास प्राधिकरण

प्राधिकरण भवन, विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ

दूरभाष : 0522-2303623, 2303624, 2303133 वेबसाइट : www.ldalucknow.co.in

भारतीय संविधान के निर्माता बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी
के 120वें जन्मदिवस (14 अप्रैल, 2011) के पुनीत अवसर पर

मानीया मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश

सुश्री मायावती जी

द्वारा की गयी ऐतिहासिक घोषणा

सर्वसमाज के बी.पी.एल. कार्डधारकों तथा
"उत्तर प्रदेश मुख्यमंत्री महामाया ग़रीब आर्थिक मदद योजना" के लाभार्थियों को

सुश्री मायावती जी
माननीया मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

सरकारी अधिवक्ताओं द्वारा निःशुल्क पैरवी की अभूतपूर्व सुविधा

पात्र व्यक्ति

1. ऐसे नागरिक, जो "बी0पी0एल0 कार्ड धारक" अथवा "उत्तर प्रदेश मुख्यमंत्री महामाया गरीब आर्थिक मदद योजना" के अन्तर्गत चयनित परिवार के सदस्यों के सभी प्रकार के विभिन्न न्यायालयों में लम्बित व दायर किये जाने वाले मुकदमों, जिनमें सरकार पक्षकार नहीं है, को उनकी ओर से पैरवी हेतु सरकारी वकील की सुविधा निःशुल्क उपलब्ध।
2. पात्र व्यक्तियों को उपलब्ध कराये गये शासकीय अधिवक्ता किसी प्रकार का आबद्धता शुल्क पाने के हकदार नहीं होंगे तथा वे सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वहन में अपने कर्त्तव्यों का अनुपालन करते हुए सम्यक् पैरवी करेंगे।
3. उपर्युक्त पात्र व्यक्तियों को उक्त सुविधा दिये जाने के सम्बन्ध में प्रकीर्ण व्यय आदि राज्य सरकार द्वारा वहन किया जायेगा।

मुख्य विशेषताएं

1. शासन द्वारा सर्म्बधित न्यायालयों में नियुक्त एवं आबद्ध किये गये शासकीय/स्थायी/पैनल अधिवक्ता द्वारा इन गरीबों की ओर से निःशुल्क पैरवी की जायेगी।
2. जनपद स्तर तथा अन्य समस्त न्यायालयों में पात्र व्यक्तियों को उक्त सुविधा उपलब्ध कराने हेतु जिला शासकीय अधिवक्ता (दीवानी/फौजदारी/राजस्व) के कार्यालय में एक पटल स्थापित किया जायेगा। पात्र व्यक्ति इस पटल पर अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर सकेंगे तथा उनके प्रार्थना पत्रों पर संबंधित जिला शासकीय अधिवक्ता फौजदारी, दीवानी, राजस्व द्वारा शासकीय अधिवक्ता नामित किया जायेगा।
3. उपर्युक्त सुविधा प्रदान करने हेतु इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय की लखनऊ खण्डपीठ में महाधिवक्ता कार्यालय में एक पटल स्थापित किया जायेगा। पात्र व्यक्ति इस पटल पर अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर सकेंगे तथा महाधिवक्ता कार्यालय से उनके प्रार्थना पत्र पर शासकीय/ स्थायी/पैनल अधिवक्ता का आवंटन किया जायेगा।
4. उच्च न्यायालय स्तर पर उक्त वादों की पैरवी सम्बन्धी समीक्षा मा0 महाधिवक्ता स्वयं अथवा उनके द्वारा नामित अतिरिक्त महाधिवक्ता करेंगे। जनपद स्तर पर जिला शासकीय अधिवक्ता, फौजदारी, दीवानी एवं राजस्व समीक्षा करेंगे एवं छमाही प्रगति आख्या शासन को प्रेषित करेंगे।
5. तहसील स्तर पर कार्यरत राजस्व/दीवानी/फौजदारी तथा चकबन्दी एवं बन्दोबस्त न्यायालयों में भी पात्र व्यक्तियों को उक्त सुविधा उपलब्ध करायी जायेगी। उक्त सुविधा उपलब्ध कराये जाने हेतु जिला शासकीय अधिवक्ता (राजस्व) के कार्यालय में एक पटल स्थापित किया जायेगा तथा पात्र व्यक्तियों की पैरवी हेतु जिला शासकीय अधिवक्ता (राजस्व) द्वारा सम्बन्धित नामिका वकील को नामित/अधिकृत किया जायेगा। जिन मामलों में सरकार एक पक्षकार होगी, उक्त सुविधा सचिव, तहसील विधिक सेवा समिति द्वारा नियमानुसार प्रदान की जायेगी।

उत्तर प्रदेश सरकार की हर नीति 'सर्वजन हिताय व सर्वजन सुखाय' पर आधारित

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

सम्पर्क

नरेश सक्सेना : 2/5 विवेक खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ।

एकान्त श्रीवास्तव : संपादक वागर्थ

द्वारा श्रीमती मंजुल श्रीवास्तव, एल0आई0सी0, सी0बी0ओ0 21, चौथा तल, हिन्दुस्तान बिल्डिंग एनेक्सी, 4 चितरंजन ऐवेन्यू, कोलकाता 700072।

शिवपूजन त्रिपाठी : 196, ग्रीन पार्क, बरेली।

भरत प्रसाद : असिस्टेन्ट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, नेहू, शिलांग (मेघालय)।

अरविन्द अवस्थी : श्रीधर पाण्डेय सदन, बेलखरिया का पुरा, मीरजापुर (उ0प्र0)।

भाषा सिंह : रोविंग एडिटर, 'नयी दुनिया', ओंकार द्वीप बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001

पंकज सुबीर : ए-2 पी0सी0 लेब0 शाप नं0 3, 4, 5 बेसमेंट, सम्राट कॉम्पलेक्स, नए बस स्टैण्ड के सामने, सीहोर (म0प्र0)

उमेश चन्द्र शर्मा : ए-2, पी.डब्ल्यू.डी. कालोनी, (विकास भवन के सामने) वाराणसी।

दीपक शर्मा : बी 35, सेक्टर-सी, अलीगंज, लखनऊ।

ममता शर्मा : 57, मान सरोवर पोस्ट हटिया, रांची (झारखण्ड) 834003 ।

हुस्न तबस्सुम निहां : मो0 रानी बाग पोस्ट नानपारा, बहराइच (उ0प्र0) 2718651 ।

विद्या सिंह : 77 प्रकाश विहार, धरमपुर, देहरादून।

सुमन सिंह : एस/8/108, आर-1, डी0आई0जी0 कालोनी, खजुरी, वाराणसी।

ज्योत्सना मिलन : एम-4 निराला नगर, भदभदा रोड, भोपाल।

विजय गौड़ : ग्राम बद्रीपुर निकट पानी की टंकी, पो0 बद्रीपुर, देहरादून।

सविता भार्गव : एफ 2/4 प्रोफ़सर्स कालोनी, भोपाल।

कुंदन लाल कलूचा : 11/28 पंजाबी बाग, नयी दिल्ली 110026 ।

पूनम शर्मा : प्रवक्ता हिन्दी विभाग, माता गुजरी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म0प्र0)।

पूजा येरपुड़े : 25 केसरवानी भवन, फ्लैट नं. 104, नारायण नगर, होशंगाबाद रोड, भोपाल।

स्नेहमयी चौधरी : 166, वैशाली पीतमपुरा, दिल्ली 110034 ।

अशोक मिजाज : H/40, शांति विहार, मकरोनिया, सागर (म0प्र0)।

रचना तिवारी : अशोक नगर, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र (उ0प्र0)।

चित्रलेखा सिंह : चित्रलेखा ए विलेज [illegible] 31/163/9 कृष्णापुरी कालोनी, शमसाबाद रोड, आगरा 282001।

इन्दु श्रीवास्तव : ब्लाक 7, फेज 2, विजयनगर कचनार सिटी, जबलपुर 482002।

हरीश नवल : 15 सी, हिन्दू कालेज निवास, दिल्ली 110007।

डॉ. कीर्ति श्रीवास्तव : जी 16, सैनिक सोसाइटी, शक्ति नगर, जबलपुर (म0प्र0)।

डॉ. निष्ठा शर्मा : 'सप्त स्वर' 10/501-बी खलासी लाइन, कानपुर।

डॉ. इंदिरा अग्रवाल : मधुवन, सूरमार्ग विष्णुपुरी, रामघाट रोड, अलीगढ़।

डॉ. इन्दु शर्मा : 8/131-सी II फ्लोर 'साकेत भवन', आर्य नगर, कानपुर

पूनम रानी : द्वारा ए0सी0एम0टी0, शारदापुरम निकट बिजली घर, रामघाट रोड, अलीगढ़।

मनीषा शर्मा : 1/14 तार का नगला, गुरूद्वारा रोड, अलीगढ़।

डॉ. अनुराधा तिवारी : अध्यक्ष हिन्दी विभाग, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस राजकीय महिला महाविद्यालय, अलीगंज, लखनऊ।

प्रेरणा पाण्डेय : लेन-9 एकता विहार, सहस्त्रधारा रोड, देहरादून 248008।

ए. के. मिश्र : ए-1111/1, इन्दिरा नगर, लखनऊ।

चन्द्रभाल 'सुकुमार' : सदस्य राज्य उपभोक्ता आयोग, गोमती नगर, लखनऊ।

R.N.I. No.: UPHIN/2010/36083

प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी विवेक पाण्डेय द्वारा शिवम् आर्ट्स 5वीं गली, सब्जी मण्डी, निशातगंज, लखनऊ से मुद्रित तथा 1/99, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ से प्रकाशित
सम्पादक : विवेक पाण्डेय